

तितास एक नदी का नाम

तितास एक नदी का नाम

अद्वैत मल्लबर्मन

अनुवाद

चन्द्रकला पाण्डेय

जय कौशल



मानव प्रकाशन
कोलकाता

ISBN : 978-93-80332-55-0

मूल्य : 700/-

© चन्द्रकला पाण्डेय, जय कौशल

प्रथम संस्करण : 2014

मानव प्रकाशन

131, चित्तरंजन एवेन्यू,

कोलकाता 700 073

फोन-9831581479

इमेल-prakashanmanav@yahoo.co.in

मुद्रक :

मानव स्टुडियो, कोलकाता-700 073

अद्वैत मल्लबर्मन के जन्म-शताब्दी वर्ष में
उनकी स्मृति के प्रति श्रद्धार्घ्य

अनुक्रम

तितास में संतरण से पहले	चन्द्रकला पाण्डेय	9
तितास के घाट पर	जय कौशल	11
रचना का परिचय	चन्द्रकला पाण्डेय	13
रचनाकार का परिचय	जय कौशल	21
प्रथम संस्करण की भूमिका		25

खंड- एक

तितास एक नदी का नाम	31
प्रवास	48

खंड- दो

नया ठिकाना	97
जन्म, मरण और विवाह	133

खंड- तीन

इन्द्रधनुष	175
रंगीन नाव	238

खंड-चार

दुरंगी तितली	273
भासमान	296
मानचित्र	

तितास में संतरण से पहले

अद्वैत मल्लबर्मन कृत 'तितास एकटि नदीर नाम' के हिन्दी भाषान्तरण की बात एकाधिक बार मन में आई। कभी इसे पहली बार (1977 में) पढ़ते हुए, कभी कलकत्ता विश्वविद्यालय के बांग्ला विभाग द्वारा मल्लबर्मन और उनके उपन्यासों पर आयोजित संगोष्ठियों में भाग लेते हुए, कभी शैक्षणिक अथवा राजनैतिक कारणों से बांग्लादेश के ढाका और कुमिल्ला (वर्ष 1996 और 2002) शहरों में घूमते हुए, कभी त्रिपुरा प्रवास के दौरान तो कभी ऋत्त्विक घटक द्वारा इस उपन्यास पर निर्मित फ़िल्म देखते हुए, लेकिन मन की इस आकांक्षा को ठोस आधार मिला नवंबर, 2013 में, जब प्रेसीडेन्सी विश्वविद्यालय के युवा अध्यापक डॉ. जय कौशल इसी उपन्यास के अनुवाद संबंधी सुझाव के साथ उपस्थित हुए। उनके पास इसकी पसंद के अपने कारण और तर्क थे तो मेरे पास अपने। जो हो, यह एक खूबसूरत नदी-नाव संयोग बन गया था। हमने मिलकर अनुवाद के इस साझा प्रकल्प को चुन लिया था।

निराला की पंक्ति 'दुःख ही जीवन की कथा रही', तितास के रचनाकार पर भी अक्षरशः सटीक बैठती है। अपनों को खोने का जो दर्द उनकी रचनाओं का उत्स बना उस समय मैं खुद भी ऐसे ही दर्द से गुजर रही थी। अक्टूबर, 2013 में मेरे दो अति-अंतरंग मित्र दिवंगत हो गए थे। मैं उन्हें खोने की पीड़ा से उबर नहीं पा रही थी। ऐसे में इस श्रमसाध्य योजना अर्थात् अनुवाद के सुनिश्चय ने संतरण का कार्य किया और मैं सुबला बरु तथा अनन्त की माँ से दर्द का रिश्ता जोड़ते हुए उनसे अपनी पीड़ा बाँटने लगी। इस कार्य में जय कौशल की मेहनत की भी उतनी ही सराहना करनी चाहिए।

हमने अलग से रचना एवं रचनाकार का परिचय विस्तारपूर्वक दिया है। इसलिए यहाँ सिर्फ रचना की अनुवाद-प्रक्रिया पर प्रकाश डाला जा रहा है। हमने इस अनुवाद को सादृश्य-धर्मी सृजन-प्रक्रिया के रूप में अपनाया। पाठ के तात्पर्य को बीज-स्वरूप मानकर उसे संप्रेषणीय बनाने के लिए अपनी भाषा की जमीन को पहले अच्छी तरह

परखा गया, फिर हिन्दी की प्रकृति के अनुरूप 'फ्रेम' तैयार किया गया। इसके बाद उसमें बांग्ला के शब्द-चित्रों को व्यवस्थित रूप में सजाया गया। हिन्दी की भाषिक-समृद्धि को ध्यान में रखते हुए इसकी बोलियों से भी शब्द चुने गए और इसे पूर्वी बंगाल की ग्राम्य भाषा के समतुल्य बनाया गया। मल्लबर्मन की भाषा जितनी सशक्त है, भाव उतने ही काव्यमय। इनका अनुवाद दुष्कर नहीं तो दुरूह अवश्य कहा जाएगा। ठोस जीवन-अनुभवों से फूटे मल्ल के गद्य में ध्वन्यात्मकता के साथ-साथ दृश्यात्मकता का सौन्दर्य भी गजब का है। इसके लिए हमने हिन्दी के समतुल्य ध्वन्यात्मक शब्दों, प्रतीकों और बिम्बों का सहारा लिया है। न तो हिन्दी में काव्यार्थक प्रतीकों का अभाव है, न ही नाद-सौन्दर्य व्यंजक शब्दों का। फिर भी हमने जहाँ-तहाँ बांग्ला-शब्दों को यथावत रखा है। हाँ, उनके अर्थबोध के लिए यथास्थान पाद टिप्पणियाँ दे दी गई हैं। जब एक भाषा की संकल्पना को दूसरी में अंतरित किया जाता है तब या तो कुछ जुड़ जाता है, या छूट जाता है, या फिर अर्थ सर्वथा बदल जाता है। हमने न तो कुछ छोड़ा है, न सर्वथा बदला है, संप्रेषणीयता की दृष्टि से कुछ जोड़ा अवश्य है। इत्र को एक शीशी से दूसरी में ढालते हुए थोड़ा-बहुत इत्र उड़ जाया करता है, लेकिन हमने सयत्न तितास के इस इत्र की खुशबू को बांग्ला भाषा की शीशी से हिन्दी की शीशी में इस प्रकार ढाला है कि पाठकों को कहीं कोई कमी महसूस नहीं होगी। नाते-रिश्ते, खान-पान, पोशाक, व्रत-त्योहार, पर्व-उत्सव, लोकोक्ति-मुहावरों आदि के समतुल्य हिन्दी शब्द यथासंभव तलाशे गए हैं, फिर भी बांग्ला की मिठास, उसके रूप, रस और गंध को बरकरार रखने के लिए ग्राम्य शब्दावली को जस का तस रख दिया गया है। हमें पूरा विश्वास है कि यह पाठ युगधर्मी, सम्प्रेषण-सिद्ध और लक्ष्य-भाषा की प्रकृति के अनुकूल बन पड़ा है।

बांग्ला के प्रसिद्ध आलोचक सरोज बंद्योपाध्याय का एक कथन है, 'व्यक्ति के विकास के सूत्र का उल्लंघन करने के बावजूद तितास.. मालो लोगों की डॉक्यूमेंट्री आलेख में रूपान्तरित न हो नदी-चालीसा बन गई है।' इस नदी-चालीसा को स्रोत-भाषा के तट से लक्ष्य-भाषा के तट तक पहुँचाने में हमने नाविक की जो भूमिका निभाई, उसमें कितनी सफलता मिली है, इसका निर्णय हम सुधी पाठकों पर छोड़ते हैं। साथ ही, अद्वैत मल्लबर्मन के जन्मशताब्दी वर्ष पर इस अनुवाद के जरिए हम उनकी स्मृति के प्रति श्रद्धा ज्ञापित करते हैं।

प्रथम बैसाख, 1421

चन्द्रकला पाण्डेय

कोलकाता

तितास के घाट पर

साहित्य में जब से अस्मितावादी विमर्श ने अपने पाँव पसारے हैं, प्रत्येक भाषा में इसे केंद्र में रखकर न केवल रचनाशीलता बढ़ गई है, वरन पहले से उपलब्ध रचनाओं का अस्मितावादी नजरिए से पुनर्पाठ भी होने लगा है। यहाँ तक कि कौनसी अस्मिता किस भाषा में कितनी मुखर रूप में अभिव्यक्त हुई है, इसकी पड़ताल भी शुरू हो गई है। दलित विमर्श की गूँज एक समय मराठी में सुनाई पड़ती थी। इसके बाद हिन्दी और दूसरी भारतीय भाषाओं में दलित साहित्य की रचनाएँ दिखाई देने लगीं और आज तो भारतीय दलित साहित्य की सैद्धान्तिकी की बात की जा रही है। इस क्रम में विभिन्न भाषाओं में उपस्थित दलित साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन भी होने लगा है।

भारतीय दलित साहित्य के प्रसंग में अक्सर यह सुनने में आता है कि मराठी के बाद हिन्दी और कुछ अन्य भाषाओं में दलित साहित्य का स्वर जितना प्रखर है, दूसरी भारतीय भाषाओं में उतना नहीं है। बांग्ला में तो यह लगभग नगण्य है। चूँकि बंगाली समाज विदेशी सभ्यता के सम्पर्क में काफ़ी रहा, लम्बे समय तक यहाँ वामपंथी शासन व्यवस्था कायम रही, साथ ही, बंगाल नवजागरण का केन्द्र भी रहा। इसलिए माना जाता है कि यहाँ जाति-व्यवस्था वैसी कठोर नहीं रही, जैसी कि उन प्रदेशों में, जहाँ सामन्तवादी व्यवस्था काबिज थी तथा जातीय शोषण और उत्पीड़न ज्यादा था।

बांग्ला समाज और साहित्य की दृष्टि से यह अच्छी बात कही जा सकती है, जाहिर है अगर समाज में कोई चीज अनुपस्थित है तो वह साहित्य में भी नहीं आएगी, लेकिन जब मैं स्वयं पश्चिम बंगाल आया तो सोचा क्यों न इस तथ्य की थोड़ी जाँच की जाए। इसके लिए मैंने कोलकाता स्थित विश्वविद्यालयों के बांग्ला विभागों से संपर्क साधा। कुछ लेखकों से भी मुलाकात की। बांग्ला दलित साहित्य में एक चर्चित नाम और 'इतिवृत्त चांडाल जीवन' जैसी प्रसिद्ध आत्मकथा के लेखक श्री मनोरंजन बैपारी का एक लम्बा साक्षात्कार लिया। इसी क्रम में प्रेसीडेंसी विश्वविद्यालय के

अंग्रेजी विभाग में प्राध्यापक और बांग्ला दलित साहित्य के गंभीर शोधार्थी डॉ. कल्याण दास से लंबी बातचीत की। 'इकोनोमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली सहित अन्य कई पत्र-पत्रिकाओं में इस मुद्दे से संबंधित सामग्री का भी अध्ययन किया, तब जाकर वस्तुस्थिति स्पष्ट हुई। बांग्ला में पर्याप्त दलित साहित्य मौजूद है, और तो और यहाँ बांग्ला दलित साहित्य संस्थान और एकतान जैसी कई संस्थाएँ भी कार्यरत हैं। कॉलेज स्ट्रीट, कोलकाता में 'चतुर्थ दुनिया' के नाम से पुस्तकों की एक ऐसी दूकान भी उपलब्ध है, जहाँ मुख्यतः बांग्ला दलित साहित्य की पुस्तकें मिलती हैं। हालांकि यहाँ भी आजकल मराठी और हिंदी की तरह आत्मकथाएँ एवं कविताएँ ही ज्यादा लिखी जा रही हैं। किन्तु मेरा उद्देश्य यह जानना था कि बांग्ला में दलित साहित्य की पहली सशक्त रचना कौन सी है। तब मुझे अद्वैत मल्लबर्मन कृत 'तितास एकटि नदीर नाम' के बारे में पता चला। साथ ही, यह भी कि इस विशिष्ट रचना के बारे में अभी तक हिन्दी जगत अनजान है। मैंने सोचा क्यों न इस रचना का हिन्दी अनुवाद कर दिया जाए ताकि हिन्दी विद्वत्-समाज भी जान पाए कि बांग्ला में न केवल दलित साहित्य मौजूद है, बल्कि आज से कोई साठ-पैंसठ वर्ष पहले से ही दलित संदर्भ अभिव्यक्त किए जा रहे हैं। हालांकि उस समय तक अस्मितावादी विमर्श का नाम भी नहीं था और न ही अद्वैत सिर्फ दलित-चेतना को केन्द्र में रखकर अपनी रचना लिख रहे थे। इसके बावजूद इस उपन्यास में दलित-चेतना (और स्त्री-चेतना भी) खुलकर अभिव्यक्त हुई है। यही कारण है कि यहाँ के सारे लेखक इसे पहली दलित रचना होने का श्रेय देते हैं। बहरहाल,

मैं अपने इस विचार को लेकर हिन्दी और बांग्ला की विदुषी प्रो. चंद्रकला पाण्डेय के पास पहुँचा। प्रो. पाण्डेय कलकत्ता विश्वविद्यालय में हिन्दी की लब्धप्रतिष्ठ प्राध्यापक रहीं हैं। उन्होंने ताउम्र बांग्ला और हिन्दी के बीच एक बेहतरीन सेतु की भूमिका निभाई है। वे इस रचना से न केवल भली-भाँति परिचित थीं, बल्कि स्वयं उनके मन में भी कई कारणों से इस उपन्यास का अनुवाद करने की इच्छा थी। उन्होंने तुरन्त सुझाव दिया कि, क्यों न, इस उपन्यास का मिलकर अनुवाद किया जाए। इस तरह 'तितास एक नदी का नाम' के चयन एवं अनुवाद की पीठिका बनी। इस उपन्यास की अनुवाद-प्रक्रिया पर प्रो. पाण्डेय ने अपनी बात में विस्तारपूर्वक लिखा है। हम दोनों अपने उद्देश्य में कितने सफल हुए हैं, ये तो हिन्दी जगत बताएगा। पुस्तक-प्रकाशन के दायित्व के लिए हम मानव प्रकाशन, कोलकाता के आभारी हैं। फ़िलहाल, उपन्यास आपके रू-ब-रू...

जय कौशल

कोलकाता

प्रथम बैसाख, 1421

रचना का परिचय

अद्वैत मल्लबर्मन का उपन्यास 'तितास एकटि नदीर नाम' पहली बार सन् 1956 में प्रकाशित हुआ था। यह बंगला साहित्य में सर्वाधिक ख्याति-प्राप्त उपन्यासों में से एक है। इसमें मछली पकड़ने वाली एक निचली जाति मालो की कथा कही गई है। मालो समुदाय का त्रिपुरा और बंगलादेश में बहने वाली नदी के साथ नाभिनाल रिश्ता है। बंगाल के हिंसक विभाजन से पूर्व इस उपन्यास में भारत और पूर्वी पाकिस्तान (अब बांग्लादेश) के बीच हिन्दू मछुआरों और मुस्लिम किसानों के बीच की पूरी जीवन्तता, शांति और परस्पर सहयोग के साथ जीवन-यापन को दर्शाया गया है। इसमें आंचलिकता और नृतत्वविज्ञान का एक अद्वितीय संयोजन मिलता है। इसी क्रम में स्थानीय आंचलिक-संस्कृति के गीत, वहाँ के त्यौहार, विभिन्न संस्कार, भाषा, प्राकृतिक आपदा, आधुनिकीकरण आदि से संसाधनों पर बढ़ता कब्जा, अपसंस्कृति का अनुप्रवेश, राजनीतिक संघर्ष, बाल मनोविज्ञान, शिक्षा के महत्व और दलित एवं स्त्री चेतना को बेहद खूबसूरती से गूँथा गया है। एक नजरिए से यह रचना कला के साथ-साथ तत्कालीन समय के ऐतिहासिक दस्तावेज़ का काम भी करती है।

इस संदर्भ में कथावस्तु को संक्षेप में देना उचित होगा। तकरीबन ढाई सौ पृष्ठ के इस उपन्यास को लेखक ने स्वयं चार खण्डों में बाँटा है। प्रत्येक खण्ड के दो अध्याय हैं। लेखक ने सबके अलग-अलग शीर्षक दिए हैं। इनमें चरित्रों की प्रचुरता है। कभी कभी तो सबको एक साथ स्मरण रखना मुश्किल हो जाता है। प्रथम खण्ड के अध्यायों के नाम क्रमशः 'तितास एक नदी का नाम' और 'प्रवास' हैं। द्वितीय खण्ड के लिए 'नया ठिकाना' और 'जन्म, मरण और विवाह', तृतीय खण्ड में 'इन्द्रधनुष' और 'रंगीन नाव' तथा चतुर्थ खण्ड में 'दुरंगी तितली' और 'भासमान' हैं। प्रथम खण्ड के 'तितास एक नदी का नाम' शीर्षक प्रथम अध्याय में तितास नदी का काव्यमय एवं दार्शनिक विवरण दिया गया है। साथ ही, तेरह मील दूर स्थित विजय नदी का भी तुलनात्मक

उल्लेख है। इस अध्याय में तितास नाम के औचित्य की व्याख्या करते हुए लेखक ने स्पष्ट किया है कि, भले ही यह अभिजात्य नदी न रही हो, किन्तु इसके तीरवासियों की आजीविका इसी पर निर्भर है, गर्मी में विजय सूख जाती है और उसके तटवासी जीविका की तलाश में अन्यत्र भटकने लगते हैं। जिसकी पृष्ठभूमि से कुछ पात्र उभरते हैं। तितास के किनारे बसे गाँवों के अधिकतर निवासी मालो हिन्दू हैं, लेकिन कुछ छोटे-बड़े मुसलमान किसानों का भी वहाँ निवास है। ससुराल से मायके आती जमीला, जोबैद अली अपने तीन बेटों और दो मजदूरों बन्दे अली और करमाली की सामान्य बातचीत से मालिक की सम्पन्नता और मजदूर की विपन्नता शब्दचित्र बनकर सामने आ गई है। इस बीच विजय के किनारे उत्तरी टीले पर बसे नित्यानंद और पश्चिमी टीले पर बसे गौरांग नामक दो गरीब भाइयों से पाठकों का परिचय होता है, जो हर सूखे के समय नयनपुर के बोधाई मालो के मछली पालन में मजदूरी कर किसी तरह अपना पेट पालते हैं। ऐसा लगता है इन पात्रों की यहाँ कोई जरूरत नहीं थी लेकिन लेखक के दिल-दिमाग में कथा-सूत्र पूरी तरह स्पष्ट है कि इन्हें कहाँ से कहाँ जोड़ना है।

‘प्रवास’ शीर्षक अध्याय में कहानी नया मोड़ लेती है। गाँव का दक्षिण टोला मालो टोला है। माघ महीने में कुमारी कन्याएँ माघ-मण्डल व्रत करती हैं और इसका समापन एक बड़े उत्सव के रूप में हुआ करता है। कन्याओं के लिए खासकर उनके भाई या पिता रंग-बिरंगी चौयारियाँ बनवाते हैं। आँगन में घोड़े-हाथी, पक्षी आदि माँड़े जाते हैं। इसके बाद कन्याएँ गाते-बजाते हुए सिर पर चौयारियाँ लिए तितास में भसाने जाती हैं। जिन्हें किनारे खड़े युवक लपककर लूट लेते हैं। लेकिन दीननाथ मालो की बेटी बासन्ती का कोई भाई नहीं है, इसलिए उसकी माँ चौयारी के लिए उसके बचपन के साथी किशोर और सुबल की मदद लेती है। उल्लसित बासन्ती जब अपनी चौयारी नदी में विसर्जित करती है तो किशोर उसे लूटने में जान-बूझकर पीछे रह जाता है, जबकि सुबल उसे निकालकर भाग छूटता है। बासन्ती को यह अच्छा नहीं लगता। क्योंकि वह भी अपनी माँ की तरह किशोर को पसन्द करती थी। उसकी माँ ने तो उसे भावी दामाद ही मान लिया था जबकि किशोर बासन्ती को लेकर वैसा कोई भाव नहीं रखता था। पाठक को आरम्भ में यह घटना मूल कथा से विच्छिन्न लग सकती है, किन्तु उपन्यास में यह अत्यन्त तात्पर्यपूर्ण है। हठात तितास में मछलियों का परिमाण घटता देख किशोर और सुबल तिलकचौद नामक एक अनुभवी मछरे को साथ लेकर उत्तर की ओर प्रवास पर निकल जाते हैं। अनेक स्थानों पर होते हुए वे शुकदेवपुर गाँव पहुँचते हैं। जहाँ किशोर एक किशोरी को पहली नजर में ही देखकर मुग्ध हो जाता है।

होली के उत्सव में ये मिलते हैं और उनमें एक गोपन प्रेम जन्म ले लेता है। शुकदेवपुर के मालो लोगों का समीपवर्ती गाँव वासुदेवपुर से पुराना झगड़ा चला आ रहा था। आपसी समझौते के लिए उस दिन गाँव के मुखिया उनके पास गए थे, लेकिन इसके पहले ही उन लोगों ने होली-उत्सव में डूबे शुकदेवपुरवासियों पर धावा बोल दिया। भयंकर मारपीट हुई, जिसे देख वह किशोरी बेहोश हो गई थी। पर किशोर अपनी जान पर खेलकर उसकी रक्षा करता है। दूसरे ही दिन शुकदेवपुर के मुखिया की पत्नी की सहायता से किशोर के साथ उस लड़की की माला-बदल रस्म कर दी जाती है। साथ ही, यह शर्त भी कि अपने देश लौटकर किशोर उससे विधिवत् विवाह कर लेगा। किशोर इस माला-बदल से वाकई खुश होता है और उसके लिए इन्तजार करती बासन्ती सुबल के लिए बच जाती है। लेकिन प्रवास से लौटते समय जल-दस्थु नाव पर हमला कर देते हैं। वे सोते हुए सुबल, किशोर और तिलक को बाँधकर नाव लूटने की कोशिश करते हैं। लेकिन नववधू उनसे बचकर पानी में कूद जाती है और तैरते-तैरते बेहोश हो जाती है। जब सब जागते हैं तो नववधू गायब पाई जाती है। इस आकस्मिक मानसिक आघात से किशोर विक्षिप्त हो जाता है। इस बीच धारा में बहते एक अकड़े हुए नारी-शरीर से तिलक और सुबल को विश्वास हो जाता है कि यह किशोर की माला-बदल बऊ थी।

‘नया ठिकाना’ शीर्षक द्वितीय खण्ड का प्रथम अध्याय चार वर्ष बाद की घटना के साथ शुरू होता है। यहाँ आकर कहानी में औत्सुक्य और रोचकता बढ़ जाती है। किशोर की वह माला-बदल बऊ अब चार वर्षीय अनन्त की माँ बन गई थी। डाकुओं की गिरफ्त से छूट जब वह नदी में कूदी, तब अनन्त उसके गर्भ में था। मछरे की बेटी जबर्दस्त तैराक थी। तैरते-तैरते थककर जब वह विजय के किनारे बेहोश पड़ी थी तो उसे वही गौरांग और नित्यानंद नामक दो बूढ़े सर्वहारा बचाते हैं जिनसे पाठक प्रथम खण्ड में ही परिचित हो चुके हैं। ये दोनों अपनी बेटी की तरह उसे सम्मान और सुरक्षा भी देते हैं। चूँकि वह अपने मायके लौटना नहीं चाहती थी और ससुराल से परिचित नहीं थी, बस उसे इतना याद था कि किशोर और सुबल तितास के किनारे बसे गोकनगाँव से आये थे। किशोरी जिसकी व्यथा-कथा ‘तितास एक नदी का नाम’ की जीवन रेखा है, लेखक ने कहीं उसके नाम का उल्लेख नहीं किया है। या तो वह किशोर की माला-बदल बऊ के रूप में आई है या फिर आमरण अनन्त की माँ के नाम से जानी गई है। शायद यह यहाँ मालो-औरतों के वर्ग-चरित्र के रूप में आई है, जो पुरुष के नाम से जुड़कर ही जानी जाती हैं। वे शून्य हैं, पुरुष अंक है। अंक के साथ जुड़कर ही उनका मूल्य होता है अन्यथा वे शून्य ही रह जाती हैं। लेकिन लेखक की खासियत

इस बात में है कि वह इन शून्यों के बीच एक अभूतपूर्व बहनापा दर्शाता है। जमीला उदयतारा से बहनापा जोड़ने के लिए पागल है तो अनन्त की माँ को सुबला बऊ से बहनापे के कारण काम का सहारा मिलता है। अनन्त की माँ उसी गाँव में अपना 'नया ठिकाना' बनाती है। इस गाँव के घाट पर उतरते ही वह एक पागल युवक को उसके बूढ़े माँ-बाप के साथ देखती हैं, जो उसे नदी में नहलाने के लिए लाए थे। वस्तुतः यही पागल उसका माला-बदल पति किशोर था, जो उसी की वजह से पागल हुआ था। लेकिन यह उसे पहचानती नहीं थी। इसी बीच नाव-दुर्घटना में सुबल भी मारा जाता है। अब बसन्ती (सुबला बऊ) उसकी विधवा के रूप में सामने आती है। इसी अध्याय में ग्राम-पंचायत के बीच से कुछ और पात्रों का परिचय मिलता है, जिनमें प्रमुख हैं- मातबर रामप्रसाद, दयाल चाँद, भारत, किसनचंद, मोहन और उसकी माँ (मंगला बऊ) आदि।

इस खण्ड के दूसरे अध्याय 'जन्म, मरण और विवाह' में मालोपाड़ा के सम्पन्न कालोबरन के परिवार का उल्लेख है, जिसके पुत्र के अन्नप्राशन में बासन्ती और अनन्त की माँ, दोनों आमन्त्रित होती हैं। वहाँ कुछ प्रसंग उठते हैं, फिर संक्रान्ति-पर्व पर ये पागल किशोर के घर में ही पीठा बनाने के लिए जाती हैं। यहाँ कथा के अनेक पूर्वापर सम्बन्ध जुड़ते हैं, जिनसे अनन्त की माँ समझ जाती है कि किशोर ही उसका माला-बदल पति था। बासन्ती को भी इस बात का कुछ-कुछ आभास हो गया था कि यही वह नारी है, जिसके लिए किशोर आज पागल था। अनन्त की माँ किसी भी तरह पागल के साहचर्य में आना चाहती है और पुरानी स्मृतियों को सामने लाकर उसे पुनः होशमंद बना लेना चाहती है। इसी प्रयास में होली के दिन उसे अबीर लगा देती है, लेकिन इससे किशोर का उन्माद बढ़ जाता है। उत्तेजना में वह उसे गोद में उठाकर चिल्लाने लगता है- डाकुओं ने सती को हाथ लगा दिया, बचाओ, मारो आदि। होली के हुल्लड़ में मतवाले गाँववाले पागल के इस व्यवहार को स्त्री-असम्मान समझ लेते हैं और उसकी जमकर पिटाई की जाती है। मार के आघात से किशोर दूसरे ही दिन मर जाता है और इस घटना से आहत, होकर पहले से ही थकी, टूटी अनन्त की माँ भी चार दिन के बाद मृत्यु को प्राप्त हो जाती है।

तृतीय खण्ड के 'इन्द्रधनुष' शीर्षक पहले अध्याय में भयंकर आर्थिक अभाव के बावजूद बासन्ती को अनाथ अनन्त का दायित्व लेते देखा जाता है लेकिन निरन्तर उपेक्षा, मारपीट से उसे यह आश्रय छोड़ देना पड़ता है। अनन्त एक नितान्त आत्मसम्मान, कल्पनाशील, भावुक, स्वतन्त्रचेता बालक है। वह बनमाली और उसकी बहन उदयतारा के साथ उनके गाँव चला जाता है। यहाँ आकर लेखक बनमाली की दो और बहनों

आसमानतारा और नयनतारा तथा उनके पतियों का पाठकों से परिचय कराता है, जो बनमाली के अविवाहित रहने से चिन्तित हैं। इसी गाँव के कीर्तन-उत्सव में एक वैष्णव-साधु अनन्त के मधुर कण्ठ से प्रभावित होते हैं और उसे पढ़ाने का सुझाव देते हैं। बालक अनन्त को इसी गाँव की एक कन्या अनन्तबाला भा जाती है। वैष्णव साधु की मदद से अनन्त का स्कूल में दाखिला होता है और वह गाँव की एक नाई जाति की स्त्री की प्रेरणा से स्कूली शिक्षा समाप्त कर आगे की पढ़ाई हेतु कुमिल्ला चला जाता है।

इस खण्ड में मूल कथा के साथ अनेक ऐसी छोटी-छोटी घटनाएँ घटती हैं, जो प्रथमदृष्टया मूल-कथा से अलग सी प्रतीत होती हैं, लेकिन आगे बढ़ने पर इनका संगुम्फन देखते ही बनता है। फिर आती है सम्पन्न मुस्लिम कृषक कादिर, उसके बेटे छादिर, पुत्रवधू खुशी और पौत्र रमू की कथा। छादिर नौका-दौड़ की तैयारी में रंगीन नाव बनवाता है। इसकी निर्मित के विस्तृत विवरण में रमू के माध्यम से बाल-मनोविज्ञान, जाति-विमर्श, कोर्ट-कचहरियों की धूर्तता, शिक्षा का महत्व आदि अनेक पक्ष उद्घाटित होते हैं। दूर-दूर से लोग अपनी नावों में लदकर नौका-दौड़ को देखने पहुँचते हैं। बनमाली की नाव में उदयतारा के साथ अनन्त, अनन्तबाला आदि बैठे थे। संयोगवश कुछ देर बाद सुबला बऊ की नाव भी उसकी नाव से आ सटती है। जब सुबला बऊ अनन्त को देखती है तो ममता, क्रोध, ईर्ष्या आदि मिले-जुले भावों से भर उठती है। उत्तेजित होकर वह अपनी नाव से कूदकर बनमाली की नाव में आ जाती है। अनन्त को लेकर यहाँ दो निस्संतान औरतों की मारपीट और हिंस्र प्रतियोगिता अपने चरम पर दिखाई देती है। इसमें सुबला बऊ पराभूत होती है। हताश होकर वह अपने घर लौट आती है। मुहल्ले में शर्मिंदगी के भय से घर से बाहर निकलना बन्द कर देती है। उधर नौका दौड़ में छादिर की नाव दुर्घटनाग्रस्त हो जाती है।

अंतिम चतुर्थ खण्ड में आकर लेखक आकाश में दूर तक पतंग की तरह उड़ते कथा-सूत्र को समेटने लगता है। बासन्ती अपनी पराजय से विपर्यस्त है। इस बीच मालोपाड़ा में अपसंस्कृति का अनुप्रवेश होता है और मालो लोगों की एकजुटता में भी दरार पड़ जाती है। उनकी समृद्ध लोक-संस्कृति पर बाजारू जात्रा-गान और सखी नाच कब्जा करने लगते हैं। सुबला बऊ गाँव के कुछ स्व-संस्कृति प्रेमी लोगों को नेतृत्व देती है और वे लोक-गीतों की महफ़िल जमा अपनी संस्कृति को बचाने की आप्राण चेष्टा करते हैं लेकिन मालो लोगों की आपसी फूट के कारण वे उसे बचा नहीं पाते। वह तितास, जो जलजीवियों की जिन्दगी थी, हठात सूखने लगती है। नदी के बीच बालू के द्वीप उभरने लगते हैं। सूखी जमीन पर दूर-दराज से आए किसान और जमींदार

कब्जा कर लेते हैं। मछरे न घर के रह पाते हैं, न घाट के। अनन्त शहरी हो जाता है। और निस्संग रह जाती हैं बासन्ती, उदयतारा और अनन्तबाला। उपन्यास का अन्त 'भासमान' शीर्षक से है। इस अध्याय में एक-एक कर सब भुखमरी के शिकार होकर मरते जाते हैं। बस दो लोग बचते हैं -किशोर का बाप रामकेशव और सुबला बऊ बासन्ती। सूखती नदी के किनारे लुटिया भर जल की लालसा लिए मृतप्रायः बासन्ती को नीम-बेहोशी में अपना पूरा जीवन चलचित्र की तरह सामने घूमता दिखाई देता है। यादों की टकराहट से क्षण-भर के लिए उसकी मूर्च्छा टूटती है, वह यथार्थ का अनुभव करती है, पर फिर यादों में डूब जाती है। उसे अनन्त की याद भी आती है कि वह बाबू बना लोगों में भात बाँट रहा है। पर वह उसकी नजर बचाकर दूर सरक जाती है। लेकिन यह तो उसका सपना था। उपन्यास ट्रेजेडी के साथ समाप्त होता है। कभी जहाँ तितास बहा करती थी, अब वहाँ सिर्फ धू-धू रेतराशि है। मरणासन्न बासन्ती की स्मृति कथा हिन्दी की अमर कहानी 'उसने कहा था' की 'फ्लैश बैक पद्धति' की याद दिला देती है।

संक्षेप में इस कथा को देना इसलिए जरूरी लगा क्योंकि इस उपन्यास की प्रकृति अन्य उपन्यासों से बिल्कुल भिन्न है। इसमें चरित्र और घटनाओं का जो आधिक्य है, उसके जरिए अनेक पारम्परिक लोक उत्सवों तथा आँचलिक पर्वों खासकर महिलाओं के बीच प्रचलित पारम्परिक अनुष्ठानों, गीतों, रीति-रिवाजों, खान-पान, पोशाकों, वर्ग-विभाजन आदि का विस्तृत उपाख्यान मिलता है।

पूरी कथा-संरचना को देखते हुए इसे एक नदी-केन्द्रित रचना मात्र कहकर नहीं छोड़ा जा सकता। इसमें जलजीवियों (जल पर निर्भर रहने वालों) की एक अनजानी, अनदेखी मार्मिक जीवन कहानी स्फुरित हुई है। इनके सामने जल का सूखना कैसा दर्दनाक प्रहसन बनकर उभरता है, ये वही जानते होंगे, जिन पर बीती है। अनेक प्रकार के दुःख-दारिद्र्य के बीच भी वे अपना गीत-संगीत और संस्कृति नहीं भूलते। बड़ी नावों के द्वारा छोटी नावों की दुर्दशा को दिखाते हुए उन्होंने ब्राह्मण-संस्कृति के समानांतर दलित-संस्कृति के प्रति उपेक्षा भाव को अत्यन्त सजीव रूप में चित्रित किया है। कलकत्ते के एक नितान्त उपेक्षित गरीब मुहल्ले की एक छोटी-सी कोठरी में रहते हुए लेखक ने बार-बार अभिजात्य जीवन की उपेक्षा सही है, पर शहर में बसकर भी वे शहरी नहीं हो सके 'तू बाभन मैं कासी का जुलहा' की तर्ज पर उनमें अपनी जाति-संस्कृति के प्रति एक गर्व का भाव मौजूद था। उन्होंने बांग्ला साहित्य के ख्यात लेखक माणिक बन्दोपाध्याय के संदर्भ में एक बार कहा भी था, 'माणिक बन्दोपाध्याय मास्टर आर्टिस्ट हैं, लेकिन हैं तो ब्राह्मण के बेटे-रोमांटिक। और मैं हूँ मालो का बेटा-

यथार्थजीवी।' कोई चाहे तो इसे एक मल्ल के अहंकार के रूप में भी देख सकता है, पर वस्तुतः यह कबीर की तरह बहुत निर्मल है। अपने जीवनानुभवों से उन्होंने नदी-केन्द्रित लोगों के जीने-मरने की कहानी के साथ नदी के सृजन-संहार की कथा एवं ग्राम-बांग्ला के नारी समाज के अपने व्रत-उपवासों, हास-परिहासों, चलन-संस्कृति के उष्ण आस्वाद का परिचय कराया है। साथ ही, मुसलमान किसानों और हिन्दू दलितों (मालो) के आपसी मेल-मिलाप, घटनाओं आदि को नदी-प्रवाह के साथ जोड़े रखा है। अन्त में तितास केवल एक नदी भर नहीं रह जाती। वह एक प्रवहमान जीवन का प्रतीक एक मायामय अभिव्यक्ति बन जाती है। एक चेतन मनुष्य और उसकी सत्ता के अन्तराल में निरन्तर बचे रहने की एक जलधारा किस तरह बहती रहती है, वह इस रचना में समाहित है।

अद्वैत की मृत्यु के उपरान्त यह रचना इतनी लोकप्रिय हुई कि 10 मार्च, 1963 में भारतीय गणनाट्य संघ के प्रयास से इसका नाट्य-मंचन किया गया। इसका नाट्य-रूपान्तर प्रसिद्ध भारतीय फ़िल्म अभिनेता उत्पल दत्त ने किया था और स्वयं अभिनय के साथ-साथ विजन भट्टाचार्य और चर्चित गायक निर्मलेन्दु चौधरी को प्रमुख भूमिकाएँ दी थीं। उनकी जन्मभूमि कुमिल्ला में 1993 में नाटककार शान्तनु कायदार ने अबुल खैर और मोहम्मद यूसुफ़ के साथ इसका मंचन किया था। यह उपन्यास अंग्रेजी में अनूदित हो चुका है और इस समय भारत और बांग्लादेश के अनेक विश्वविद्यालयों के एम. ए. पाठ्यक्रमों में पढ़ाया जाता है।

प्रसिद्ध भारतीय फ़िल्म निर्माता और पटकथा लेखक श्री ऋत्विक् घटक ने 1973 में अद्वैत मल्लबर्मन के इसी उपन्यास पर 'तितास एकटि नदीर नाम' शीर्षक से ही एक फ़िल्म बनाई थी, जिसे 2010 में आयोजित 63वें काँस फिल्मोत्सव में 'काँस क्लासिक्स' के अंतर्गत प्रदर्शित किया गया था। ऋत्विक् घटक ने इसके निर्माण के दौरान लिखा था, 'तितास पूर्वी बंगाल का एक खण्ड-चित्र, एक चलायमान जीवन का सशक्त वर्णन है। पूरे बंगाल (पूर्वी और पश्चिमी) में ऐसा उपन्यास दुर्लभ है। इसमें एक ओर प्रचुर नाटकीय उपादान हैं। तीव्र गति से घटती दृश्य-घटनाएँ हैं और प्राचीन लोक-संगीत के श्रव्य-टुकड़े हैं। समग्र रूप से एक सतत आनंद और अनुभूति प्रवणता है। ऐसा लगता है कि लेखक के भीतर की छटपटाहट वर्षों से बाहर आने के लिए बेचैन थी। इसलिए उनके इस उपन्यास में जो आन्तरिकता है, वह अवर्णनीय है। मैंने फ़िल्म बनाते हुए सभी घटनाओं को अद्वैत की नजरों से देखने की कोशिश की है। उन्होंने जिस समय तितास को देखा था, तब तितास और उसकी तीरवर्ती ग्रामीण-सभ्यता मरणासन्न थी। मैंने फ़िल्म में मृत्यु के बाद उसके पुनर्जीवन की कल्पना की है। मेरी फ़िल्म में

गाँव नायक है तो तितास नायिका, जो फ़िर से युवा हो गई है।’

तितास है तो एक नदी, लेकिन यहाँ उपन्यास में वह अपने पूरे मानवीकृत रूप में है, जिसके किनारे हाड़-मांस के पुतलों की अनेक छवियाँ अंकित हैं। मालो सम्प्रदाय के लोग, संगीत और कविता से उनका प्रेम, अपसंस्कृति से लड़कर अपनी संस्कृति को स्थापित करने की अदम्य लालसा, दुःख के घनीभूत क्षणों में बूंद-बूंद रस-ग्रहण की हंसी-ठिठोलियाँ और उनका प्रबन्धात्मक विवरण उपन्यास की जान है। यह चंचल नदी रचाती है, बसाती है, मिटाती है, बनाती है, और इन्हीं के बीच से उभरते हैं किशोर, अनन्त और सुबल। ज्ञान की खोज में अनन्त अकेले निकल पड़ता है किशोर अपना सर्वस्व खोकर पागल हो जाता है और सुबल पूंजीवादियों के कुचक्र का शिकार बनता है। इसी नदी की लहरें बासन्ती और सुबला बरू बनकर उभरती हैं। दोनों में अदम्य जिजीविषा है, लेकिन दोनों का अन्त बेहद दुःखद है। अपने नग्न-यथार्थ के चित्रण, सुगठित कथन शैली, मिथकीय व्याख्या और भव्य-संरचना तथा संगीतमय कथानक के कारण यह उपन्यास समकालीन बंगला साहित्य का एक ‘मास्टरपीस’ है।

इस उपन्यास की एक सबसे बड़ी विशेषता यह है कि देश-विभाजन के पहले हिन्दू-मुस्लिम सम्प्रदायों के बीच जो मिठास थी, उसका वर्णन तितास में यत्र-तत्र आया है, लेकिन विभाजन के बाद दोनों संप्रदायों में आई तितास का इस तितास में कोई उल्लेख नहीं। बाउल, सूफ़ी और अध्यात्म दोनों संप्रदायों के अपने हैं, खान-पान, रहन-सहन, बातचीत, भाषा-बोली, मुहावरे सब एक जैसे हैं, सब एक-दूसरे के उत्सवों में खुलकर भाग लेते हैं। खेतिहरों और मछेरों की संस्कृतियों का एका तितास की रीढ़ है और दलित संदर्भ यहाँ अपनी जगह है।

नदी-केन्द्रित कुछ विश्व स्तर की रचनाओं यथा अर्नेस्ट हेमिंग्वे के ‘एन ओल्डमैन एण्ड द सी’, समरेश बसु के ‘गंगा’, नरेन्द्रनाथ मित्र की कहानी ‘यात्रापथ’, मिखाइल सालोकेव के ‘एण्ड क्वाइट फ़्लोज द डॉन’ तथा जॉर्ज इलियट के ‘द मिल ऑन द फ़्लॉस’, शिव शंकर पिल्लै के ‘चेम्पीन’ नागार्जुन के ‘वरुण के बेटे’, उदयशंकर भट्ट के ‘सागर, सीपी और मनुष्य’, माणिक बंदोपाध्याय के ‘पद्मा नदी माँझी’, विभूतिभूषण बंदोपाध्याय के ‘इच्छामती’ सरोज कुमार चौधरी के ‘मयूराक्षी’, गुणमय मन्ना के उपन्यास ‘प्रवाहिनी गंगा’ और सैय्यद वली उल्लाह के ‘कांदो नदी कांदो’ की चर्चा की जा सकती है। इन सबसे तुलना करने पर भी ‘तितास एक नदी का नाम’ इन सबमें न केवल विशिष्ट और अपने आप में अनोखी है वरन कालजयी और कालजीवी भी।

—चन्द्रकला पाण्डेय

रचनाकार का परिचय

अद्वैत मल्लबर्मन का जन्म 1 जनवरी, 1914 को पूर्वी बंगाल (अब बांग्लादेश) के एक दलित मालो परिवार में हुआ था। यह परिवार ब्राह्मणबाड़िया जिले के गोकर्णघाट गाँव में बसा था। इनके पिता का नाम अधरचन्द्र और माँ का नाम शारदा था। गोकर्णघाट से सटकर ही तितास नदी बहा करती थी। जो मालो परिवारों के जीवन की धुरी थी। बचपन में ही गरीबी और भुखमरी के कारण इनके माता-पिता एवं भाइयों का देहान्त हो गया था। इनकी इकलौती दीदी बची थीं, वे भी दो बच्चों के जन्म के बाद विधवा होकर मायके लौट आई थीं। 1934 में अद्वैत स्थाई तौर पर कलकत्ता आ गए। इसी बीच उनकी दीदी का भी देहान्त हो गया। कुल मिलाकर, 'तितास एकटि नदीर नाम' शीर्षक से बांग्ला साहित्य को एक अविस्मरणीय रचना देने वाले अद्वैत का संबंध बेहद निम्नवर्गीय दलित मालो परिवार से था, जिसे मोहल्ले के आस-पास के लोग उपेक्षा से 'गावर-टोला'* नाव रंगने वालों का मोहल्ला कहा करते थे। तथाकथित अभिजात्य समाज की नजर में ये मेहनतकश जल के दास अत्यन्त तुच्छ लोग थे।

गोकर्णगाट के पिछड़े इलाके से एक बालक इतना आगे कैसे बढ़ा, इसका उल्लेख तितास के प्रथम संस्करण की भूमिका में दिया गया है, बचपन से ही अद्वैत में ज्ञान-प्राप्ति की बहुत ललक थी। प्राथमिक शिक्षा उन्होंने स्कूल के वजीफ़े से पूरी की। अन्य मालो बच्चों की तरह इनका बचपन भी कुपोषण और भुखमरी में बीता। पाँच मील की दूरी तय कर जब थका-हारा यह बच्चा पाठशाला में अपनी जगह पर बैठता तो सहपाठियों का ध्यान भले ही उन पर न जाता हो, लेकिन कुछ सहृदय शिक्षक अपने इस प्रिय छात्र के मलिन चेहरे पर भूख के चिह्न साफ़ पढ़ लेते थे। भयंकर गरीबी, अभाव और पीड़ा में भी अद्वैत की प्रतिभा छोटी-छोटी कविताओं में नजर आने लगी

* नाव रंगने वालों का मोहल्ला।

थी। कुछ शिक्षकों ने इन्हें आगे बढ़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इनके एक शिक्षक श्री सनातन बर्मन ने इनकी साहित्य-साधना को निखारने में बड़ी मदद की। उन्होंने अपने घर में ही अद्वैत के रहने की व्यवस्था कर दी और मिडिल तक की पढ़ाई पूरी करवाई। सन 1933 में इन्होंने अन्नदा हाई-स्कूल से प्रथम श्रेणी में मैट्रिक परीक्षा पास की और बांग्ला भाषा में सर्वोच्च अंक प्राप्त किए। उच्च शिक्षा के लिए ये कुमिल्ला शहर (अब बांग्लादेश में) के विक्टोरिया कॉलेज में भर्ती हुए। खाने और रहने के एवज में वे कुछ छात्रों को पढ़ाने लगे लेकिन गरीबी से जूझते हुए इन्हें अपनी पढ़ाई बीच में ही छोड़नी पड़ी और 1934 में कलकत्ता चले आए। सन 1934 से 1951 की अवधि को उनकी रचनात्मकता का सर्वश्रेष्ठ समय कहा जाएगा। लेकिन इसमें भी जीविका का आतंक उन्हें हर पल सालता रहता था। एक पिछड़े गाँव की पिछड़ी जाति के संकोची युवक के लिए एक सर्वथा अपरिचित शहर में एक टुकड़ा जमीन या सिर पर एक बित्ता आसमान खोजना आसान काम नहीं था। लेकिन खुद को स्थापित करने का जो दृढ़ संकल्प उनमें था, जिन दुःखद और अनिश्चित जीवन स्थितियों से जूझते हुए उन्होंने अपनी रचनार्थिमता को जिलाए रखा, वह बंगला ही नहीं सम्पूर्ण विश्व साहित्य में एक मिसाल है। अपनी जीविका के लिए उन्होंने कई जगहों पर काम किया, जैसे-1934-35 में त्रिपुरा हित-साधिनी सभा के मुख-पत्र में पत्रकारिता। 1935 में प्रेमेन्द्र मित्र के संपादन में निकलने वाली पत्रिका नवशक्ति' से जुड़ाव। 1938 में श्री सागरमय घोष उनके सहायक बनकर आए और उन्हें 35 रुपए वेतन पर संपादक का पद मिला, लेकिन इनके मन में तो तितास बसी थी। तब तक तितास किनारे के जीवन की अनेक छवियाँ उनकी रचनाओं में प्रतिबिम्बित होने लगी थीं। इनकी आरम्भिक रचनाएँ नवशक्ति में छपीं, पर 1941 में यह पत्रिका बन्द हो गई। उसके बाद ये 'आजाद' और 'मोहम्मदी' नामक पत्रिकाओं से जुड़े। 'मोहम्मदी' अद्वैत के जीवन में एक युगान्तर की तरह आई। कुछ कविताओं के बाद इसी में बंगला संवत् 1352 के सावन महीने से माघ तक के सात अंकों में 'तितास एकटि नदीर नाम' धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुआ, लेकिन पूरा छपने के पहले ही उन्हें 'मोहम्मदी' छोड़ देनी पड़ी। क्योंकि मालिकों से उनकी नहीं बनी। वे नहीं चाहते थे कि अद्वैत ऐसा कुछ लिखें जिसमें राष्ट्रप्रेम बह रहा हो और वह ब्रिटिश हुकूमत को उकसाए। उन्होंने तितास के कुछ अध्याय जिन लोगों को दिए थे, वे या तो उन लोगों द्वारा छिपा लिए गए या खो दिए गए। उनकी प्रबल इच्छा के बावजूद तितास ग्रन्थ के आकार में बंगला संवत् 1363 (1956) में ही छप सका। तब तक उनकी मृत्यु हो चुकी थी। बंगला के साथ-साथ अंग्रेज़ी पर भी अद्वैत की खासी पकड़ थी। उन्होंने इरविन स्टोन के अंग्रेज़ी उपन्यास

‘लस्ट फॉर लाइफ़’ का बंगला अनुवाद किया था, जिसके नायक और अद्वैत के स्वयं के जीवन में एक अद्भुत साम्य मिलता है। वह भी सैंतीस साल की उम्र में चल बसा था। जिस तरह उसका जीवन वारिनेजर की कोयला खदानों के गरीब सर्वहारा मजदूरों के बीच गुजरा था, वैसे ही अद्वैत का तितास के किनारे गरीब उपेक्षित मांझी-मल्लाहों के बीच।

वस्तुतः अद्वैत की जीवन कथा दुर्भाग्य और प्रतिकूलता के बीच साहसिकता की जय-गाथा है। शैशव में ही अपनों को भूख और इलाज के अभाव में दम तोड़ते देखा, लेकिन उनकी आँखों में बसा आत्मसम्मान और आत्मप्रतिष्ठा का सपना कभी बुझा नहीं। स्कूली जीवन तक का पथ काँटों और फ़िसलन से भरा था। इस जल-दास दरिद्र परिवार के पास संपत्ति के नाम पर बांस-बेंत की एक झोंपड़ी, जाल और छोटी सी डेंगी (किशती) भर थी। इनके लिए ‘जलजीवी’ शब्द सबसे अधिक संगत है क्योंकि जहाँ से इनका पालन-पोषण होता था, वह इकलौती तितास नदी थी। स्वयं लेखक के वर्णनानुसार, ‘तितास एक ऐसी नदी; जिसके दोनों किनारों के बीच पानी ही पानी था। उसके वक्षस्थल पर जीवन्तता से भरपूर लहरें अठखेलियाँ किया करती थीं। वह स्वप्न की गति से बहती जाती, भोर की हवा से उसकी तंद्रा टूटती; दोपहर का सूरज उसे उत्ताप देता और रात को चाँद-सितारे उसे लोरी गाकर सुलाने की कोशिश करते; लेकिन वे ऐसा कर नहीं पाते थे।’ इस मनमौजी नदी की तरह ही जल-पुत्र अद्वैत का मिजाज भी शाही था। उन्होंने कभी किसी के सामने हाथ नहीं फैलाया, न किसी को अपनी व्यथा सुनाई। चुपचाप काल के प्रहार सहते रहे। जीविका के स्थानों पर निष्ठा से अपना काम किया। कभी अतिरिक्त काम के बोझ से नहीं घबराए। अल्पायु में ही क्षय-रोग से ग्रस्त होने पर उनके बंधु-बांधवों ने उन्हें उत्तर कलकत्ता के कचरा-पाड़ा अस्पताल में भर्ती करा दिया था, लेकिन वे वहाँ से भाग आए। उन्होंने 37 साल की आयु में कलकत्ता के नारिकेल-डांगा इलाके में स्थित किराए की एक कोठरी में दम तोड़ा था। वे अपने पीछे किताबों का एक विपुल संग्रह छोड़ गए थे। उन्हें जो भी पैसा मिलता, वे उसकी किताबें खरीद लेते। उनमें स्वाध्याय की जबरदस्त चाह थी। नृत्यशास्त्र, समाज-विज्ञान, इतिहास और साहित्य में डूबे रहना उनका प्रिय काम था। उनकी मृत्यु के बाद लेखक प्रेमेश्वर मित्र के प्रयासों से उनके ग्रन्थ कलकत्ते की राममोहन लाइब्रेरी को संरक्षण के लिए सौंप दिए गए।

बीस साल के ग्राम और सत्रह साल के नगर जीवन के अनुभवों से उनका निजी जीवन दर्शन निर्मित हुआ था। जिन परिस्थितियों में उनका जीवन गुजरा था उनमें एक साहित्य साधक का सफल होना बेहद दुष्कर कार्य था, फिर भी वे एक ऐसी मौलिक

रचना दे गए जो अकेली उन्हें अमर बनाने के लिए पर्याप्त है। वे अपने गाँव को दिल में बसाए कलकत्ता आए थे और यहाँ के सम-सामयिक समाज और सचेतन नगर-संस्कृति को दिल-दिमाग में उतार लिया। दो-विश्व-युद्धों के बीच उलझे हुए देशकाल को उन्होंने समझा, अन्तरराष्ट्रीय परिस्थितियों के बारे में अत्याधुनिक तथ्यों और समयोचित विश्लेषण की क्षमता उनमें पत्रकारिता से जुड़े रहने के कारण विकसित हुई थी। इसी कारण उन्होंने अपने जलजीवी समाज की लोक-संस्कृति (जिसे वे अपना पारम्परिक संसाधन मानते थे) और आधुनिकता, दोनों के मेल से 'तितास एकटि नदीर नाम' की रचना की।

अद्वैत अपनी रचना के समानान्तर आज भी बंगला साहित्य में अकेले खड़े हैं। इस एक मात्र रचना ने उन्हें अल्पायु के अभिशाप से मुक्त कर अमर बना दिया है।

—जय कौशल

प्रथम संस्करण की भूमिका

आज इस ग्रंथ के प्रकाशन के दिन हम सबसे पहले बड़े ही वेदनार्त्त मन से अपने प्रिय बंधु अद्वैत मल्ल बर्मन को स्मरण करते हैं। इलाज के लिए काँचरापाड़ा यक्ष्मा अस्पताल में भर्ती होने से पहले उन्होंने इस ग्रंथ की पाण्डुलिपि हमें सौंप दी थी। उनके जीते-जी हम इसका प्रकाशन नहीं करवा पाए। लेखक की मृत्यु के बाद भी कई वर्ष बीत गए क्योंकि 'आनन्द बाजार पत्रिका' से अनुकूल अर्थ-सहायता नहीं मिल पाई। अद्वैत का इलाज ठीक ही चल रहा था और लग रहा था वे शीघ्र ही स्वास्थ्य-लाभ कर लेंगे। लेकिन उनकी मृत्यु का इतिहास कुछ और ही बन गया है। उस इतिहास के करुण अध्याय को यहाँ प्रकट करना हमें जरूरी नहीं लग रहा।

बंगाल के पत्रकार जगत में अद्वैत का विशेष सम्मान था। नवशक्ति-युग में प्रेमेन्द्र मित्र के सहकर्मी के रूप में उन्होंने अपना पत्रकार जीवन आरंभ किया था। बाद में उन्होंने 'आजाद-मुहम्मदी' और 'युगान्तर' जैसे पत्रों में भी काम किया। अंत में मृत्यु-पर्यन्त वे 'देश' और 'विश्व भारती' प्रकाशन से जुड़े रहे। अद्वैत ने जिन दिनों 'नवशक्ति' के सह-संपादक के रूप में काम शुरू किया, बंगाल में पत्रकारों का वेतन बेहद कम हुआ करता था। वस्तुतः 'देश' एवं 'विश्व भारती' से जुड़ने के पूर्व उन्हें भयंकर आर्थिक अभाव से गुजरना पड़ा था। दुनियादारों की नजर में उनका यह आर्थिक अभाव उन्हें ही आत्म-नियंत्रण को मजबूर कर सकता था क्योंकि उन पर कोई पारिवारिक दायित्व नहीं था। वे खुद अविवाहित थे और बचपन में ही उनके माता-पिता की मृत्यु हो चुकी थी। लेकिन इस सामान्य आमदनी वाले बंधु की दरियादिली को पहचानने में उनके दूर-दराज के रिश्तेदारों ने भी भूल नहीं की थी। हमने स्वयं अद्वैत को अपने हिस्से के मुट्ठी-भर अन्न को लोगों में बाँटने के बाद खाते देखा था।

इस आर्थिक तंगी का एक और बड़ा कारण संभवतः उनका पुस्तक-प्रेम था। भयंकर अर्थाभाव से घिरे रहने के बावजूद वे जीवन-भर बहुमूल्य पुस्तकें खरीदते रहे।

अद्वैत की मृत्यु के बाद उनके घर से उपलब्ध विपुल ग्रंथ-भंडार को उनके मित्रों ने राममोहन लाइब्रेरी को सौंप दिया। साहित्य, दर्शन और ललित-कला की ऐसी अलभ्य पुस्तकें मिलना अन्यत्र दुर्लभ था। पुस्तकालय-प्रबंधकों ने उनके हजारों ग्रंथों को एक पृथक विभाग में संरक्षित कर रखा है।

बचपन से ही अद्वैत में प्रबल ज्ञान-लिप्सा थी। ब्राह्मणबाड़िया से सामान्य दूरी पर बसे एक दरिद्र मालो परिवार में अद्वैत का जन्म हुआ। इस अध्यवसायी बालक ने अपनी स्कूली शिक्षा वजीफ़े की राशि से पूरी की। अन्य मालो बच्चों की तरह इनके माता-पिता में भी इनके भरण-पोषण की समुचित व्यवस्था करने की क्षमता नहीं थी। जेलेपल्ली (मछेरों के मोहल्ले) से पाँच मील पैदल चलकर धूल-धूसरित अवस्था में जब ये स्कूल पहुँचते और अपने निर्दिष्ट स्थान पर चुपचाप बैठ जाते थे, तब उनके सहपाठियों का ध्यान भले ही उन पर न जाता रहा हो लेकिन कुछ संवेदनशील, सहृदय अध्यापक अपने इस छात्र के मलिन चेहरे पर उपवास के चिह्नों को साफ़ पढ़ लेते थे।

बचपन से ही उनके मन में एक कठिन साधना ने जन्म ले लिया था। वह कितनी फलीभूत हुई, यह अनुभव तो हमें नहीं, लेकिन इतना जरूर कह सकते हैं कि छोटी-सी उम्र में ही उनके साहित्यिक कृतित्व ने सभी का ध्यान आकर्षित कर लिया था। जिस उम्र में जितना पढ़ा जा सकता है अद्वैत ने उसकी तुलना में कहीं अधिक पढ़ डाला था तथा अनेक पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ, लेख, कविताएँ आदि लिखकर कई पुरस्कार भी प्राप्त किए थे। स्कूली शिक्षा समाप्त कर अपने हित-चिन्तक शिक्षकों की मदद से उन्होंने आगे की पढ़ाई शुरू की। पुरस्कार में प्राप्त धातु-पदकों को साथ ले ये उच्च-शिक्षा के लिए कुमिल्ला (वर्तमान में बांग्लादेश के एक जिले का नाम) चले आए।

वे कुमिल्ला कॉलेज में भर्ती तो हुए, लेकिन अनेक प्रतिकूल कारणों से अपनी पढ़ाई बहुत आगे तक नहीं ले जा सके इसके बाद संभवतः नवशक्ति-प्रकाशन काल में कैप्टेन नरेन्द्र-दत्त उन्हें कलकत्ते ले आए। उनका पूरा लेखन विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में बिखरा पड़ा था, उनमें से कई पत्रिकाओं के विशेषांकों को तो अभी तक प्राप्त नहीं किया जा सका। उनके दो-एक पूरे उपन्यास अथवा उनके कुछ खण्ड भी कुछ पत्रिकाओं के विशेषांकों में प्रकाशित हुए थे लेकिन अद्वैत की पूरी साहित्य-साधना में यह ग्रंथ विरल है। 'तितास एकटि नदीर नाम' सबसे पहले 'मुहम्मदी' मासिक पत्रिका में धारावाहिक रूप में छपना शुरू हुआ। ग्रंथ के कुछ स्तवकों के प्रकाशन के साथ ही ये साहित्य-प्रेमियों के बीच विशेष चर्चित हो गए थे। किन्तु ठीक उसी समय इस ग्रंथ

की पूरी पाण्डुलिपि कहीं रास्ते में खो गई। कहने की जरूरत नहीं कि यह अद्वैत के जीवन की सबसे मार्मिक घटना थी।

बंधु-बांधवों एवं पाठकों के अतिशय आग्रह पर लेखक ने भग्न हृदय से पुनः तितास-कथा को पकड़ा। अपना परिवार न होने के बावजूद उसी समय हठात उनकी जिम्मेदारी बढ़ गई थी क्योंकि तितास-पार के अनेक मालो परिवारों को उखड़कर पश्चिम बंगाल चले आना पड़ा था। काम-काज की व्यस्तता से किसी तरह फुरसत निकाल वे कलकत्ते से बाहर जाकर उनसे मिल-जुल आया करते थे। उनकी आर्थिक सहायता के मकसद से उन्होंने 'देश' पत्रिका और 'विश्व भारती' प्रकाशन में कुछ अतिरिक्त काम करना शुरू किया। अत्यधिक परिश्रम से उपार्जित पारिश्रमिक से वे अपने पेट भरने लायक राशि रख शेष उनके बीच बाँट देते थे। दिन-भर की नौकरी के बाद अतिरिक्त आमदनी के लिए अधिक से अधिक लेखन का प्रतिकूल प्रभाव भी उनके स्वास्थ्य पर पड़ रहा था। कलकत्ते की पूर्वी उपनगरी षष्ठीतल्ला के एक मकान में उन्होंने छत पर एक कमरा किराए पर ले रखा था। इस मकान के अधिकतर हिस्से में रेल-मजदूर रहते थे। नीचे आँगन से लेकर बरामदों तक उनकी टूटी-बिखरी गृहस्थी दीखती रहती। दिन-भर के परिश्रम से थके अद्वैत उस नितान्त गन्दे और अस्वास्थ्यकर आँगन से होते हुए सीलन-भरी अँधेरी सीढ़ियाँ चढ़कर जब अपने कमरे में पहुँचते, तब उन्हें छत पर झँकता निस्सीम आकाश नजर आता। अपनी थकी देह ले रात की गहनता में फ़िर वे 'तितास-कथा' लेकर बैठ जाते। क्रमशः नगर के आकाश से धुएँ का कोहरा पुँछकर तितास के हृदय पर उतर रंगीन आकाश से मिल एकाकार हो जाता था।

इस ग्रंथ के संबंध में हमारे पास कहने को कुछ नहीं है। इस पर आम पाठक ही अपनी राय देंगे लेकिन इतना तो कहना ही होगा कि आधुनिक बंगला साहित्य में जीवन के सहज रूप को उकेरने वाले चित्र घटते जा रहे हैं। जीवन से प्रगाढ़ परिचय के अभाव में लेखक अनेक स्थानों पर मिथ्या-रोमांटिक तत्त्व गढ़ा करते हैं, अथवा सत्य को धोखा देने के क्रम में अपनी दृष्टि को वक्र कर लिया करते हैं। अद्वैत मल्लबर्मन का लेखन ऐसी मिथ्या-रोमांटिकता अथवा सत्य की छलना से एकदम मुक्त है। उनके पात्र प्रकृति, आनंद, हर्ष-विषाद, सहज जीवन-रसिकता एवं निगूढ़ अनुभव का परिचय देते हैं। हमारे बंधु अद्वैत दीर्घजीवी तो नहीं हुए लेकिन शायद उनकी 'तितास-कथा' दीर्घजीवी बन जाए।

(यह भूमिका 'तितास एकटि नदीर नाम' के सन् 1956 में प्रकाशित प्रथम संस्करण में उनके मित्रों द्वारा लिखी गई।)

खण्ड-एक

तितास : एक नदी का नाम

तितास एक ऐसी नदी; जिसके दोनों किनारों के बीच पानी ही पानी था। उसके वक्षस्थल पर जीवन्तता से भरपूर लहरें अठखेलियाँ किया करती थीं।

वह स्वप्न की गति से बहती जाती, भोर की हवा से उसकी तंद्रा टूटती; दोपहर का सूरज उसे उत्ताप देता और रात को चाँद-सितारे उसे लोरी गाकर सुलाने की कोशिश करते; लेकिन वे ऐसा कर नहीं पाते थे।

इसकी प्रकृति न तो मेघना और पद्मा-सी सर्वग्रासी थी और न ही रमू मोड़ल¹ की झोंपड़ी एवं यदु पंडित की पाठशाला के नजदीक से गुजरती कृशकाय ग्राम्य-नदी जैसी विपन्न। तितास इन दोनों के बीच की नदी थी। गाँव के किसी अल्हड़ बालक के लिए भले ही इसे तैरकर पार करना मुश्किल हो, लेकिन किसी केवट को डिंगी (छोटी नाव) में अपनी बालिका-वधू को बैठाकर उस पार ले जाने में रंच मात्र भी डर नहीं लगता था।

तितास शाही मिजाज में बहती थी। न तो उसमें साँप-सी वक्रता थी और न ही किसी कंजूस-सी कुटिलता। कृष्ण-पक्ष का भाटा उसके अन्तराल से थोड़ा-सा जल भले-ही सोख ले, पर उसे पूरी तरह कंगाल नहीं कर पाता था। शुक्ल-पक्ष में उमड़ा ज्वार पुनः उसे उज्जीवित कर देता, पर उन्मत्त नहीं बनाता था।

न जाने ऐसी कितनी नदियों के किनारे कभी नील के व्यापारियों ने अपने किले और कोठियाँ बनाए होंगे, जिनके खण्डहर आज भी खोजें तो मिल जाया करते हैं। ऐसी कितनी ही नदियों के किनारे मुगल पठानों ने अपने खेमे गाड़े होंगे, उनके छोटे-छोटे युद्धपोत खून-खराबे के लिए मतवाले हो उठे होंगे। इन्हीं नदियों के किनारे न जाने कितनी ही लड़ाइयाँ लड़ी गई होंगी। आदमी और हाथी-घोड़ों के खून से इनका जल

1. मुखिया

लाल हो गया होगा। आज शायद वे नदियाँ सूख चुकी हों, लेकिन किताबों के पन्नों में वे अपना परिचय जरूर छोड़ गई हैं। किन्तु तितास के ललाट पर ऐसा कोई इतिहास अंकित नहीं है। वह तो केवल एक नदी है, बस नदी।

उसके किनारे किसी बड़े नगर की बसावट नहीं हुई, न तो कभी सौदागरों ने अपनी नावों के पाल खोलकर अपना व्यापार बढ़ाने के लक्ष्य से इस पर यात्राएँ कीं। अब तो भूगोल में भी इसका उल्लेख नहीं मिलता।

झरनों से जल खींच, पहाड़ी फूलों से बतियाते, चट्टानों को तोड़ते, समतल पर उतरने का आनंद भी उसे कभी नसीब नहीं हुआ। असीम सागर के आलिंगन-पाश में बँध, खुद को विलीन कर देने का सुख उसकी नियति में नहीं। चंचल मेघना अपने वर्तुलाकार नृत्य के क्रम में न जाने कब असावधान हुई और उसके पाँव इधर को मुड़ गए। बायाँ किनारा मुचककर थोड़ा-सा टूट गया। जल और उसकी लहरों ने उसके प्रवाह को जन्म दिया और धारा ने नर्म मिट्टी को खोजते, काटते हुए कँकरीली राहों को समतल किया और अपनी राह खोज निकाली। एक चक्कर में अपने किनारे बसे सैकड़ों गाँवों को दो भागों में बाँटते हुए यह कहीं बीच ही में विलुप्त हो जाती है। धारा और लहरें फिर एक नए प्रवाह का सृजन करते हैं। उसी चक्कर में दोनों किनारों के गाँवों, जंगलों और खेत-खलिहानों को छूते हुए मेघना की यह गौरवगाथा फिर मेघना की गोद में ही चिर-विश्राम ले लेती है। बस इतना-सा ही है तितास का इतिहास। लेकिन यह क्या आज की बात है। आज शायद ही किसी को याद हो कि इसकी उत्पत्ति कैसे हुई? लोग बस इतना भर जानते हैं कि यह एक नदी है। लम्बी दूरी तय करते हुए इसके दो स्रोत मेघना में मिल गए हैं। ग्राम-वधू के कंगन का मुख जैसे बीच से खुला होता है, तितास के भी दोनों मुख इसी तरह खुले हुए हैं और उसका आकार कंगन की तरह ही वलयाकृत है।

ऐसी भी अनेक नदियाँ हैं जो घनघोर वर्षा में उफ़नती हैं और अपने तटबंध तोड़ निश्चिन्ह हो जाती हैं। किनारों का दूर-दूर तक कहीं दर्शन भी नहीं होता। जल-थल एकाकार हो जाता है। तब उसे देखकर कोई कह भी नहीं सकता कि यहाँ कोई नदी थी भी। फिर जल उतर जाता है तो लोग धारा पर बाँस के साँको (एक या दो बाँस का सेतु) बना लेते हैं। कच्चे-बच्चे, बूढ़े-बुजुर्ग तक एक बाँस हाथ में लिए जलराशि का अंदाजा लगाते हुए साँको पर से पैर दबा-दबाकर चलते हुए उस पार पहुँच जाते हैं। यहाँ तक कि अपने बच्चों को गोद में उठाएँ औरतें भी इसी साँको से मजे में नदी पार कर लेती हैं। जब नौकाएँ अचल हो जाती हैं तो माँझी अपनी कमर में रस्सी बाँध उन्हें खींचकर किनारे बाँध देते हैं। तितास के दोनों ओर खेत ही खेत हैं। दोपहर की धूप में

सिंकते हुए किसान दिनभर वहाँ पसीना बहाते हैं। इस पार के किसान आवाज देकर उस पार के किसानों को पुकारकर एक-दूसरे की खोज-खबर लेते हैं। क्षणभर के लिए अपना काम छोड़ पसीना पोंछते-पोंछते अपना दुख-सुख साझा भर कर लेते हैं। गायें, भैंसें पानी में उतरकर नहाने की कोशिश करती हैं, यह उनका अवगाहन होता है, स्नान नहीं क्योंकि डूबने का डर उन्हें भी सताता है। पशुओं के लिए भी किसी तरह 'कौआ-नहान' ही संभव हो पाता है। औरतें नदी के पानी में किसी तरह कमर भिगो लेने की चेष्टा में उकड़ूँ होकर बैठ जाती हैं और अंजुरि भर-भर जल पीठ-पेट पर छिड़क कर नहाने का पर्व पूरा करती हैं। बच्चों के डूबने का डर नहीं होता, इसलिए माँएँ निश्शंक होकर उन्हें खेलता छोड़ बर्तन माँजती हैं, कपड़े धोती हैं अथवा एक पैसे के कार्बोलिक साबुन से एड़ियाँ रगड़-रगड़कर साफ़ करती हैं। उनके घर पास ही हैं। मरद की आवाज आई नहीं कि ये दौड़कर अपने घर में घुस जाएँगी, इसलिए कोई चिन्ता नहीं।

लेकिन क्या सचमुच उन्हें चिन्ता नहीं है? अपना खून-पसीना बहा खेत पर काम करके घर लौटे 'मरद' को गर्म-गर्म भात खिला देने की चिन्ता उन्हें नहीं तो और किसे होगी! दोपहर को ये औरतें घाट पर ज्यादा समय नहीं बिताती, पर सुबह-शाम उन्हें इसकी कोई चिन्ता नहीं होती। तब उनके 'मरद' भी कुछ नहीं कहते क्योंकि वे जानते हैं कि इस वक्त नदी से होकर कोई सौदागर अपनी पाल उड़ाती नौकाएँ लेकर नहीं गुजरने वाला!

लेकिन जाड़ों में दिक्कत काफ़ी बढ़ जाती है। नदी का पानी घट जाता है। नदी में झमझमाकर डुबकी लगाना सपना बन जाता है। पूरी देह की बात तो दूर, खुद को कमर तक भिगोना भी मुश्किल हो जाता है। कनकनाती सर्दी के बर्फ़ीले पानी में डुबकी लगाकर निकलना जितना सहज होता है, चुल्लू भर-भरकर उस पानी से देह भिगोना बहुत त्रासद लगता है। ठण्डे जल के छींटे शरीर पर तीखी छुरी के प्रहार जैसे लगते हैं। चैत खत्म होते-होते सूखे के प्रकोप से नदी 'खाँ खाँ' करने लगती है। फागुन आने तक जो थोड़ा बहुत जल बचता है वह भी सूखते-सूखते बिल्कुल खत्म हो जाता है। पसीने से भीगे शरीर को धोने तक का कोई उपाय नहीं रह जाता। पशु अभ्यासवश पानी पीने आ तो जाते हैं पर यहाँ आकर उनकी कातरता देखते ही बनती है। माघ चढ़ते ही सरसों के फूलों और मटर की हरीतिमा नदी के दोनों किनारों पर कसीदेकारी करने लगती है। नदी की तलहट में थोड़ा-सा जल दीखने लगता है। जिसमें मछरे अपने तिकोने जाल फेंक दो-चार चाँदापूँटी और टेंगरा मछलियाँ पा जाते हैं, लेकिन चैत्र के सूखे में इन सबका नामोनिशान नहीं रहता। यहाँ के लोगों के लिए माघ का महीना एक खुशनुमा ग्वाब की तरह आता है। उसके बाद तो चारों ओर धूँ-धूँ करता रूखापन

सिसकता है। पर यहाँ के लोग आस नहीं छोड़ते। उन्हें मालूम है कि इस समय ऐसा ही हुआ करता है।

तितास से तेरह मील की दूरी पर ऐसी ही एक और नदी थी। नाम था- 'विजय'। तितास के किनारे बसे मछेरों के कई सम्बन्धी विजय के किनारे बसे मुहल्लों में रहते थे। कभी घूमने-फिरने, तो कभी विवाह योग्य बालिका की खोज में उन मोहल्लों में इनका आना-जाना बना रहता था। वे प्रायः देखते कि चैत्र के सूखे में नदी कितनी करुण हो जाया करती। एक तरफ़ पानी सूखना शुरू करता और दूसरी ओर मछेरों की साँसें रुकने लगतीं। आशंका सूँघकर वे हाँफ़ने लगते। मछेरे हों या माँझी, दोनों को मौत सामने दिखती। महाकाल की चपेट में आकर मनुष्यों की कंकाल में बदलती छाया उन्हें हताशा से भर देती। बारिश के समय जो लोग चाँदपुर की बड़ी नाव लेकर प्रवास पर निकले थे, वे अपनी नाव ठेके पर उठाकर रेल से घर लौट आते थे। उन्हें कोई चिन्ता नहीं थी। प्रवास के दौरान कमाएँ पैसों से वे अकाल के दुर्दिन काट लेते, लेकिन घनघोर बारिश में भी जो घर का मोह छोड़कर बाहर नहीं जा पाते, उन पर विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ता। नदी बिल्कुल खाली हो जाती। कोई जाल फेंके भी तो कहाँ? अपने तिकोने जाल एक कन्धे पर और दूसरे कन्धे पर खाने की पोटली बाँध वे इस मुहल्ले से उस मुहल्ले चक्कर लगाते रहते कि कहीं कोई सड़ा-गला लावारिस पोखरा मिल जाए। चारों ओर जंगल और जंगली पत्तों से बनी झोंपड़ियाँ थीं। पतझड़ में पत्तों का पहाड़ लग जाता। जहाँ कहीं थोड़ा पानी जमता, वहीं पत्तों के सड़ने से दुर्गन्ध फैलने लगती। गलियों, मुहल्लों में घूमते हुए ये मछेरे उस बदबू के नरक-कुण्ड में भी छोटी मछलियों की तलाश में लगे रहते। गले तक का जल सूखकर कमर तक और फिर धीरे-धीरे कमर से घुटनों तक पहुँच जाता था। मछलियों की भी चिन्ता का अन्त नहीं है, पर उन्हें अधिक दिन इसका सामना नहीं करना पड़ता। मछेरों की गिद्ध-दृष्टि उन पर पड़ ही जाती और वे उन पर झपट पड़ते। मछलियों की चिन्ता तो यहीं खत्म हो जाती थी किन्तु उन्हें पकड़ने वालों की चिन्ता ज्यादा दूरगामी होती। जो कम से कम आगामी बारिश के शुरू होने तक चलती।

हालांकि बारिश अब बहुत दूर नहीं थी। संकट के दिन लदने ही वाले हैं, इस आशा में अनेक मालो² अपनी चिन्ता के पहाड़ को किसी तरह ठेलते चल रहे थे। कहीं से छोटी-मोटी मछली पकड़ पाव-डेढ़ पाव चावल का जुगाड़ हो जाता तो किसी प्रकार दिन कटता पर गौरांग मालो के दिन तो किसी तरह नहीं कट रहे थे। दिनभर की

2. नदी पर आश्रित रहने वाली एक तथाकथित नीची जाति

हाड़तोड़ मेहनत के बाद भी जब एक दिन उसे कुछ नहीं मिला तो वह एक बजबजाते पोखरे में उतर ही गया और अपना जाल उसमें फेंका। तीन-चार मेंढक फँसे, लेकिन वे भी कूदकर बाहर निकल गए। रह गया सूना जाल और गौरांग की शून्य में ताकती नजरें।

आँगन में एक अनार का पेड़ था, जिसके पत्ते सूखकर झड़ गए थे। कभी गौरांग सुन्दर की बीवी ने बड़े यत्न से इसे लगाया था, पर वह स्वयं भरे यौवन में ही सूख गई थी। गाल धँस गए थे। देह हड्डियों का पिंजर मात्र रह गई थी। दोनों स्तन सूखकर कंकाल से चिपक गए थे। और इसी तरह एक दिन वह मर भी गई। लेकिन खुद मरकर भी उसने गौरांग को बचा लिया था। अब वह उसे याद भी नहीं करता था पर सूखते अनार के इस पेड़ ने उस का ध्यान अपनी ओर खींचा और उसे अपनी बीवी की याद हो आई। 'कितना अच्छा हुआ, वह मर गई', वह मन ही मन बुदबुदाया। अगर जिन्दा होती तो आज उसकी हालत नित्यानन्द भैया जैसी होती।

नित्यानन्द उत्तर की तरफ़ वाले एक घर में रहते थे। उनके परिवार में बीवी और दो बच्चे थे। एक बेटा और एक बेटा। नित्यानन्द के परिवार को देखकर गौरांग को सिहरन हो आई। वह तो अपना पेट भरने में ही अक्षम था, पर उसके दादा (बड़ा भाई) चार-चार पेट की चिन्ता के साथ चैन से तम्बाकू कैसे फूँकते रहते थे। भला इस तरह कैसे वे दीन-दुनिया से मुक्त हो गए थे।

सचमुच नित्यानन्द दीन-दुनिया से मुक्त हो गए थे। उन्होंने खूब सोच लिया था। कहीं कोई रास्ता नहीं था। पत्नी बैठी-बैठी ऊँघती रहती। दोनों बच्चे न जाने किस भरोसे अपने मजबूर पिता का मुँह जोहते रहते; और निरुपाय नित्यानन्द हुक्का गुड़गुड़ाते रहते।

पश्चिम के टीले पर गौरांग सुन्दर का घर था। उसने जाल को कन्धे से उतारकर अनार के पेड़ पर टाँग दिया था और खाली पोटली आँगन में फेंक दी थी। दक्षिण और पूर्व के टीले खाली थे। उन पर गौरांग के दो चाचा रहा करते थे। एक चाचा की मौत हो गई। उसका घर बेचकर उसका श्राद्ध करना पड़ा था। दूसरा चाचा अपना घर छोड़ किसी और गाँव में जा बसा था।

गौरांग बिना वजह चीख पड़ा। खाली हुक्का गुड़गुड़ाने से पेट भरेगा।

'क्या खाऊँ, तू ही बता।'

'अरे, तेरा तो पेट ही नहीं, दिमाग भी सूख गया है।' गौरांग ने कहा।

'चल, बुधई के घर चलें!'

नयनपुर में रहने वाला बुधई, मालो लोगों में सबसे धनवान था। उसके मकान

में चार-पाँच टिनही छत वाले कमरे बने थे। दो बेटे काम करते थे। बुधई हाथी की तरह मोटा और बेहद काला था। उसमें ताकत भी हाथी जैसी थी। उसका कार-बार दूसरी किस्म का था। बड़े-बड़े पोगखरे बँटाई पर लेकर तीनों बाप-बेटे मछलियाँ पालते। पूरा परिवार इसी काम में लगा रहता। उनके लिए तो मछलियाँ मानो घर ही में रहा करती थीं। वे उन्हें मन माफिक पकड़ते और दूर-दूर जाकर बेच आते। इस काम में बुधई मजदूरों की भी मदद लिया करता। जब नदी में पानी नहीं रहता और मालो लोगों के आगे अंधकार का सागर उमड़ता नज़र आता, तब वे सब के सब बुधई की शरण में जा पहुँचते।

लेकिन तितास! उसमें पानी की क्या कमी! और कितना अपार वेग! पाटों पर तैरती कितनी ही नावें! हर दृष्टि से तितास कितनी उदार थी।

और विजय नदी! उसके किनारे बसे मालो परिवार; वे बेचारे कितने दुःखी थे! नदी सूखी नहीं कि उनकी जिन्दगी ठहर गई। बस आकाश से उन्हें सुखा डालने वाली प्रखर धूप झरती रहती।

तितास के किनारे बसे मालो जब भी वहाँ घूमने जाते, वे चैत के सूखे की मार झेलती नदी का करुण रूप देखा करते। 'हू हू' करते सूखे मैदानों में ठोकर खाती मचलती भूख को चक्कर काटते देखा करते और अपने घर लौटते हुए बार-बार यही सोचते; कभी उनकी तितास सूख गई तो!!! नहीं, तितास के सूखने के पहले उनके हृदय ही सूख जाँगे। यही सोचते-सोचते हठात अपने साथ चल रहे साथी को झकझोर कर कोई बोल पड़ता, 'विजय के किनारे रहने वाले मालो बड़े अभागे हैं रे भाई! बड़े ही अभागे हैं!'

जिन्होंने विजय नदी की दशा कभी देखी ही नहीं। साल दर साल केवल तितास के किनारे ही गृहस्थी जोड़े बैठे रहे, उन्हें ऐसी बात सोचने की नौबत ही नहीं आई। उन्हें लगता था तिकोना ठेला-जाल³ भी कोई जाल है भला, इसे घुटने भर जल में ठेलना पड़ता है, जिसमें चिंगड़ी मछली के बच्चे फँसते हैं। ये कुल-मिलाकर तीन हाथ लम्बा होता होगा, लेकिन विजय के पानी में तो वह भी नहीं डूब पाता। तितास के जल में बड़े-बड़े कितने ही जाल फेंके जाते हैं और कितनी ही तरह की मछलियाँ मिल जाती हैं। अगर यहाँ तितास की जगह विजय नदी होती, तब तो उनकी हालत भी ऐसी

3. ठेला-जाल बाँस और जाली से बना मछली पकड़ने का जाल, कम पानी होने पर इसे हाथ से धक्का देकर चलाना पड़ता है। इसमें बहुत छोटी मछलियाँ फँसती हैं, इन्हें ठेला जाल से पकड़कर घने जल में छोड़ा जाता है। इनका उपयोग मछली पालन में करते हैं।

हो जाती कि साँस लेना दूभर हो जाता। उनकी तरह कंधे पर ठेला-जाल उठाए उन्हें भी एक गाँव से दूसरे गाँव तालाब-पोखरों में मछलियों की तलाश में भटकना पड़ता। दो-आने दस पैसे की मोरला मछली पकड़ने के लिए एड़ी-चोटी का पसीना एक कर देना होता। तब मछेरे-परिवारों की उन ननद-भौजाइयों, जिन्होंने बड़ी नदियों की कहानियाँ सुन रखी थीं, की आपसी बातचीत कुछ और तरह की होती। उनकी बतकही में मेघना और पद्मा शामिल होतीं। 'अरे बड़ी भयंकर हैं वे नदियाँ। जब उनके तटों का कटाव होता है तो अक्सर नावें डूब जाती हैं। बाप रे बाप! अथाह पानी है उनमें। ऊँची-ऊँची लहरें उठती हैं। हमने तो उन्हें देखा भी नहीं! उनके बारे में सुनकर ही मन काँप जाता है। कितने तो बड़े-बड़े मगरमच्छ भरे हैं इन नदियों में। इनके किनारे बसे परिवारों के मरद बस मछली पकड़ने में ही पूरा जीवन खपा देते हैं। रात-रात भर ये नावों में बैठे मछलियों का इंतजार करते रहते हैं। इतनी बड़ी नदियों से वे भला बाहर कैसे निकलते होंगे। अच्छा! उनकी औरतें ऐसी भयानक नदियों में मछली मारने के लिए उन्हें भेज भी कैसे देती होंगी। तितास कितनी शान्त नदी है। इसमें मछली पकड़ने के लिए अपने पति और बेटे को आँधी तूफ़ान की रात में भेजने पर भी डर नहीं लगता। बीवियों को लगता है, उनके पति जहाँ भी हों, उनके पास ही हैं। माँएँ सोचती हैं, तितास भी तो उनकी माँ ही है, जिसमें बड़े ही सुस्थिर रूप में वे मछलियों से भरे अपने जाल समेट रहे होंगे।'

बंगाल की छाती पर नदियों का व्यूह जटाओं की तरह फैला दीखता है। श्वेत लहरदार जटाएँ। बंगाल मानो किसी महास्थविर के चुम्बन-रस से सिक्त है। जटाएँ उसके स्फीत वक्ष से अठखेलियाँ करती हुई किसी सर्पिणी की तरह धीरे-धीरे नीचे की ओर सरकती जाती हैं। ये सभी नदियाँ ही तो हैं!

वैसे सब नदियों का रूप एक-सा नहीं है। उनका लोगों के प्रति और लोगों का उनके प्रति व्यवहार भी अलग-अलग है। यों तो सारी नदियाँ लोगों के दैनन्दिन जीवन में पग-पग पर किसी न किसी काम आती हैं। ये काम विविधवर्णी हैं। बड़ी नदियों में व्यापार के लिए सौदागर बड़ी-बड़ी नौकाओं के पाल उड़ाते हुए गुजरते दिख जाते हैं। उनके विशाल पाट पर मछेरे दिन-दिन भर नावों में डूबते-उतराते रहते हैं। उनके सारे काम पकाना-खाना, सोना नावों में ही हो जाते हैं। उसी में जाल फेंक वे मछलियाँ पकड़ते हैं। हर रूप में यहाँ नदियों का कठोर पक्ष ही प्रकट होता है। किनारों पर अनन्त बालुका राशि, ताल, नारियल और सुपारी के बगीचे दिखाई पड़ते हैं। धारा के प्रखर वेग से किनारों की मिट्टी कटती जाती है और उसका अपर्दन होता जाता है। लहरों के आघात से तटबन्ध टूटकर गिर जाते हैं। घर-गृहस्थियाँ, खेत-खलिहान उजड़

जाते हैं। कतारों में लगे ताल, नारियल और सुपारी के पेड़ एक साथ उखड़कर गिर जाते हैं। यहाँ किसी को रिहाई नहीं। सृजन और संहार का विचित्र रूप, काल का विकराल उतार-चढ़ाव, मन को चंचल कर देने वाला एक उन्मत्त आनंद, यह भी प्रकृति की एक कारीगरी है। पर इस कारीगरी का दूसरा चेहरा भी है। सौम्य, शान्त, करुण, स्निग्ध प्रसाद गुण की मधुरिमा से रंजित है यह कारीगरी। इस कारीगरी का शिल्पी महाकाल के तांडव नृत्य का रूपांकन नहीं कर सकता। उसकी तूलिका खुल-खुल पड़ती पिंगल जटाओं की भयानकता में रंग नहीं भरती। इस शिल्प का चित्रकार मेघना, पद्मा, धवलेश्वरी के किनारों से मुँह मोड़कर तितास के किनारे को दृष्टि-केन्द्र में रखता है और उसके आँगन में रम्य रचना करता है।

यह चित्रकार अत्यंत मनोरम चित्र खींचता है। किनारों से सटकर बसे छोटे-छोटे गाँव, उसके बाद खुली हुई जगह, जिन पर अगहन में पके हुए धान का मौसम, माघ में खिलखिलाते हुए सरसों के अजस्र फूल, उसके बाद फिर कोई गाँव, एक के बाद दूसरे घाट, उन घाटों पर क्रीड़ा करते जीवन के चित्र। अपने गोल-मटोल बच्चों को नहलाती धुलाती नई-नई माँएँ। कलसी लेकर डुबकी लगाती ननद-भौजाइयाँ। कुछ क्षण बाद पानी से निकलता दिखाई देता उनका सदस्नात सौन्दर्य। दूर कहीं एक के बाद दूसरी नावें जा रही हैं। उनमें कुछ पालदार हैं तो कुछ खुली हुई। किसी-किसी नाव में पालों के भीतर नई-नवेली दुल्हन बैठी मायके से ससुराल जा रही है। नाव के बीचों-बीच दुल्हन की साड़ी से पर्दा खींच दिया गया है। ससुराल से मायके लौटते समय नाव में न यह पर्दा होता है, न ही दुल्हन के चेहरे पर घूँघट। तब वह पाल से बाहर निकलकर खुली आँखों से घाटों को निरखती चलती है। एक बात और, जब तक ससुराल के घाट दिखने बन्द नहीं हो जाते, वे पर्दे के बाहर नहीं आतीं।

हास-रुदन की अनेक तरंगें दिलों में छुपाए वे मायके से ससुराल और ससुराल से मायके आती-जाती रहती हैं। जो औरतें ससुराल जा रही होती हैं, उनकी आँखों में रंग-बिरंगी तितलियों-सी चंचलता और आँसुओं की झिलमिलाहट एक-साथ नजर आती है। इन औरतों में विभिन्न जातियों की दुल्हनें हुआ करती हैं। मछेरों की दुल्हनें प्रायः नावों में ही आती जाती हैं। वे देखने में बहुत खूबसूरत नहीं होतीं, न उन्हें इज्जत-आबरू की ज्यादा परवाह होती है लेकिन पर्दानशीं दुल्हनें अपूर्व सुन्दरियाँ होती हैं। मछेरों के युवक इसका दोष नियति को देते हैं। ऐसी सुंदर पत्नियाँ शायद उनके भाग्य में ही नहीं लिखीं। वे टकटकी लगाकर देखते रहते हैं। शायद पर्दे का कोई कोना थोड़ा सरक जाय और उसकी फाँक से किसी सुन्दरी का चेहरा उन्हें दिख जाए। शायद कभी हवा के झोंके से पर्दा सरक जाय और कोई खूबसूरत चेहरा और एक जोड़ी सुन्दर

आँखें उनकी आँखों से मिल जाएँ। लेकिन दुल्हन के अभिभावक हैं कि पर्दे को सरकने ही नहीं देते। मजे की बात है कि ये दुल्हनें सबको देख लेती हैं पर उन्हें कोई नहीं देख पाता। तितास का पानी मछलियों से भरपूर है। हठात एक मालो युवक में एक रसमयी स्फूर्ति जाग उठती है और वह जाल पर नजरें टिकाए तान छोड़ देता है,

‘पहले थी ब्राह्मण की बेटि
करती थी शिवपूजा
पड़ी प्रेम में मछुआरे के
कैसे कटे पाट की डोरी
हाय रे, क्या था मेरे नसीब में।¹⁴

पाल के पीछे बैठी दुल्हन जरूर उसका गीत सुनती होगी। गाँव के बाद एक नहर पड़ती है। नाव उसी में आ जाती है। साँप की जीभ-सी वह नहर गाँव का चक्कर काटती हुई न जाने कहाँ भागी जाती है। शायद कहीं दूर कई गाँवों से होते हुए किसी एक गाँव में इस दुल्हन का घर होगा। नहर के पास ही शायद। छोटे-छोटे बच्चे दुल्हन को देखने और उसका स्वागत करने के लिए तैयार हो रहे होंगे। शायद कोई और भी अपनी तैयारी कर रहा होगा। नहर यहाँ तक आते-आते सूख गई है, इसलिए दुल्हन यहीं उतरकर कुछ दूर पैदल चलेगी। प्रकृति शिल्पी ने शान्त सब्ज, सुन्दर खेतों के रूप में जो रंगोली बना रखी है, उसके अगल-बगल पाँव रखते हुए उसे आगे बढ़ना होगा। तितास के किनारे से हटकर बसने वालों को कितना कष्ट सहना पड़ता है। जिन दुल्हनों का मायका बिल्कुल किनारे पर है, उनकी नाव तो कोलाहल पूरित घाटों पर ही आ लगती है। औरतों की दसियों जोड़ी आँखों से बहती ममता से नहाती हुई वे नाव से उतरती हैं और दौड़कर पिता के घर में घुस जाती हैं, फिर अपने छोटे भाई बहनों को कलेजे से लगा लेती हैं। अगर ससुराल तितास के किनारे से जरा हटकर है तो वे अपनी अस्त-व्यस्त साड़ी को संभालती हुई चेहरे पर लम्बा घूँघट खींच लेती हैं। अपने आगे-पीछे दो-चार औरतों से घिरी वे मंथर गति से घाट पार करती हुई अपने घर की ओर बढ़ती हैं।

जमीला के साथ भी ऐसा ही हुआ। ससुराल की चौखट पर कदम रखने के पहले उसने मस्जिद से जुड़े मकतब के एक कोने पर पाँव रखा और पीछे मुड़कर देखा। उसका शौहर माँझी से उतराई का मोलभाव करने में व्यस्त था। इकत्री-दुअत्री फ्रेंककर

4. आगे छिलाम ब्राह्मणेर माइया/कोर्ताम शिवेर पूजा/ जालुयार सोने कोइरा प्रेम/ काटि शणेर सूता/रे नछीबे एइ छीलो।

उसे खुशी से विदा किया जा सकता था। बेचारे बूढ़े माँझी ने कम मेहनत तो नहीं की थी। जमीला के साथ में कम उम्र की दो ननदें भी थीं और शाम गहराती जा रही थी। डरने की बात तो थी ही। उसका शौहर भी अजीब है। उसे कह दिया आगे बढ़ो और खुद पीछे बकझक में समय बरबाद कर रहा है। घर पहुँचने की राह बड़ी-बड़ी घास से ढँकी है। कहीं से कोई साँप आदि निकल आए तो ! और मेंढक की तरह उसके अंगूठे पर झपट्टा मार दे तो !

छमिर मियाँ बड़े हिसाबी आदमी हैं। कोई उन्हें ठग के तो दिखा दे ! जो भी करते हैं नाप-तौलकर अन्त में बेचारे माँझी को ही हार माननी पड़ी। चुपचाप अपनी नाव में जा बैठा। छमिर मियाँ के मन में खुशी की लहर ने रंग-सा घोल दिया। आज तो उसकी जिन्दगी की एक खास रात है। इस रात भला किसी माँझी को ठगना क्या ठीक है। नहीं, बिल्कुल ठीक नहीं।

दस मिनट झगड़कर माँझी को जो नहीं मिला था, एक मिनट की चुप्पी ने उसे उसका चौगुना दिला दिया था। अपनी हथेली पर चमकती चवन्नी को उसने शाम के धुँधलके में मुस्कराती आँखों से देखा और नौका की पतवार संभाल ली।

छमिर के पास आते ही जमीला को लगा जैसे इतनी देर से जो साँप उसके पैर के अँगूठे के चारों ओर किलबिल कर रहे थे, सब चुपचाप सरक गए। उसे अच्छी तरह पता था कि उसका 'मरद' कितना अच्छा है। लेकिन उसने मालोपाड़ा के घाट पर जिसे देखा था, वो क्या इससे कम अच्छी थी। उसे वह ऐसी भायी कि पहली ही नज़र में मानो उससे प्यार हो गया था। क्या उसके मन में भी जमीला के प्रति ऐसा कोई भाव जागा होगा ? कितना अनुराग था उसकी नज़र में ! और कितना जाना-पहचाना था उसका चेहरा ! जैसे वह उसे हमेशा से जानती थी। दिन जल्दी-जल्दी ढल रहा था। धीमी-धीमी हवा बह रही थी। ऐसी ही हवा से नाव के बीच बाँधा गया साड़ी का पर्दा सरक गया था और तभी जमीला की नज़र उस पर पड़ी थी। पर्दा न सरका होता तो क्या वह उसे देख पाई होती ? ऐसे ही न जाने कितने लोगों को हम नहीं देख पाते ! अगर देखने का मौका मिलता तो कितनों को हम अपना बना लेते ! हम भला देखते ही क्या हैं ! जो कोई दिखा देता है उसे ही देख लेते हैं। न पर्दा खुला होता, न पानी में घड़ा डुबोते हुए वह उसे देख पाती ! बारिश के दिनों में सड़े हुए पटसन से (जूट निकालने के लिए) अपनी नाव भरकर मेरा बाप उनके गाँव जाया करता था। इस बार जब वह मायकेजाएगी तो बाप से कहेगी कि उस गाँव में एक लड़की है, बिल्कुल मेरे जैसी। मुझे उसको अपनी सखी बनाना है। तुम क्या कहते हो ?

अच्छा, तो मैंने बात कहाँ छोड़ी थी ! आगे की कथा यह है -यह कलाकार

महाकाल के तांडव नृत्य का चित्र नहीं आँकना चाहता। न उसकी तूलिका पिंगल जटाओं के खुल-खुल जाते बंधन और उनके बिखराव में रंग भरना चाहती है। यह कलाकार मेघना, पद्मा, धवलेश्वरी के किनारों को नजरंदाज कर तितास के किनारे को चित्रपट पर उतारना चाहता है।

यह कलाकार जिन चित्रों का अंकन करता है, वे बड़े ही मनोरम हैं, जैसे, तट से सटकर बसे छोटे-छोटे गाँव, गाँवों के बाद खुली हुई जमीन, अगहनी धान के पकने का मौसम, बीच-बीच में खिलखिलाते सरसों के फूल, फिर एक गाँव, लता-गुल्मों, पेड़-पौधों की छाया से ढँके सब्ज-गाँव, घाटों के बाद घाट, हर घाट पर अठखेलियाँ करती छबियाँ, अपने चुन्नू-मुन्नूओं को तितास के पानी में डुबकियाँ लगवाती माँएँ, कलसियाँ डुबोती ननद-भौजाइयाँ और पास ही जल में तैरती एक के बाद एक नावें।

तितास एक नदी का नाम; इसके तीर पर बसे लोग इस नाम का व्युत्पत्तिगत अर्थ नहीं जानते। न उन्होंने कभी इसे जानने की कोशिश की और न ही कभी इसकी जरूरत समझी थी। नदियों के कितने अच्छे-अच्छे नाम होते हैं, जैसे- मधुमती, ब्रह्मपुत्र, पद्मा, सरस्वती, यमुना आदि। जबकि इसका नाम 'तितास है'। शब्दकोश के पन्ने उलट-उलटकर थक जाएँगे पर इसका कोई अर्थ नहीं मिलेगा। लेकिन नदी का यह नाम लोगों को कितना प्रिय है, शायद कोई अच्छा-सा नाम होता तब भी क्या वह इतना ही प्रिय होता, कह नहीं सकते।

अच्छा नाम किसे कहते हैं, कुछ अक्षरों का समूह या समष्टि या फिर कुछ और जिस लड़की का नाम काजललता है, यदि उसका नाम वैदुर्यमालिनी रख दिया जाए तो और चाहे जो भी हो, उसके खेल के साथी खुश नहीं होंगे। जिनका हर दिन तितास से साबका पड़ता है, अगर किसी राजा का विधान इसे चंपकवती या अलकनन्दा बना दे, तो भी वे अपनी घरेलू बातचीत में उसे तितास नाम से ही पुकारेंगे, राजा के दिए नाम से नहीं।

उनके लिए तो यह नाम बहुत मीठा है। इसे वे जी-जान से प्यार करते हैं, बल्कि यूँ कहें, इस नाम की माला गूँथकर उन्होंने गले में पहन रखी है।

क्या शुरू में इसका यही नाम था! और किसने रखा था यह नाम, कोई नहीं जानता, यहाँ के लोग न तो इस बारे में सोचते हैं, न ही इसका इतिहास जानने में उनकी कोई दिलचस्पी है। यह सोचना कि कभी यह नदी नहीं थी, उनकी कल्पना से भी बाहर की बात है। सुदूर अतीत के किस अध्याय में उनके पिता, पितामहों ने यहाँ घर बसाया, उन्हें नहीं मालूम। वे बस इतना ही जानते हैं कि उसका अस्तित्व यहाँ चिरकाल से है और यहाँ के वासी उसके चिरन्तन साथी हैं। तितास के बिना वे एक

पाँव नहीं चल सकते। यदि यह न होती, तो इनका कोई काम नहीं सरता। जब वे जिन्दगी की भाग-दौड़ में व्यस्त होते हैं तो यह उन्हें उझक-उझककर देखती है। दैनन्दिन झमेलों में तितास की मिठास घुली हुई है।

नदी का एक दार्शनिक रूप भी है। नदी प्रवहमान है और काल भी। न तो काल की सीमा का अन्त है, न नदी की सीमा का। काल कभी हारता नहीं, नदी की बहार भी कभी शेष नहीं होती। युग-युग से काल निर्विच्छिन्न भाव से बह रहा है। उसके पटल पर घटनाएँ घटती चलती हैं। लोग उसके कराल-गाल में समा जाते हैं। कुछ लोग बड़े ही बुरे ढंग से मरते हैं। कितने ही बिना खाए मर जाते हैं। कुछ मरने की इच्छा से मर जाते हैं और कुछ लोग अपनी ही जाति के लोगों के दुष्कर्मों के शिकार होकर मौत का वरण कर लेते हैं लेकिन शत-शत मरणों की उपेक्षा कर शत-शत लोग जन्मते भी तो हैं। तितास भी युगों से बहती चली आ रही है। उसके बहाव के साथ न जाने कितने जीवन-मरण, हर्ष-विषाद की गाथाएँ जुड़ी हैं। कितनी आँखों के आँसुओं ने इस जल के स्रोत को नमकीन बनाया है। कितने हृदयों की ज्वाला, कितनी मूक निःश्वासों इसके जल में घुली-मिली हैं। न जाने कितने समय से यह चुपचाप, सब-कुछ चुपचाप देखती आ रही है, और बही जा रही है। इसने कितने ही बच्चों को जन्म लेते देखा है और सोचा है कि इन अबोध शिशुओं ने क्या यह जान लिया था कि खुशी के नाम पर कितने विषाद, सुख के नाम पर कितनी व्यथा और मधुरता के नाम पर कितना गरल उनका इन्तजार कर रहा है।

वे हैं कौन? वे मालो के बेटे-बेटियाँ हैं। वे वह नहीं हैं, जिनके प्रासाद चहारदीवारी से घिरे हैं। सामने फूलों से भरे पोखर हैं। पास ही मीठे पानी से भरे कुएँ हैं। न उनके घर से निकलते ही चौड़ा रास्ता शुरू हो जाता है, जो सीधे शहर को जाता है। इस पथ पर घोड़ा-गाड़ियाँ चलती हैं। पास के गाँव से होकर आती पगडंडियाँ इस पथ को गौरवान्वित करती हैं।

और मालो लोगों के घरों के आंगन से जो राह निकलती है, वह सीधे तितास के जल से जुड़ जाती है। ये सारे रास्ते छोटे-छोटे हैं। रास्ते के इस पार रोते हुए बच्चे की आवाज उस पार खड़ी माँ बड़ी आसानी से सुन लेती है और इस पार की तरुणी के हृदय की धड़कन उस पार नौका के मचान पर बैठे मालो तरुण सहजता से महसूस कर लेते हैं। यह रास्ता बड़ा ही संकरा है। यदि चौड़े रास्ते की बात करें तो वह तितास के बीच से उसके हृदय को चीरता हुआ गुजरता है और इस पर केवल नावें चलती हैं।

तितास एक साधारण-सी नदी मात्र; इतिहास की किसी किताब में या राज्य-

क्रान्ति के किसी धारावाहिक विवरण में इस नदी का नाम कोई कभी नहीं खोज पाएगा क्योंकि इसके दोनों तरफ़ युयुधान⁵ दलों की तलवारें कभी नहीं टकराई और उनके हृदय से बहते खून ने इसके पानी को कलंकित नहीं किया। अच्छा ! अगर ऐसा है तो क्या कहेंगे कि सचमुच इस नदी का कोई इतिहास ही नहीं ?

तितास का ऐसा इतिहास तो सचमुच नहीं मिलता जो पोथियों के पन्नों में सुरक्षित हो और जिसे पढ़कर गर्व से छाती फूल जाए लेकिन माँ के स्नेह, भाई के प्रेम, ननद-भौजाई का दर्द बाँटने के न जाने कितने इतिहास इसके किनारे लिखे गए हैं। शायद उस इतिहास की जानकारी किसी को न हो, संभव है कोई जानता भी हो ! लेकिन यही इतिहास सच्चा है। इसके तटों पर खाँटी रक्त-माँस से बने मनुष्यों की मानवीयता और अमानवीयता के अनगिनत चित्र अंकित हैं। संभव है, वे काल के थपेड़ों से पूँछ गए हों, या तो तितास ने खुद ही उन्हें पोंछ डाला हो और सबसे बचाकर अपने हृदय की गहराई में छिपाकर रख लिया हो। शायद वह उन्हें कभी किसी को न दिखाए, न उनके बारे में बताए ही ! क्योंकि इसका कोई कारण नहीं दीखता। लेकिन फिर भी उनका अस्तित्व है। केले के पत्तों या कागजों पर लिखकर जिन अक्षरों का अभ्यास नहीं किया जा सकता, उन्हीं अक्षरों से लिखी गई हैं ये कहानियाँ ! जो अंगद के पाँव की तरह अमर हैं। इस प्रच्छन्न सत्य को हवा के स्पर्श की तरह महसूस जा सकता है। कौन कहता है तितास के किनारे का कोई इतिहास नहीं !

तितास के तीरवासी ही तो इसकी सबसे बड़ी सच्चाई हैं। जाड़े की सीली-सीली रात में वे काँथा⁶ ओढ़े चैन से सोते हैं। इसके जल पर अपनी काठ की नावें तैराते हैं। भोर होते ही उनकी माँएँ, बहनें अथवा भाभियाँ उन्हें कथरी समेट उठ बैठने के लिए चेताती हैं और वे लगातार दौड़ तितास के किनारे पहुँच जाते हैं। देखते हैं, पौ फट रही है, पर झुटपुटा अभी बाकी है। सूरज निकलने में अभी देर होती है परन्तु चेहरे सूझने लगते हैं। माघ की मसृण हवा चुपचाप सोये तितास के स्वच्छ जल को छेड़कर उसे तरंगित नहीं कर पाती। जल के ऊपरी हिस्से पर तैरती भाप अब साफ़ दिखने लगती है मानो धुएँ का कोई पुंज लहरा रहा हो ! तीरवासी उसकी परवाह किए बिना अपने हाथ-पैर पानी में डुबो देते हैं। माघ की भयंकर ठण्ड में भी यह पानी उन्हें गुनगुना ही लगता है, ठीक उसी तरह जैसे काँथा ओढ़कर सोते किसी शिशु को माँ की गोद की ऊष्मा का आभास होता हो। अगर इन्हें तितास की यह ऊष्मा न मिलती तो न जाने ये कहाँ जाते, क्या करते !

5. युद्ध के लिए प्रस्तुत

6. पुरानी साड़ियों को जोड़कर हाथ से बनाई गई कथरी/गुदड़ी।

शरद के आसमान में बादल तैरते तो दिखते हैं, पर उनमें जल नहीं होता। तब तितास का हृदय जल से भरपूर होता है। उसके किनारे के समीपवर्ती गड्डों, पोखरों, खुले मैदानों और खेतों में साँपला-सालुक के फूल, लम्बी लताओं वाली घास तथा तेजी से बढ़ते मौसमी धान के पौधों में यह जल जीवन भरता है। इनके बढ़ने तक जल शांत बना रहता है। शरद के बीतते न बीतते न जाने कौन बड़े-बड़े घूंट भरकर इसका जल सोखने लगता है। अतिरिक्त जल सूख जाने पर तितास अपने स्वाभाविक रूप में आ जाती है। इतने दिन जो मिट्टी अथाह जल के नीचे बिछी-बिछी मक्खन-सी मुलायम हो गई थी, वह अब कठोर हो चली थी। यानी हेमन्त ऋतु नजदीक ही थी।

हेमन्त की मरणासन्न अवस्था में धान कटाई शुरू हो गई थी। किनारे पर लाइन से गाँव नहीं बसे हैं। एक से दूसरे गाँव के बीच काफ़ी खेतिहर जमीन है धान कटाई खत्म कर किसान इस गाँव से उस गाँव धान के बोझ पहुँचाते दिखाई देते हैं। ये तितास के एकदम किनारे पर नहीं रहते। इनके गाँव कुछ दूर अन्दर हैं। माघ शुरू होते ही ये किनारे के अपने खेतों में सरसों और बैंगन के पौधे रोपते हैं। जहाँ बलुई मिट्टी है, वहाँ आलू की खेती करते हैं। इस मिट्टी में शकरकंद और आलू फलाने की अजस्र क्षमता है।

जोआद अली के तीन जवान बेटों ने उस पार की बलुई जमीन में आलू बो दिए। तीनों भाइयों ने एक साथ सुर में 'अली-अली-अली' कहकर खुदा को याद किया और अपनी लम्बी डोंगी पानी में उतार दी। दोपहर हो चली थी। हल में जुते चार-जोड़ी बैलों और दो-जोड़ी साँड़ों को भी उस पार ले जाना होगा। ये काम उनके दो हलवाहों के जिम्मे था। सालभर वे जोआद अली के घर मजदूरी किया करते हैं। वेतन के अलावा उन्हें रोज का खाना भी दिया जाता सूरज निकलने से उसके डूबने तक उनके काम का अबाध सिलसिला चलता रहता रात को नाम मात्र के लिए वे दौड़कर अपने घर जाते और परिवार के सानिध्य का थोड़ा-सा सुख ले लेते दिन की रोशनी में उनकी कभी अपने घरवालों से भेंट नहीं होती। परिवार के दूसरे सदस्य भी इस घर से उस घर तक धान कूटकर, पटसन आदि समेट कर जीने लायक कमा लेते उनके दिन इसी तरह गुजर रहे हैं जोआद अली के बेटे जब खुदाबन्दी के बाद नदी में अपनी नाव उतारते हैं तब उन्हीं के पीछे-पीछे दोनों बैलों और साँड़ों की दैहिक, मानसिक अनिच्छा के बावजूद उन्हें भी ठण्डे जल में उतार दिया जाता और सिर पर पगड़ी बाँधकर पशुओं की पूँछ पकड़कर 'अल्ला अल्ला मोमिन' रटते हुए वे शीत के जल में तैरना शुरू कर देते।

सुबह उस पार से इस पार आते समय कन्धे पर हल उठाए वे दोनों ओर

लहलहाती सरसों के खेतों की मेड़ से होकर गुजरे थे। नदी किनारे तक सरसों के पीले फूल मुस्कान बिखरा रहे थे। ऐसा लग रहा था जैसे किसी ने तितास के कंधों पर बेलबूटेदार ओढ़नी ओढ़ा दी हो। उनके साथ के चौपाए कहीं उन में मुँह न मार दें, इसलिए बड़ी सावधानी से उन्हें हाँकना पड़ रहा था इस पार से उस पार जाते समय यह परेशानी नहीं होती। एक तो अंधेरा घना हो जाता है, जिससे कुछ भी साफ़ नजर नहीं आता, ऊपर से चौपाए दिनभर की मेहनत से थककर चूर हो चुके होते हैं। दोनों मजदूरों की हालत भी पस्त होती। दिनभर राक्षसों की तरह खेतों में पसीना जो बहाया होता। अब घर पहुँचने की जल्दी है। लेकिन किसके घर? अपने मालिक जोआद अली के घर! इस समय जबकि पक्षी तक अपने घर लौट आते हैं। किन्तु उन्हें लौटना है अपने मालिक के घर पर! उन्हें घर पहुँचकर भी दम मारने की फुरसत कहाँ! गाय-बैलों को उनके ठिकानों पर पहुँचाना होगा। घास काटनी होगी। उसमें माँड़, भूसी और खली मिलानी होगी। जर्मीदार किसान के घर कामों की क्या कमी! यह वह टुकटाक (खुदरा) कामों के बाद हजारों फरमाइशें मुँह फैलाए सामने हाजिर होती हैं। घर के सामने लम्बी-चौड़ी सहन, टीले पर चार बड़े-बड़े घर, बाहर की ओर गौशाला सहित और तीन-चार कमरे, रस्सी बँटने से लेकर बेड़ा बाँधने तक का हर छोटा-बड़ा काम इतने बड़े परिवार में केवल इन्हीं दो मजदूरों के भरोसे रहता है। काम करते-करते रात गहराती जाती है। तब भी रिहाई नहीं! इसी बीच घर के भीतर से कोई पुकार लगाता, 'अरे ओ, करमाली!.. बंदाली! आकर खाना खा लो!'

खाने के बाद कन्धे पर रखे गमछे से मुँह पोंछते-पोंछते बंदे अली बोला, 'भाई करमाली! खुद तो मैंने मांगुर मछली का शोरबा उड़ाया। पता नहीं, मेरे घरवालों को आज दो कौर साग-भात भी नसीब हुआ होगा कि नहीं?' उत्तर में करमाली कहता है, 'भाई, तुम गलत तो नहीं कह रहे! तुम्हारा-हमारा तो घर ही नहीं है। फिर उसके लोग कैसे? खुदा के फ़ज़ल से किसी तरह रात को सोने भर के लिए वहाँ जाते हैं। अभी सुबह हुई नहीं कि मालिक के घर की ओर दौड़ लगाते हैं, आँखों में अभी नींद भरी ही होती है, जिसे नौकरी पर पहुँचकर तोड़ना पड़ता है। घर से इतना ही है हमारा नाता! वे क्या खाते हैं, क्या पहनते हैं, हमें यह खबर कहाँ! जब हम कोई पारिवारिक जिम्मेदारी ही नहीं निभा पाते तो कैसा घर, कैसे लोग?'

कुछ देर बंदे अली सोच में डूबा रहा। फिर बोला, 'बड़ी तकलीफ़ होती है करमाली। जब मालिक के घर पत्तल पर कई तरह की सामग्री खाने के लिए परोस दी जाती है, तब घरवालों की याद कर मन भर आता है। भात का निवाला गले के नीचे नहीं उतरता। खाया नहीं जाता मुझसे!'

करमाली ने लम्बी साँस ली और बोला, 'भाई, मुझे तो अब कुछ याद नहीं आता। पहले बीच-बीच में घरवालों की बड़ी याद आती थी। अब नहीं आती। अब तो लगता है यही अच्छा है।'

बंदे अली की आवाज में अब भी हताशा थी। बोला, दिनभर की हाड़तोड़ मेहनत देह से सब कुछ निचोड़ लेती है। जाकर देखता हूँ वह फटी चटाई पर सोई है। चुपचाप उसके पास जाकर मैं भी लेट जाता हूँ। उसे जगाता नहीं। एक दिन सोते हुए उसका एक हाथ मेरी छाती पर आ पड़ा। मैंने उसे थाम लिया और महसूस किया कि दूसरों के घर धान कूटते-कूटते उसका हाथ कितना सख्त हो गया है, उसमें घट्टे पड़ गए थे।

करमाली की बीवी धान नहीं कूटती। वह घर-घर घूमकर काथा सिलती है। ठण्ड पड़ने लगी थी। उसे बुलावे पर बुलावे आ रहे थे। आजकल उसे दम मारने की फुरसत नहीं। दाहिने हाथ की सुई की नोक से लगातार बाएँ हाथ की उँगलियों पर पड़े चुभन के निशान साफ़ दिखाई देते हैं। रात को घर लौटकर करमाली प्रायः अपने बिछौने को खाली पाता। उसकी पत्नी बेचारी देर रात घर लौटती थी। एक म्लान मुस्कान के साथ करमाली कहता है, 'भाई बंदाली, तुम तो घर लौटकर बीवी को सोता हुआ पाते हो। मैं तो फटी गुदड़ी पर लेटे-लेटे दरवाजे की ओर नजरें टिकाए रहता हूँ। वह तो दूसरों के घरों में काथा सिल रही होती है। लेकिन उसे क्या मालूम उसकी सुइयों मेरे दिल को छेद रही होती हैं। उसके आते-आते आधी रात बीत चुकी होती है। अंधी-अंधेरी रात में टूटी छाजन की दरारों से चाँद की फीकी रोशनी बिछौने पर उतर आती है। लगता है, मुझे देखकर खिल-खिल-खिल हँस रही है।'

करमाली की बात खत्म हो चुकी थी, लेकिन लग रहा था अभी उसे और भी कुछ कहना था। बंदे अली ने एक बार फिर गहरी साँस ली और बोला, 'करमाली भाई, तुम ही अच्छे हो। काम-काज में डूबे रहते हो, खाते-पीते हो, उसकी याद भी नहीं आती। आती भी है तो बस सोते समय। लेकिन मेरा दिल तो हर पल सुलगता रहता है। उठते-बैठते हरदम सोचता हूँ, काश उसके लिए दो बूँद दूध जुटा पाता ! न सुख दिया उसको, न शांति ! हम कितने अभागे हैं रे करमाली !'

करमाली कुछ दार्शनिक अंदाज में बोला, 'भाई मेरे, मैं बात-बात पर आह नहीं भरता। हम दोनों एक बड़े आदमी के यहाँ काम करते हैं। अच्छा-भला खाना जुट जाता है। बीवियाँ साधारण लोगों के यहाँ काम करती हैं। अच्छा नहीं खा पातीं। मेरे पास जगह-जमीन, जायदाद तो है नहीं। दूसरों की जमीन पर काम करके गुजर करता हूँ। अगर जमीन होती तो बीवी अपने ही घर के काम में लगी रहती और हम पर हुकम चलाती।'

बंदे अली के मन पर ऐसी चिंताएँ दस्तक नहीं देतीं। वह सोचता है, करमाली का

प्रेमी मन बड़ा निष्ठाहीन है। उसके अनुसार स्त्री के प्रति प्रेम जैसी वस्तु निस्सार है। इसकी कोई कीमत नहीं। भूमिहीन किसान को प्रेम से क्या लेना-देना ! जीवन में यदि बसन्त आए तो प्रेम की कीमत भी पता चले। उनके जीवन में बसन्त आता ही कहाँ है ?

पर बसन्त आता तो है। इस समय खेत-खलिहानों में रंग नहीं दिखते। तितास के तीर से सटकर बसे अधिकतर लोग मछरे हैं। तितास से मछलियाँ पकड़ना, उन्हें बेचना और खाना इनका काम है। इनमें से प्रायः हर परिवार के पास नाव है, जो घाट से बंधी रहती है। बसन्त अपने साथ इनके लिए रंगों की बौछार लेकर आता है और ये उसके स्पर्श से झूम उठते हैं।

बसन्त एक ऐसी ऋतु है, जो शायद सबके मन में प्रेम पनपाती है। रंगों का नशा जगाती है। मछरे अबीर-गुलाल मलते, उड़ाते हैं, लेकिन इतने भर से उन्हें तृप्ति नहीं होती। जिन्हें वे अपना समझते हैं, उन्हें भी रंगों से सराबोर करना चाहते हैं। वे आपस में एक-दूसरे को गुलाल लगाते हैं और खुशी के रंग बिखराते हैं। उन्हें फूलों में, पत्तों में, आकाश में, हर कहीं रंग ही रंग दिखते हैं। वे विभिन्न तरीकों से अपनी नावें सजाते हैं। बहू-बेटियाँ छोटे बटुओं में अबीर, धान और दूब रखती हैं। नदी के जल में अपने पाँव डुबाकर वे बटुए आगे बढ़ा देती हैं। नौका में बैठा पुरुष उस थैली से अबीर निकाल नाव के बीचों-बीच छिड़कता है और बड़ी निष्ठा से उसे पतवारों पर भी मल देता है। इसके बाद जहाँ उसने अबीर लगाया है, वहीं बड़े भक्ति-भाव से धान और दूब रख देता है। उसकी बीवी भी इसमें उसका साथ देती है। इस वक्त अबीर का राग-रंग तितास के अंतस्तल को रंगों के खेल से उन्मत्त कर देता है। इस उपक्रम में ही शाम हो जाती है। आकाश रूपी जंगल तब भी रंगों से भरा दीखता है। तितास के अंतस्तल रूपी आड़ने में आकाश अपना अबीर-मंडित चेहरा देखता है।

चैत के सूखे में बैसाख की बावली हवा बहती है। यही हवा बारिश को बुलावा भेजती है। आकाश में काले-काले बादल उमड़ पड़ते हैं और धाराधार जल बरसने लगता है। धरती पर जल ही जल हो जाता है और वह तितास की धारा से आ मिलता है। मैदानों की मिट्टी से मिलकर उसका रंग गेरुआ दिखने लगता है। तितास के जल को भी यह एकाध दिन के भीतर ही गैरिक रूप दे देता है। काँदा-कीचड़ मिले इस शीतल जल को देखकर मालो लोगों के मन-मयूर नाचने लगते हैं। उनके छोटे-छोटे बच्चों का आनन्द भी देखते ही बनता है। मछलियाँ मानो अंधी होकर जालों में खुद आ-आकर फँसने लगती हैं। बच्चे माँ का अनुशासन तोड़ कीचड़ से लथपथ नाचते-गाते घूमते हैं। किसी भी शासन को न मानने में कितना सुख मिलता है। सूखे के बाद ठण्डे पानी में नहाना कितना आराम देता है।

प्रवास खण्ड

तितास के किनारे मालो लोग बसे थे। घाटों पर उनकी नावें बंधी थी और जमीन पर जाल फैले थे। इनके आँगन के कोनों में कहीं गाव⁷ की मटकी, कहीं चरखे, कहीं ढेकियाँ,⁸ कहीं तकलियाँ⁹ और कहीं जाल बुनने के दूसरे सरो-सामान रखे दिखाई पड़ते। इन्हीं सबसे मिलकर बनी थी मालो लोगों की दुनिया।

जहाँ नदी धनुष की तरह मुड़ती थी, गाँव वहीं से शुरू होता था। इतना विशाल गाँव कि दिनभर का कोलाहल रात की नीरवता में भी गुंजायमान रहता था। मालो इसी गाँव के दक्षिण टोले में बसे थे।

माघ महीने की अंतिम तारीख को मालो टोले में एक उत्सव की धूमधाम रहती है। इसे 'माघ मण्डल का व्रत' कहते हैं। यह केवल कुआँरी कन्याओं के लिए होता है। इस टोले की कुआँरियों को पुरुष की छत्र-छाया बिना नहीं रहने दिया जाता। मन में किसी भाव-तरंग के उठने से पहले ही यानी जब वे खेल-कूद की रंगीन दुनिया में मगन होती हैं, तभी किसी दिन ढोल-शहनाई बजाकर उन्हें विवाह के बंधन में बाँध दिया जाता है। वे जानती हैं कि विवाह एक बंधन है, इसके बावजूद वे सदल-बल प्रेमपूर्वक माघ-मंडल की पूजा करती हैं।

माघ के पूरे तीस दिन तितास के घाट पर 'भोर-नहान' के कर्मकाण्ड से निवृत्त होकर घर लौटते समय वे अपने साथ मदार के फूल तथा हरी दूब ले आती हैं, जिसे वे एक गुच्छे का रूप देकर उससे जल छिड़ककर सीढ़ी की पूजा करती हैं। 'मंतर' पाठ

-
7. बबूल जातीय एक पेड़ का फल, जिसके गोंद को मालो अपने जाल में मजबूती के लिए लगाते हैं तथा उस गोंद का उपयोग नाव के तले में भी किया जाता है।
 8. धान कूटने का उपकरण
 9. सूत कातने का उपकरण

करती हैं- 'लो हे सुरुज ठाकुर ! जल लो ! नाप-तौलकर दिया गया सात अँजुरी जल'। आज व्रत का आखिरी दिन है। इस दिन 'युवा कोला गाछ'¹⁰ का एक हाथ लम्बा टुकड़ा काटकर उसे बाँस की पतली टहनी के सहारे खड़ा किया जाता है। इसी के आधार पर रंगीन कागज से चौयारी¹¹ बनाई जाती है। व्रत के समापन वाले दिन व्रती कन्याएँ इस चौयारी को सिर पर उठाकर ढोल-काँसी बजाते, गीत गाते हुए तितास में जाकर उसे भसा देती है।¹²

दीननाथ मालो की बेटी बासन्ती के सामने एक बड़ी मुश्किल आ खड़ी हुई है। दरअसल चौयारी बनाने का काम बाप-भाई आदि ही करते हैं। लोग कितनी सुन्दर-सुन्दर चौयारियाँ बनाते हैं। फूलकाट मार्का, झालर वाली अथवा झण्डियों के निशानों से सजी हुई। लेकिन बासन्ती का कोई भाई ही नहीं है। उसके लिए माघ व्रत के इस समापन अनुष्ठान को सफल बनाने हेतु सुन्दर चौयारी कौन बनाता। बेचारी अपने बाप से कहने भी गई थी, लेकिन वह गम्भीर चेहरा बनाए बैठा रहा। फिर कुछ देर बाद हुक्के पर चिलम चढ़ाई, तम्बाकू की टिकिया ली और वही कल्की वाला हुक्का लेकर अपनी नाव की ओर चला गया। कल उसका जाल काँटे से उलझकर फट गया था। आज दोपहर भर वह उसे ही बनाने में लगा रहा।

पर बेटी की इस मार्मिक पीड़ा को देख माँ का मन विगलित हो उठा था। उसे किशोर और सुबल की याद आ गई थी। दोनों में कितना अपनापा था। बचपन में वे पूरे मुहल्ले में अपने नटखटपन के लिए सुख्यात थे। बासन्ती की माँ को उनकी शरारतें भी भाती थी। उन्हें किसी का भी डर-भय नहीं था। किसी काम के लिए बुलाओ तो माँ-बाप के मना करने के बावजूद उड़कर चले आते थे। खासकर किशोर जितना नटखट था उतना ही समझदार भी। बासन्ती की माँ ने एक बार बुलाया कि वे दोनों हाजिर हो गए और उनके दालान में बैठ कर ऐसी सुन्दर चौयारी बना डाली कि देखने वाले वाह-वाह कर उठे। 'बासन्ती की चौयारी का रूप तो देखो ! कैसी झिलमिला रही है।' झण्डियों और झालरों से सुसज्जित चौयारी की ओर गर्व से देखती हुई बासन्ती ने आँगन की लिपाई पूरी की ही थी कि माँ ने कहा, 'पूरे आँगन में आलपना'¹³ आँकूंगी। अरे बच्चो ! किशोर और सुबल सुनो तो जरा ! आँगन की मिट्टी पर घोड़े और पक्षियों

-
10. केले का छोटा पौधा
 11. ताजिये की शक्ल का एक घरनुमा नमूना।
 12. विसर्जित करना
 13. चावल, हल्दी, गेरू आदि से माँड़ा हुआ आकार विशेष

के चित्र भी उकेर दो !'

बाल-शिक्षा की किताब खोलकर उन्होंने आँगन की कच्ची जमीन पर हाथी-घोड़ा उकेरना शुरू किया। नौसिखिये कलाकारों के अकुशल हाथ जब वे चित्र माँड़ रहे थे तो बासन्ती मंत्रमुग्ध होकर उन्हें देख रही थी। उसके होठों पर खुशी इतरा रही थी। जब चित्र बन गया तो वह आनन्द से उछलने लगी। 'अरे वाह ! मेरा आँगन सबसे सुन्दर.. किसी आँगन में ऐसे हाथी-घोड़े नहीं हैं।' फिर वह आलपना के बीचों-बीच सिर पर छोटी-सी छतरी तान एक चौकी पर बैठ गई। वह अपनी छतरी को धीरे-धीरे घुमा रही थी और उसकी माँ छतरी पर खोई¹⁴ और लड्डू चढ़ा रही थी। जो लूट के माल की तरह चारों ओर बिखरे पड़े थे। बच्चे उन्हें जमकर लूट भी रहे थे। सबसे अधिक माल किशोर और सुबल के हाथ लगा।

औरतें लोकगीत गा रही थीं। 'सखी हे, बिछ गई है फूलों की सेज ! काला चाँद तो अब तक नहीं लौटा।' यह इनका पारम्परिक गीत है। सात साल पहले जब बासन्ती अपनी माँ के पेट में थी, तब भी उत्सव के दिन यही गीत गाया गया था। आज भी वही दुहराया जा रहा है। दुखाई और उसका बेटा ढोल और काँसी बजाकर ताल दे रहे हैं। हर साल इस उत्सव के दिन ये इसी तरह ढोल और काँसी बजाकर माहौल में रंग भरते हैं। आज भी वही कर रहे हैं। कहीं कुछ नहीं बदला। बदलाव के नाम पर बस दुखाई का ढोल और पुराना लग रहा है और उसके बेटे की लम्बाई बढ़ गई है। बासन्ती का सिर तेल से चुहचुहा रहा था। मोटी साड़ी में वह उम्र से काफ़ी बड़ी लग रही थी। बासन्ती, किशोर और सुबल इसी तरह बड़े होते जा रहे थे। इनमें किशोर सबसे अच्छा था। बासन्ती से उसकी जोड़ी जँचेगी। माँ यही सोच रही थी कि बेटे की पुकार से उसका सिलसिला हठात टूट गया- 'माँ, ओ माँ ! देखो तो ! सुबल और किशोर दा ने क्या कर डाला ? मैं चौयारी को पानी में भसाती, उससे पहले ही ये उसे पकड़ने दौड़े। एक कहता है मैं लूंगा, दूसरा कहता है मैं ! इन्होंने किसी और को चौयारी तक पहुँचने ही नहीं दिया। मारपीट की नौबत आ गई। मैंने इन्हें समझाया कि दोनों ने मिलकर बनाई है, आपस में बाँट लो ! मारपीट क्यों करते हो ? मेरी बात सुनकर किशोर दा ने भले आदमी की तरह अपने हाथ पीछे खींच लिए। पर सुबल दा चौयारी सिर पर उठाकर भाग लिए।'

उस दिन मालो टोले के घाट पर व्रत समापन समारोह चल रहा था। ढोल, शहनाई और ग्राम-वधुओं के गीतों ने माहौल को संगीतमय बना दिया था। दोपहर की

14. खील

धूप में तितास का जल चिक-चिक कर रहा था। मालो कन्याएँ कोरी साड़ी पहने बालों में शीशी भर तेल डाले सिर पर चित्र-विचित्र चौयारियाँ उठाए उन्हें तितास में भसाने के उपक्रम में लगी थीं, लेकिन मालो युवकों में इतना धीरज कहाँ ! लड़कियाँ मिन्नतें कर रही थीं। 'ऊपर से ही मत लपक लो। हमारे भसाने के बाद इन्हें पकड़ो !' धीरे-धीरे सभी चौयारियाँ जल में विसर्जित कर दी गईं। लड़के होड़ लगाकर दौड़े, सबको पकड़ लिया। कुछ खींच-तान में फट भी गईं। कुछ बच गईं, जिन्हें अपने सिर पर उठाए वे घर लौटे। उनकी इस डकैती से जो चौयारियाँ बच गईं, वे तितास के मंद प्रवाह और मृदु तरंगों के सहारे बहती हुई कहीं दूर निकल गईं। किनारे से वे ऐसी लग रही थीं जैसे जल में मोर पंख तैरते जा रहे हो। उनमें जो डूब गईं, उन्हें क्या आनन्द मिला ? अगर लड़के उन्हें पकड़ ही नहीं पाए तो लड़कियों द्वारा इस विसर्जन की सार्थकता ही क्या रही ? किशोर के लिए बासन्ती के मन में बड़ा दर्द था। इतनी सुन्दर चौयारी उसके हाथ नहीं लगी। लगी भी तो सुबल के ! पर उसने हाथ पीछे क्यों खींच लिए थे ? इस तरह चुपचाप भले आदमी की तरह वह पीछे क्यों हट गया था। उसका स्वभाव ही ऐसा था। शायद उसे भी मन ही मन दुःख पहुँचा हो, लेकिन क्या किया जा सकता है ? दोस्त तो बहुताँ के होते हैं, लेकिन दोस्ती का मतलब यह तो नहीं कि दोस्त जो चाहे माँग ले और आप चुपचाप उसे पकड़ा दें ! दोस्त के लिए आँखें बन्द करके अपनी पसंदीदा चीजों को छोड़ देना कितना उचित है ?

सुबल के बाप गगन मालो के पास न कभी कोई नाव थी, न जाल था। उसने तो दूसरों की नावें और जाल ढोते-ढोते पूरी जिन्दगी बिता दी। जवानी में सुबल की माँ उसे ताने देती थी। 'ऐसे गृहस्थी कैसे चलेगी ? नाव होगी, जाल होगा, साहूकारी कर गृहस्थी चलाऊँगा, मेरे बाप से ये तीन झूठे वादे कर तुमने मुझसे शादी कर ली ! सब भूल गए क्या ? लेकिन मूरख को कोई क्या समझाए ! बुढापे में दूसरों के लात-जूते खाओगे। तुम्हारे भाग्य में यही लिखा है।' गगन ऐसी बातों को एक कान से सुनता और दूसरे से निकाल देता। लेकिन जब सचमुच बुढापा दरवाजे पर आ खड़ा हुआ तब उसने स्त्री के तानों का जवाब दिया- 'मेरा सुबल है न ! मैं नहीं कर पाया तो क्या ? वह नाव, जाल, साहूकारी सब कर लेगा। अब और भिन-भिन मत कर' पर सुबल का बाप उसे असहाय ही छोड़कर चल बसा था। एक नाव भी नहीं गढ़वा पाया। सुबल ने सिर मुड़ाने के बाद किशोर की नाव का सहारा लिया और उसी के साथ उसका जाल ढोने लगा। सुबल भूल ही गया था कि अपनी नाव और अपना जाल होना उसके बाप की सबसे बड़ी लालसाएँ थी। किशोर सुबल से उम्र में तीन साल बड़ा था पर बचपन से ही वे गहरे दोस्त थे। जब वे छोटे थे तो बारिश के दिनों में एक भुतहे वटवृक्ष के नीचे

बैठ मछलियाँ फँसाने के लिए पोखर में वंसी फेंका करते थे। सिंघी मछली के लिए जाल बुनकर वे अंधेरी रात में कई-भरे पाट के खेतों में उसे गाड़ आया करते। पौ फटने से पहले जब वे जाल समेटते थे तो सिंघी और अन्य कई मछलियों के साथ कभी-कभी पनिहा साँप भी फँस जाया करते थे। लेकिन मालो-पुत्र उनसे डरते नहीं थे क्योंकि इनके लिए जीना-मरना तो जैसे रोज की बात थी। एक दिन दोनों के बाप इन्हें पाठशाला में भर्ती करा आए थे। पहला दिन तो इन्होंने चुपचाप बिता दिया लेकिन दूसरे दिन अन्य टोले के बच्चों से मारपीट की और फिर शिक्षकों से मार खाई। तीसरे दिन खुद आपस में ऐसी मारपीट की कि शिक्षक महोदय ने इन्हें जमकर पीटा। यह चोट उन्हें कई दिन याद रही। इसके बाद इन्होंने कभी पाठशाला की ओर मुड़कर भी नहीं देखा। अभिभावकों की डाँट-फटकार के बावजूद इन्होंने किताब नहीं छुई। किशोर ने एक दिन एक और करामात दिखा दी। उसने केले के खम्भ से एक छिलका उतारकर पैरों में चप्पलों की तरह बांध लिया और साथ वालों को धमकाते हुए कहने लगा-‘अबे सुबला, देख मैं बैकुण्ठ चक्रवर्ती बन गया। अब तू मेरी पूजा कर’ दरअसल स्कूल के एक शिक्षक के चाचा का नाम बैकुण्ठ चक्रवर्ती था। वे अपनी सफ़ेद चप्पलें आँगन में उतारकर धूप में बैठे हुए हुक्का गुड़गुड़ाते रहते थे और राह चलते नावों के व्यापारी उनके पाँव छूकर प्रणाम किया करते थे। किशोर ने इस दृश्य को गौर से देखा था और इसी की नकल उतार रहा था। इसके बाद एक दिन दोनों को निर्देश दे दिया गया कि ‘बहुत हुआ आवारागर्दी छोड़ो, अब चलो! रस्सियाँ बँटो और जाल बुनो!’

तितास का किनारा काफ़ी चौड़ा था। उस पर एक दौड़ का लम्बा रास्ता था, जिस पर सूत फ़ैलाया हुआ था। बाँस की चरखी पर काठी लगाकर वे एक-दो-तीन कहते हुए उसे इतनी जोर से घुमाते कि काठी टूट जाती थी और चरखी दुड़मुड़ाकर जमीन पर गिर पड़ती थी। यानी इस काम में भी उनका मन नहीं लगता था। बारिश के दिनों में जिस वट-वृक्ष के नीचे से वे जल में वंसी फेंकते थे, उसकी छाया गरमी की दोपहरी बिताने की सबसे माकूल जगह थी। जाल लेकर सुबल और किशोर उसके नीचे जा बैठते थे। पाँव के अंगूठे में जाल फँसाकर दोनों समान गति से तकली काता करते। इससे जाल में भले ही कई फालतू गाँठें पड़ जाती थीं, पर बुनने की क्रिया जरूर आगे बढ़ती थी।

इसके कुछ ही दिनों बाद नाव और जाल-विद्या की पाठशाला में उनकी हाथखड़ी¹⁵ की गई। देखते ही देखते वे टोले के उस्ताद मछरे बन गए।

15. नाव, जाल आदि लेकर मछली मारने जाना शुरू करने हेतु की गई पूजा।

मछलियों का भण्डार खत्म हो चला था। मालो परिवारों की निस्सीम जरूरतों को पूरा करते-करते तितास मानो थककर शिथिल पड़ गई थी। अलस्सुबह से दोपहर तक जाल फेंकने और समेटने का काम जारी रहता था लेकिन एक भी मछली नहीं मिल पाती थी। जल में डूबे जाल को अपने हाथ से हल्का झटका देते हुए किशोर ने कहा, 'ऐ सुबला, चल जगतपुर की ओर चलते हैं। यहाँ तो जाल फेंकने का कोई मतलब ही नहीं दिख रहा।' परन्तु जगतपुर के गहरे पानी में भी मछलियों का कोई ठिकाना नहीं मिला। किशोर ने पूरी ताकत लगाकर फ्रेंका हुआ जाल पुनः समेटा। इस प्रक्रिया में नदी का जल काँपता-सा नज़र आया। किशोर बोला, 'जान बचानी है तो चल, अब उत्तर की ओर चलते हैं।'

और एक दिन गाँव की अधिकतर नावें सजती हुई दिखाई पड़ीं। सब उत्तर की ओर प्रवास पर जाने के लिए तैयार थी। इन्हीं के साथ किशोर ने भी अपनी नाव सजा ली।

पुरानी पतवारों को नया रंग दे दिया गया था। नावों पर गाव पोत दिया गया। जाल पर भी गाव की एक कड़ी परत चढ़ाकर तीन दिन सुखा दिया गया। कुछ दूसरी जरूरी चीजें जैसे बाँस, डोरी आदि भी रख ली गईं। किशोर का बाप प्रवास पर जाने का इच्छुक था लेकिन सूना घर किसके सहारे छोड़ता। सुबह-शाम उसे घाटों पर चक्कर लगाकर कुछ खरीद-बेच से जो मिलेगा, उसी से बेचारा बूढ़ा गुजर कर लेगा। उसके बाप का सोचना था, ये दोनों बालक तो मछलियों की तलाश में न कभी परदेश गए, न ही किसी बड़ी नदी में उतरे। इसलिए इनके साथ किसी अनुभवी व्यक्ति को भेजना चाहिए। बाहर तो इन्हें कई तरह के लोगों से दो-चार होना पड़ेगा। स्वयं अपनी अल्प-बुद्धि से काम लेना होगा। अगर जल-दस्युओं ने हमला कर जाल छीनना चाहा तो उसे बचाने के थोड़े-से लोभ में ये मासूम अपनी जान दे देंगे। ऐसे नाजुक वक्त में इन्हें समझा-बुझाकर शान्त करने के लिए किसी को साथ होना चाहिए। जिस जाल को बचाने में ये जान देंगे उससे डकैतों का भी कोई लाभ नहीं होने वाला? पानी के ऊपर छह महीने काटने हैं। यों तिलक चाँद एक अनुभवी मछेरा है, पर अब बहुत बूढ़ा हो चला है। लेकिन कोई बात नहीं। साथ में ये दोनों जवान तो हैं ही। टिकिया और तम्बाकू को मिलाकर गुल बनाते हुए किशोर के बाप ने कहा 'तिलक चाँद जानकार आदमी है। उसको साथ ले लो। सुखदेवपुर गाँव का रहने वाला है। थाने का नाम उजानीनगर है। पिता हैं बाँसीराम मोड़ल'।

और एक दिन सुबह-सवेरे तीनों की नाव चल पड़ी। उन्हें विदा करने घाट पर गिनती के तीन लोग पहुँचे थे। उनमें एक थी किशोर की बूढ़ी हो चली माँ, दूसरी

बासन्ती की माँ और तीसरी थी ग्यारह साल की कन्या बासन्ती।

बुढ़िया ने कहा, 'ऐ बेटी की माँ ! जोकार¹⁶ दे !'

चूँकि उसके होंठ जोकार देने में सक्षम नहीं थे, सो बासन्ती और उसकी माँ ने ही जोकार दिया। डेढ़जनों की उलूक ध्वनि से उषाकालीन हवा थोड़ी-सी काँपी जरूर.. पर कहीं कोई कलरव मुखरित नहीं हुआ। किशोर का बाप तो घर से निकला ही नहीं। बैठे-बैठे केवल हुक्के पर एक के बाद एक चिलम चढ़ाता रहा। बेटे को विदा कर घर लौटी माँ फफककर रो पड़ी थी।

पाँच पीर बदर को याद करते हुए तिलक चाँद ने नाव को पहला धक्का दिया। सुबल ने पतवार की मूठ संभाली। उसने ऐसे जोर से डाँड़ मारा कि नाव साँप की तरह सिसकारी भरते हुए ठण्डे जल में उतर गई और अपनी चाल से लहरों को पछाड़ना शुरू कर दिया। तिलक चाँद दूसरे कोने पर जाकर डाँड़ चलाने लगा था। हालाँकि अब उसके हाथों में वह जोर नहीं रह गया था, लिहाजा पतवार केवल गिरती-उठती दिख रही थी। नाव की पाल पर एक हाथ रखे हुए किशोर बीच में खड़ा होकर एकटक देख रहा था कि किस तरह उषा के उज्ज्वल स्वच्छ आलोक में भी मालो टोले के घर-बार, पेड़-पौधे, खूंटियों में बंधी नौकाएँ अदृश्य होती जा रही थीं और अदृश्य होता जा रहा था पूरा का पूरा गाँव तथा पशुओं के चरागाह। साथ ही, अदृश्य होते जा रहे थे काली थान¹⁷ से लगे मैदान और गरीबुल्लाह के वे दोनों वटवृक्ष, जहाँ बैठकर वे जाल फ्रँका करते थे। जल की गर्माहट में शीत की प्रभाती हवा कितनी सुहानी लग रही थी। तिलक की ओर मुखातिब होते हुए किशोर ने कहा, 'जाओ तिलक, चिलम पी लो और ये डाँड़ मुझे दे दो।'

तितास जहाँ मेघना में मिलती थी, वहाँ तक जाते-जाते दोपहर हो चली थी। किशोर ने डाँड़ चलाना बन्द कर दिया और इधर-उधर देखने लगा। मेघना कितनी विशाल है। और कितना अतलस्पर्शी है उसका काला जल। इस पार की सख्त मिट्टी एक बार जल-कटाव का शिकार हो चुकी थी। पर आजकल मिट्टी का अपर्दन नहीं होता। कगार नहीं कटते। किन्तु जल-कटाव की स्मृति-स्वरूप पर्वत की तरह एक ऊँचा किनारा जल-अपर्दन का झण्डा थामे आज भी खड़ा दीखता है। लहरें भले ही

16. किसी भी शुभ काम के पहले बंगाली स्त्रियाँ जीभ से 'उलू' की ध्वनि करती हैं। इसे उलूक ध्वनि कहते हैं और यह प्रक्रिया जोकार कहलाती है।

17. गाँव की सीमा पर बना काली का चबूतरा।

छोटी थीं, लेकिन उनका आघात काफ़ी तेज लग रहा था। उस पार बड़ी दूर तलक फिर से बसावट होती दीख रही थी। दूर-दूर तक सफ़ेद रेत का रूपहला बिछौना नजर आ रहा था। पेड़-पौधों की छाया तले कभी यहाँ एक बड़ी-सी बस्ती हुआ करती थी। जो जल-कटाव के कारण आज धू-धू बालूचर में बदल चुकी है।

तिलक को भात बैठाने¹⁸ की बात कह, फ़िर किशोर ने अंजलि में जल लेकर नाव को प्रणाम किया और ड़ाँड़ थाम ली।

शाम तक वे भैरव-घाट पहुँच गए थे।

यहाँ कई मालो परिवार रहते थे। घाट पर खूँटी से कई छोटी-बड़ी नावें बंधी खड़ी थीं। किनारे पर गड़ी बाँस की खपच्चियों पर जाल फैलाए हुए थे, जमीन पर इधर-उधर छोटे-बड़े गड़ड़े दिखाई दे रहे थे, जिनमें गाव भरा था। कुछ साबुत-टूटे गमले और बेंत की टोकरियाँ भी इधर-उधर बिखरी हुई थीं। एक नज़र में ही यह बताया जा सकता था यहाँ मालो बसते हैं।

सूरज ढलने वाला था, लेकिन दिन अभी कुछ शेष था। नाव को कुछ दूर और ले जाया जा सकता था लेकिन तिलक को ऐसी कोई जगह याद नहीं आ रही थी, जहाँ रात काटी जा सके। यह देख किशोर बोला, 'क्यों रे सुबल ! रात यहीं काट लें तो.. कम से कम कुछ घर तो दिखाई पड़ रहे हैं।' सामने एक बड़ा गाँव था। रेल कम्पनी इन गाँवों से अनेक मालो युवकों को नौकरी के लिए ले गई थी। एक बड़े प्रयोजन की पूर्ति के सामने गाँव के छोटे-छोटे आयोजन-प्रयोजन इन्हें तुच्छतर लगे थे। जो भी हो, इस गाँव के मालो गरीब नहीं कहे जा सकते। वे एक बड़ी नदी में मछलियाँ पकड़ते थे। रेलबाबुओं के आस-पास रहते थे। गाड़ियों में मछलियाँ भर-भर कर दूर-दराज भेजा करते थे। इनकी तो मजे में कट रही थी।

सुबल बोला, किशोर दा ! भैरव के मालो लोगों के करिशमे सुने हैं आपने ? ये भाड़े पर कपड़े और जूते ले लेते हैं और रेल कम्पनी के बाबुओं के घर के आस-पास चक्कर लगाया करते हैं, रेल-बाबू भी मालोपाड़ा में घूमते नजर आते हैं। इन लोगों का उठना-बैठना, हुक्का-पानी चलता है। रेल-बाबू इन्हें अपने बच्चों को स्कूल भेजने के लिए उकसाते हैं। कहते हैं, 'पढ़ो-लिखो, शिक्षित बनो।'

तिलक यह सुनकर तुनक उठा। उससे बोले बिना नहीं रहा गया, 'उंह ! पढ़ो-लिखो, जिससे इन अंग्रेज बाबुओं को हमारी लड़कियों से शादी-विवाह करने में सुविधा हो।'

18. चावल पकाना

‘अरे सुबला ! तू इनको नहीं जान पाएगा। मीठा-मीठा बोलकर ये हमारी लड़कियों पर नज़रें गड़ाते हैं।’ तिलक ने आगे कहा था। किशोर ने बात को हँसी में उड़ाने की कोशिश की और समझदारी दिखाते हुए बोला, ‘नहीं तिलक चाँद, बिल्कुल नहीं ! उनकी नज़र बड़ी मछलियों पर रहती है। ऊपर से जो दिख रहा है, वैसा कुछ नहीं है। नहीं तो सब कुछ जानते-बूझते ये शहरी बाबू इन गाँवों में सम्बन्ध तलाशते फ़िरते !’

‘किशोर दा ! चलो उस लड़की को देख आएँ। उसकी बाड़ी (घर) पहचानते हो?’

‘बाड़ी तो नहीं पहचानता ! हाँ, नाम जानता हूँ- डोल गोबिन्द की बाड़ी।’

शाम के समय लड़कियाँ दल बनाकर नदी से पानी लेने आ रही थीं। जिनमें कई कुआँरियाँ दिख रही थीं। किशोर ने आँख मारते हुए कहा, ‘कहीं और जाने की क्या जरूरत है। इन्हीं में से किसी को चुन लेते हैं।’

रात भर सुख की नींद सोने के बाद आकाश में लाली छिटकने के पहले इन्होंने फ़िर से नावें खोल दी थीं। भैरव एक बड़ा बन्दरगाह था। कई जहाज यहाँ लंगर डालते थे। बहुत से व्यापारियों की नौकाएँ घाट पर लगी दिख रही थीं। कोई नाव बेकार नहीं थी। सबमें कर्म-चंचलता थी। नावों का जैसा यह अंतहीन सिलसिला था वैसा ही अंतहीन था यहाँ का कारोबार। सबका एक ही उद्देश्य था-व्यापार से अधिकाधिक मुनाफ़ा कमाना। अपनी गाँठ की ताकत को परखकर व्यापार को ज्यादा से ज्यादा बढ़ाने की लालसा सबमें मौजूद थी। जिनको जरूरत भर मिल गया था वे आगे बढ़ गए थे और जिन्हें आने में कुछ देर हो गई, वे अपनी बारी के इंतजार में थे। किशोर की नाव दूसरी तरह के लोगों यानी इंतजार करने वालों में शामिल थी। जैसे ये इस कतार में काफ़ी आगे खड़े थे। अधिकतर नावें जिस दिशा से आई थीं, काम के बाद उसी ओर वापस लौट गई थीं, लेकिन किशोर और उसके साथियों को तो और आगे जाना था। बंदरगाह के इलाके में जो कर्म-चंचलता थी, वह इस सीमा को पार करने के बाद स्पंदन-रहित हो चली थी।

ऐसा लग रहा था मानो बन्दरगाह के कलरव को धीरे-धीरे लहरों ने पी लिया था। सामने नदी का विराट पाट फैला हुआ था। इस समय अपनी विशालता में यह नदी निष्कंप, शांत प्रतीत हो रही थी। शीत ऋतु की नदी थी। उत्तरी हवा ने अपने पंख समेट लिए थे पर दक्षिणी हवा ने अभी अपने पंख पसारे ही नहीं थे अर्थात् हवा नदी की लहरों को छेड़ नहीं रही थी इसलिए उसके प्रवाह में कोई वेग नहीं था। दूर-दूर तक शांत, संतुष्ट, स्वच्छ अबाध जलराशि नज़र आ रही थी। इस अनन्त ध्यानावस्था में केवल किशोर की नाव के चप्पुओं के उठने-गिरने की आवाज निस्तब्धता को भंग कर रही

थी। अभी तक उनकी नाव किनारे से सटी हुई चल रही थी। मेघना का तट दूर-दूर तक शुष्क रेत-राशि वाला बंजर तट था। न कहीं जनबस्ती, न घाट, यहाँ तक कि पेड़-पौधे तक नहीं दिख रहे थे। दूर-दूर तक नाव बाँधने वाली खूंटियाँ भी नहीं नजर आ रही थीं। अर्थात् यहाँ विश्राम के लिए कभी भी कोई नाव नहीं रुकती थी। यह एक निर्मम और निराला किनारा था। धीरे-धीरे धूप फैलने लगी थी। ठण्ड नदी के गर्भ में समाती-सी लग रही थी। घर से दूर इस निर्जनता के बीच भी किशोर के मन में जैसे अनूठे आनन्द की लहरें उठ-गिर रही थी। नदी के इस अबाध उदार रूप को देखते-देखते उसे कई-कई गीतों के मुखड़े याद आ रहे थे। तभी दूर से एक नाव आती दिखाई पड़ी। वह इसी ओर आ रही थी। किशोर ने दिल खोलकर गाना शुरू कर दिया था-

‘उत्तर की भूमि पर हे बंधु सोने की खेती होती है

किसान हल-बैल ले खुशी से झूम उठते हैं

दक्षिणी मलय पवन में चंद्र-मुख शुष्क दिखाई पड़ रहा है

पान का यह बीड़ा किसे भेजूँ।¹⁹

नाव जब पास से गुजरी तो किशोर के गीत की यह कड़ी उसके सवारों के भी कान में पड़ी। किशोर गा रहा था-

‘नदी किनारे जा बाँसुरी बजाई

प्रेम के मधु से मन मीठा हो गया

यह किस कुजगह पाँव पड़ गया

यह तो खेया घाट²⁰ नहीं है।

नाविक को तो लंका का बाघ खा गया।²¹

दूसरी नाव मैं बैठे किसी आदमी ने टिप्पणी की- देखो तो जरा, बूढ़े के हाथ में चप्पू पकड़ाकर जवान बेटा मौज कर रहा है। ‘प्रेम-पिरीत’ के गीत गा रहा है।

इस व्यंग्य-बाण ने सीधे किशोर के दिल पर चोट की। बोला, ‘जाओ तिलक चाँद, कथरी बिछाकर सो रहो।’ तिलक ने नाव के मालिक किशोर का आदेश पूरा करने में पल भर भी नहीं गँवाया। एक बार फिर घोर निस्तब्धता छा गई। चारों ओर जल ही जल था। चप्पू पर मन की सारी पुलक ढाल किशोर ने कहा, ज़रा ऊपर चढ़

19. उत्तरेर जमिनेरे सोना बन्धू हाल चषे/लांग्ले बाजिया उठे खुया/दक्षिणा मलायार बाय/ चाँद मुख सुखाइया जाय/कार ठाई पाठाइब पान गुया

20. जहाँ से नदी पार करते हैं

21. नदिर किनार दिया गेल बांसि बजाइया/परार पिरीति मधु लागे/कुखेने बाराइलाम पा खेया घाटे नाइरे ना/खेयानि रे खाइलो लंकार बाघे

के देख तो सुबल, 'कहीं कोई गाँव नजर आ रहा है। बालू ही बालू देखकर जी भर गया है। शायद उस पार ही कुछ होगा। इधर तो कुछ भी नहीं दीखता।' लेकिन नदी का दूसरा पार तो अभी बहुत दूर है, आँखों से ओझल पर जो नज़र से ओझल है, उसे भी पा लेने के मोह ने उन्हें विपत्ति से भी टकरा जाने का हौसला दिया। किशोर को हठात एक और गीत की पंक्तियाँ याद आ गईं। जिसे सोचकर वह काँप गया-

माँझी भाई, पाँव पडूँ तुम्हारे, ले चल मुझे किनारे।²²

लेकिन गाने की अगली पंक्तियाँ, जो कि बहुत सुन्दर हैं, ने उसका साहस जुगाया- पीछे के माँझी ने पुकारा, नाव को प्रीत की छाँव के तले ले जाओ

हरि के सहारे तरी²³ को खोल दो

चाह दिखाएगी तुम्हारी नौका को राह।²⁴

किशोर ने अपने मन को आश्वस्त किया। उसकी आवाज बेसुरी हो रही थी, लेकिन वह सुबल को धीरज बँधा रहा था। 'डर रहा है क्या सुबला!, डर मत। यहाँ कोई शंख-चील नहीं है। यह विपत्ति तो किनारे के आस-पास होती है। बीच नदी में तो माँ गंगा का निवास है। हर संकट में वह हमारी रक्षा करेगी।'

तिलक की नींद बड़ी देर बाद टूटी। उसने पाल से बाहर आकर देखा, दिन खत्म होने वाला था। जिस किनारे की आस में नाव आगे बढ़ी जा रही थी, वह कब आएगा, पता नहीं। जिस किनारे को पीछे छोड़ आए, उसका भी भरोसा नहीं रहा।

जाड़ों में दिन का ढलना पता ही नहीं चल पाता। कुछ देर पहले जो हल्की सी रोशनी दिख रही थी, अब वह भी लुप्त हो चली थी। इसके बाद किनारे से दूर ये तीनों प्राणी मेघना की अनन्त जलराशि को ही समर्पित नहीं रहे बल्कि अंधकार के सागर को भी समर्पित हो गए।

सुबल उठा और पाल के भीतर जा बैठा। तिलक ने जो ढिबरी जलाई थी, उसे उसने गुस्से में आकर फूँक मार दी। वह बुझ गई। तिलक चिलम खींच रहा था। ढिबरी बुझने के बाद भी वह उससे चिपका रहा। परन्तु किशोर इतने पर भी निराश नहीं हुआ था। सुबल जिस चप्पू को छोड़ गया था, उसे उसने दूसरे हाथ में पकड़ लिया और एक साथ दोनों को चलाने लगा। एकाएक नाव न जाने किस चीज से टकराई और निश्चल

22. माँझी भाई तोर पाँय पोड़ि पार देखिया धर पाड़ि

23. नौका

24. पीछे माँझी डाक दिया कय/ नौका लगाओ प्रेम तलाय/ हरि बोल तरी खुल साधेर जोयार जाय

हो गई। तिलक के चेहरे पर आतंक छा गया और वह चीख उठा, 'अब जान गई रे सुबला ! लगता है, घड़ियालों ने नाव कन्धे पर उठा ली है।'

'हुआ क्या?'

'तेरा सिर, नाव बालू में अटक गई है। बाहर आकर देख तो !' किशोर चिल्लाया था।

'बाहर निकलकर तिलक ने इधर-उधर देखा, फिर कहा, ठीक है, यहीं रुक जाओ।'

किसी तरह काँप-काँपकर रात कटी। सुबह-सुबह यह जानकर जान में जान आई कि नदी के बीच एक द्वीप बन गया था। उसी पर लोगों ने विविध प्रकार की फसलें बो रखी थीं। पौधों में फूल दिखाई दे रहे थे। तरह-तरह के कीड़े-मकोड़े भी उड़ रहे थे। पक्षी भी कुछ पाने की आस में सुबह-सुबह यहाँ आ डटे थे। एक मेला सा लगा था।

सुबह की गुनगुनी धूप में नाव खोल उन्होंने चुपचाप एक लम्बी दूरी तय कर ली थी। इस दौरान कोई किसी से कुछ नहीं बोला। हठात एक जनबस्ती के संकेत नज़र आने लगे। घाट पर नावें बंधी दिखाई देने लगीं। बालू पर जाल फैला हुआ था। यहाँ भी एक मालो टोला था।

'पहचानो तो तिलक, ये क्या कोई गाँव है?' लेकिन तिलक के लिए भी यह जगह नई थी। वह कुछ नहीं बता पाया।

'अच्छा सुबल ! नाव यहीं रोक लेते हैं। दोपहर का खाना यहीं खाएंगे।'

तिलक बिड़बिड़ाया, 'जैसे यहाँ के लोग तुम्हें भात खिलाने के लिए ही बैठे है।'

'अरे भात खुद पकाएँगे और खाएँगे। दूसरे के भरोसे थोड़े ही निकले हैं।'

घाट पर नावें लाइन से बंधी थीं। वहीं एक खाली जगह देखकर सुबल ने भी अपनी नाव लगा दी। एक आदमी अपनी नाव में बैठा फटे जाल की मरम्मत में लगा था। कौतूहलवश उसने आगंतुक नौका की ओर नज़र उठाई। देखते ही पहचान गया कि ये मालो लोगों की नाव है। नजरों से नजरें मिलीं और वह पृष्ठ बैठा, 'किस गाँव की नाव है। कहाँ जा रही है?'

उससे बातचीत के दौरान पता चला कि इस गाँव का नाम 'नया कांदा' है। यहाँ तीस-चालीस मालो परिवार बसे हुए हैं। ये यहाँ नए-नए आए हैं। यहाँ आने से पहले ये पश्चिम पार के किसी एक पढ़े-लिखे गाँव में रहते थे। नदी के उस पार जहाँ वे अपनी नावें बाँधते थे और नदी में जाल फेंकते थे, उस जगह को गाँव के जर्मीदार ने जबर्दस्ती दखल कर दूसरी जाति के लोगों को बंटाई पर दे दिया था। इन लोगों ने इस

अन्याय के प्रतिवाद में अपना गाँव ही छोड़ दिया और यहाँ आकर बस गए। यहाँ किसी जर्मीदार का राज नहीं। सब सुख से रहते हैं। हाट-बाजार भले ही दूर हों, लेकिन घाटों पर नावें थीं और शरीर में ताकत। ये दूरी को भी निकट करने की सामर्थ्य रखते हैं। किशोर ने मंत्रमुग्ध होकर उसकी बातें सुनीं और न जाने किस भावावेग में अपने हाथ की चिलम उसकी ओर बढ़ा दी।

वैसे मेरा हुक्का भी आ रहा है, लेकिन चलो पहले तुम्हारे वाले का स्वाद लेता हूँ। इतने में एक छोटी गोल-मटोल-सी बालिका इस तरफ़ आती हुई दिखी। उसके हाथ में हुक्का था। उसकी झूमती चाल से हुक्का भी दाँ-बाँ झूल रहा था। नाव के पास आकर बोली-बाबू, मुझे ऊपर खींच।

लड़की के हाथ से हुक्का लेकर किशोर की ओर बढ़ाते हुए उस आदमी ने कहा, 'ये मेरी बेटी है। तो फिर, मैं तुम्हारा हुक्का पीता हूँ, तुम इसका सजाया हुआ हुक्का पियो।' फिर लड़की की ओर हँसती हुई आँखों से देखते हुए बोला, 'क्यों री छोरी, दामाद पसन्द है! ब्याह दूँ इससे?'

'किससे?' लड़की ने कहा।

'इस बूढ़े से।'

'ना ना, बूढ़े से नहीं।'

'मेरा वर तो यमुना के दामाद जैसा सुन्दर होगा। माँ बोली है।'

'तो इस दामाद को कहाँ ठहराऊँ?' बेटी के बाप ने सुबल की ओर हाथ की तकली बढ़ाई।

सुबल ने किशोर की ओर देखा और रहस्यमय ढंग से मुस्कराने लगा।

'मेरी बेटी को ले जाओगे! मैं तो तैयार हूँ।' उस आदमी ने कहा।

'लो, एक तो आ गई।' सुबल ने कहा।

'अगर इसे अपने देश ले जाएँ तो फिर कभी यहाँ के लोगों का मुख-दर्शन नहीं कर पाएँगी।'

बेटी के चेहरे को चिन्ता में देख बाप पिघल गया। 'नहीं भाई, मैं अपनी बेटी को कहीं दूर नहीं भेजूँगा। मैं तो घर-जंवाई रखूँगा।'

नाव से उतरकर घर जाते समय वह किशोर को लक्ष्यकर बोला, 'मालो के पुत्र, सुनो! तुम्हें आज मेरे ही घर खाना है। मेरी बेटी तुम्हें न्योता दे जा रही है।

नहीं नहीं, हम नाव में ही कुछ पका लेंगे। तुम जाकर खाना खाओ। शायद तुम्हें रात में जाल फेंकना हो।'

'नहीं भाई, यहाँ रात में जाल लगाने की जरूरत नहीं पड़ती। सुबह-शाम एक-दो

खेप में ही काफ़ी मिल जाता है। भरपूर मछलियाँ हैं यहाँ। कितनी पकड़ोगे !’

उस आदमी ने पहले अपनी लड़की को नहलाया, फिर खुद नहाया और गमछा पहनकर कपड़े धोये, निचोड़े। उन्हें कन्धे पर रखा। फिर बेटी को गोद में उठाया और गाँव की पगडण्डी पर चल पड़ा। किशोर की आँखों में एक सुखी परिवार की छवि कौंध गई थी। जिसमें एक पत्नी है, एक बेटी है। जिसके कर्ता को सारी-सारी रात नदी की गोद में नहीं गुजारनी पड़ती। उसके मन में एक उदासी का सुर बज उठा था। निर्लिप्त कण्ठ से बोला, ‘कहाँ गया रे सुबल ! क्या करना है अब ? नाव विसर्जित कर दें यहीं...’

लेकिन कुछ करने के पहले। गले में माला, माथे पर तिलक लगाए गाँव के रास्ते से एक आदमी आता दिखाई पड़ा। उसके चेहरे पर अभूतपूर्व हँसी थी। बिना किसी भूमिका के आकर उसने कहा, ‘देखो मालो के बेटो, दुहाई तुम्हारी और तुम्हारे बाप की। मेरे घाट पर नाव बाँधी है तो हमारी सेवा लिए बिना तुम्हें रिहाई नहीं मिलने वाली !’

उसकी आवाज में दृढ़ता थी और बोलने का तरीका बड़ा प्रभावी। किशोर का मृदु प्रतिवाद पाट के रेशों की तरह उड़ गया था।

जब वे खाने बैठे तो बेटी के लिए वर खोजने वाले गर्वित पिता ने कहा, मैं तो पहले ही समझ गया था। मुझे मना कर सकते हैं लेकिन साधू तो बंधन में बांध ही लेगा, इसलिए घाट पर बात न बढ़ा मैंने साधू को खबर कर दी।

भोजन खत्म होने पर साधू ने गुजारिश की, ‘आज की रात यहीं ठहर जाओ। मन में कुछ आनन्दोपभोग²⁵ की लालसा जन्मी है।’

तिलक ने हिचकिचाते हुए कहा, ‘भैया, हम तो गाना-बजाना नहीं जानते।’

‘यह भी कोई बात हुई भला ! गाना-बजाना नहीं जानते। कहाँ के हैं आप लोग ? कहाँ बिराजते हैं?’

‘हम गोकनघाट गाँव के रहने वाले हैं।’

‘अरे मैं यह नहीं पूछ रहा। मैं तो पूछ रहा हूँ कि आप वृंदावन में बिराजते हैं या कैलाश में। अर्थात् कृष्णमन्त्री हैं या शिवमन्त्री !’

जवानी में एक बार तिलक ने कोई गुरु-मन्त्र लिया था। शायद वह कृष्ण-मन्त्र रहा होगा। भले ही उसने आज तक उस दीक्षा का कभी अनुसरण नहीं किया था लेकिन गुरु द्वारा दिया तीन अक्षरों का मूल-मन्त्र वह आज तक नहीं भूला था। साधू के सवाल

25. हरि-कीर्तन

पर वह बिना हिचकिचाए बोल पड़ा, 'बाबा हम तो किसन-मन्त्री हैं।'

देखा, गुरु ने कैसे मिलवा दिया। आनन्दोपभोग वाले गीतों में तो जानने न जानने का प्रश्न ही नहीं उठता। केवल नाम-स्मरण करना है और रूप-रस पान करना है। सोलह नाम और बत्तीस अक्षरों के बीच प्रभु मेरे मन में विराजते हैं। शास्त्रों में कहा गया है, वृन्दावन में मदन-मोहन का सहज-वास है। विवर्त-विलास की कहानी ही तो नित्य वृन्दावन-कथा है। प्रभु लीला वृन्दावन में आए। सुबल आदि सखाओं और ललिता आदि सखियों के साथ आद्य-शक्ति श्रीमती राधिका सहित लीला करके गए। उस लीला-वृन्दावन में अब वे नहीं हैं। लेकिन नित्य वृन्दावन में उनका आज भी निवास है। वह नित्य वृन्दावन कहाँ है? वह हमारी ही देह में बसा हुआ है। मदन-मोहन हमारे मन में ही निवास करते हैं। आपने क्या नदिया नगर के प्रभु गौरांग अवतार की कहानी नहीं सुनी? गौरांग महाप्रभु (चैतन्य) ने कहा है, मनुष्य ही सत्य है। मनुष्य गौर-चन्द्र के घर में निवास करता है। हे सखी! वह गूढ वृन्दावन में बसता है। दुनिया में कितनी तरह के लोग हैं। कोई बैकुण्ठवासी है तो कोई श्यामशशि। जो भी हो, हे सखी! देह के भीतर ही वह रसक्रीड़ा करता है। 'गूढ वृन्दावन में भी वह लोगों के मन में बसता है।'

इन बातों का अर्थ तिलक ने कुछ समझा, कुछ नहीं समझा। वक्ता को मुग्ध भाव से सुनते हुए किशोर और सुबल ने मन ही मन सोचा, ये कितनी गूढ रहस्य की तत्त्व-कथाएँ हैं, 'जो इन्हें समझता है, वह स्वर्ग पा लेता है। हम तो पापी मनुष्य हैं। हम क्या समझेंगे।'

कीर्तन बड़ी रात तक चलता रहा। साधू खुद भी गा रहे थे। टोले के दो-चार अन्य लोग भी उनका साथ दे रहे थे। तिलक को यों एक ही गीत आता था। वह भी पीछे नहीं रहा। उसने भी तान छोड़ी-

'आंगन की मिट्टी सूख गई थी, गंगा मैली हो गई थी

शीत ने ब्रह्मा-महल को भी छू लिया था।'²⁶

साधू के अनुरोध पर किशोर एवं सुबल ने भी अपने गाँव के साधुओं की बैठकों में जो दो-तीन कीर्तन सुन रखे थे, उन्हें गाकर सुनाया। उनका कण्ठ-स्वर इतना मीठा था कि साधू की आँखें प्रेम से छलछला आईं। वे मोहित हो उठे थे। उनके गीतों से ज्यादा साधू को उनका सरल साहचर्य मुग्ध कर रहा था। मन ही मन बोले, तुम ही तो हो वृन्दावन के चिर किशोर! कृष्ण तुम्हारे गो-लोक को आनन्द से भर दे। जैसे तुमने

26. उठान माटी ठनठन पिड़ा/निलो सोते, गंगा मईल जल तिरासे ब्रह्मा मईल सीते

हमें आनन्दित किया, प्रभु तुम्हें उसी तरह आनन्दित करे।’

दूसरे दिन उन्होंने यहीं से अपनी नाव खोली। दो युवकों की भुजाओं की ताकत के कारण छप-छप छपाक शब्द करते हुए चप्पुओं के आघात से लहरें पछाड़ खाने लगी थीं। तीर पर खड़ा साधु उन्हें विदाई दे रहा था। नाव जैसे-जैसे दूर जा रही थी, नदी का जल उसकी आँखों में छलक रहा था। साधु का अपना तो कोई था नहीं वह सबके बीच रहकर भी अकेला था। उन लोगों के बीच, जो न आनन्द लेना जानते थे, न देना। आज जिन्होंने आनन्द दिया, वे उसे दैनन्दिन कार्यों के दरिया में पुनः धकेल कर कहीं दूर चल पड़े थे। अछोर मेघना की अबाध जलराशि के उदार शुभ्र वक्ष पर तैरती नाव में बैठे लोगों के लिए किनारे पर खड़े लोग धीरे-धीरे छोटे होते काले धब्बों में बदलते जा रहे थे। अंततः वे सब शून्य में विलीन होते जान पड़े। साधु के मुँह से एक दीर्घ निःश्वास निकली ‘जाने वाले बहुत कुछ दे गए, लेकिन उससे भी अधिक ले गए।’

यहाँ से नदी का किनारा धनुष की तरह मुड़ गया था। जहाँ यह मोड़ था, वहाँ जलधारा चक्रवात की तरह घूम जाती थी, जिससे उसका प्रवाह और तेज हो जाता था। यहाँ जल-कटाव बड़ी तेजी से होता है। किनारे की सख्त पोख्त मिट्टी को जलधारा आरे की तरह चीर गिराती है। किनारे के लम्बे-लम्बे तालवृक्ष इस आघात को न सह जड़ से उखड़ जाते हैं और टुकड़े-टुकड़े हो धराशायी हो जाते हैं। मृदा-अपर्दन के इस समारोह में नदी का किनारा असाधारण ऊँचाई प्राप्त कर लेता है। उसे देखकर डर लगता है। इसके पास से गुजरती नावों को हर क्षण संकट के टूट पड़ने की आशंका सताती रहती है। कहीं किनारे का कोई बड़ा टुकड़ा टूटकर नाव को ही न ग्रस ले। जबरदस्त प्रवाह। आगे बढ़ना अति दुष्कर लेकिन आगे तो बढ़ना ही है। सुबह से नाव चलाते-चलाते सुबल थक गया था। दोपहर के खाने के बाद वह सो गया। उसे तो रात को जाल फेंकने का अभ्यास था। किसी रात मछली पकड़ने नहीं भी जाना पड़ता तो भी रात को उसे नींद नहीं आती थी। पर दोपहर में चाहकर भी उसकी आँखें नहीं खुलती थी। सोना ही पड़ता था। तिलक यह काम पहले ही कर चुका था। वह तो हाथ में हुक्का लिए हुए ही सो गया था। उसकी आँखें तक खुली थीं, पर वह सो रहा था। अब नाव में बैठे-बैठे वह झपाझप डाँड़ चलाने में लगा था। अचानक उसने अथाह पानी की ओर देखा और बोल उठा, ‘इस बार इतनी मछलियाँ फँसेंगी किशोर, कि तौलते नहीं बनेगा। जल का चेहरा देख रहे हो ना!’

यहाँ आते-आते मेघना की विराटता कम हो गई थी। भाटे का भी समय था। इस लिए इस पार से उस पार के विस्तार को सहज ही देखा जा सकता था। नाव भी किनारे

के पास पहुँच रही थी। उस पार के घास-फूस के घर तक साफ़ दिखने लगे थे। शाम को जब सुबल की नींद टूटी तो वह अवाक रह गया।

‘तिलक, ये हम कहाँ पहुँच गए?’

‘ये कौन सी नदी है?’

‘वही जिससे हम आ रहे हैं।’

‘यहाँ मेघना का विस्तार इतना कम!’

‘जितना आगे बढ़ेंगे, उतना ही कम होता जाएगा।’

‘और कितनी दूरी तय करनी है। उजानीनगर की खाड़ी अभी कितनी दूर है? शुकदेवपुर के बाँसीराम मोड़ल का घर कितनी दूर होगा?’

‘जा फिर से सो जा। एकदम घाट पर नाव लगाकर बुलाऊँगा। हुक्का ले आना।’

‘जाओ मसखरी मत करो।’

दूर छायादार वृक्षों वाला एक गाँव दिख रहा था। उसे यहाँ छोड़ जैसे अकस्मात नदी धनुष की तरह फिर मुड़ गई हो और सीधे पश्चिम की ओर जाते-जाते अदृश्य हो गई हो। यहाँ से नदी का प्रवाह ठीक नहीं दिखाई पड़ रहा था। ऐसा लग रहा था जैसे एक टेढ़ी नहर हो। दोपहर की धूप में रेत चमक रही थी। इस बलुई किनारे से कुछ दूर एक ही स्थान पर दस-बारह बड़े-बड़े घास-फूस के घर थे। पेड़-पौधे कहीं नजर नहीं आ रहे थे। कहीं हरियाली नहीं। केवल बालू और उस पर बने हुए कुछ घर ऐसा लग रहा था जैसे मरु-भूमि में कोई सराय बनी हो। एक सुस्त पड़े अजगर की तरह नदी भी यहाँ शान्त लेटी थी। धीरे-धीरे तिलक की बूढ़ी आँखों ने असीम करुणा के साथ इधर-उधर देखा और आवेगपूरित कण्ठ से बोला- ‘ये देखो, सामने शुकदेवपुर आ गया। और यह है उजानीनगर की खाड़ी।’

किशोर ने कुछ नहीं कहा। यहाँ से नदी नहीं दिख रही थी। किशोर उसी को खोजने की चेष्टा कर रहा था।

बाँसीराम मोड़ल के घाट पर पहुँचते-पहुँचते शाम हो गई थी।

मोड़ल इस इलाके के प्रभावशाली आदमी थे। यहाँ से नदी के पाँच मील तक उन्हीं का शासन चलता था। मछली पकड़ने के लिए भी उनकी अनुमति की जरूरत पड़ती थी। बिना उनसे पूछे यहाँ आगे नहीं बढ़ा जा सकता था। दूसरे दिन सुबह स्वयं मोड़ल के घर से उन्हें न्योता मिला कि दोपहर में उन्हें सेवा का मौका देना होगा। सो तीनों नहा-धोकर उनके यहाँ हाजिर हो गए। मोड़ल के मकान में फूस के चार बड़े-बड़े कमरे थे, जो बिना मरम्मत के जीर्ण हो चले थे। मोड़ल इन्हीं में से एक के बरामदे में एक सन्दूक खोले चाँदी के रूप गिन रहे थे। उनका बदन पत्थर की तरह मजबूत

और किसी दानव की तरह सख्त था। आबनूसी काला रंग उम्र कोई पचास से ऊपर लेकिन माँसपिण्ड और त्वचा पर बुढ़ापे का कोई चिह्न नहीं दिख रहा था। गले के दोनों ओर उभरी मोटी हड्डियाँ अजस्र दैहिक बल का परिचय दे रही थी। किशोर ने मन ही मन कहा, तुम्हारे जैसे पच्चीस मालिकों को तो सौ की ताकत वाला मानना होगा। तुम्हारे चरणों में मेरा दण्डवत। इस बीच मोड़ल नए मछेरों की आवभगत में लग गए थे।

‘हाँ तो तुम्हारा नाम किशोर है। पिता का क्या नाम है? उनका नाम नहीं बताया तुमने!’

‘पिता का नाम रामकेशव है।’

‘हाँ हाँ, याद आ गया। कितने भाई हो तुम लोग?’

‘एक छोटा भाई था, मर गया। अब मैं अकेला हूँ।’

‘तुम्हारी कोई पुत्र-संतान?’

‘घर में पुत्र-संतान के नाम पर मैं ही हूँ।’

‘अच्छा, तो तुमने शादी नहीं की अब तक!’

किशोर चुप रहा।

‘इस बार देश लौटकर शादी करेगा। गाँव में ही सम्बन्ध पक्का हो चुका है।’ सुबल ने बात आगे बढ़ाई थी।

दोपहर के भोजन के सारे व्यंजन बड़ी मछली से बनाए गए थे। किशोर आदि तो छोटी मछलियों के मछरे थे। उनके नसीब में बड़ी मछली कहाँ थी। एक तो वह उनकी पकड़ से बाहर थी, दूसरे भूले-भटके कोई बड़ी मछली फँसी भी तो पैसे के लोभ में वे उसे खाते नहीं, बेच देते थे।

मोड़ल की खुराक जितनी थी, उतने ही मनोयोग से वह खाता भी था। खाने के बीच एक बार उसे अचानक याद आया कि उसके आस-पास अतिथि भी खाना खा रहे हैं

‘अरे जल्ला²⁷ भाइयो, प्रेम से खाओ। भोजन पर ध्यान रखो।’

किशोर से कोई जवाब देते न बन पड़ा क्योंकि षटरस व्यंजनों का यह आयोजन उसे शर्मिन्दा कर रहा था। रूई माछ का माथा²⁸ चबाते-चबाते तिलक ने ही उत्तर दिया, ‘क्या बात करते हैं मोड़ल साहब।’

27. मछुआरों को प्रेम से बुलाया जाने वाला संबोधन।

28. बंगाल में रूई मछली का सिर प्रिय व्यंजन के रूप में स्वाद लेकर खाया जाता है।

किशोर को कुछ तो बोलना ही था। वह नावों का महाजन था, लेकिन उत्तर देने के लिए जिस चातुर्यपूर्ण भाषा की जरूरत थी, वह उसे नहीं जानता था। सीधे-सादे आदमी की सीधी-सादी भाषा में उसने कहा, 'हमारे देश में इतनी बड़ी मछलियाँ नहीं पाई जाती। बड़ी मछलियों का ऐसा भव्य आयोजन हम न तो बहुत कर पाते हैं न खा पाते हैं।' इस बीच मोड़ल की गृहिणी एक कटोरी मछली और ले आई एवं किशोर के ना-ना करने के बावजूद उसने पत्तल पर मछली रख ही दी। अब तो मछली जूठी हो गई। उसने बुद्धिमत्ता से कहा। इसे खाना ही पड़ेगा।

मोड़ल की पत्नी लम्बा घूँघट किए भोजन परोस रही थी, इसलिए खाते समय उसका चेहरा नहीं दिख पाया। भोजन के बाद जब वे बरामदे में बैठे तो वह मुँह उघाड़े पान देने आई। उसका चेहरा तब दिखाई पड़ा। चौकी पर मोड़ल वीरासन में बैठा था। बचपन में किशोर ने भीम, हनुमान आदि की जो कहानियाँ सुनी थीं, वह उनमें से ही किसी वीर की तरह दिखाई पड़ रहा था। किशोर उसे दबी नजरों से देखते हुए सोच रहा था, राग-द्वेष से परे इस व्यक्ति में केवल शक्ति है। इसकी छत्रछाया में एक बार बैठ गए तो आँधी-तूफान की भी कोई परवाह नहीं। उसी समय गृहिणी पति को हुक्का थमा गई थी। कुछ देर बाद पान सजाकर जब वह पनडब्बा उन चारों के सामने रखने आई, तब उसका घूँघट सरक गया था। क्षण भर के लिए ही किशोर उसका चेहरा देख पाया। सांवली कृशकाय युवती। ऐसा लग रहा था जैसे भीमकाय महादेव के पास बालिका-वधू गौरी बैठी हों। किशोर को यह देखकर चिन्ता हो आई। मोड़ल ने किशोर को सोच में डूबे देखा तो पूछा, 'क्या बात है?'

'नहीं, कुछ नहीं।'

'यही सोच रहे हो न कि मेरे परिवार में और कौन-कौन हैं?' बस हम दोनों ही हैं। 'एक थी, जो अब जिन्दा नहीं है। रहती तो तुम्हारे साथ कितना हँसी-मजाक करती।'

'मोड़ल!'

'हाँ बोलो जल्ला!'

'तुम्हें देखकर मुझे शिव ठाकुर की कहानी याद आ रही है। तुम इतने नामी-गिरामी आदमी हो लेकिन तुम्हारा घर-द्वारा ऐसा! बड़ा अचम्भा होता है।'

मोड़ल ने अपनी बड़ी-बड़ी आँखें फैलाई और अपनी स्निग्ध नजरें किशोर के चेहरे पर जमा दी।

'मुझे जिस शिव की कहानी याद आ रही है, वह तो बूढ़ा है। दुनिया के दरबार में उसका नाम है लेकिन उसके घर में विपन्नता बिखरी पड़ी है।'

शिशु की तरह मचलते हुए मोड़ल बोला, 'तुमने मुझे शिव ठाकुर बना डाला। वह भी बूढ़ा शिव! मेरी गौरी को देखा है तो! कितनी अच्छी है। अब उसे नाचने को मत कहना! लेकिन हम तो शिवमन्त्री²⁹ हैं ही नहीं। किसनमन्त्री हैं। तुम कौन से मन्त्री हो?'

'बिन्दाबन के मन्त्री हैं' तिलक ने जवाब दिया था।

'ओ...समझा! तुम लोग भी तो किसनमन्त्री हो! किसन की अनुकम्पा से ही तो हम लोग मिले हैं। चलो, रात को आनन्दोत्सव मनाएँ। अभी कुछ देर आराम कर लो।' मोड़ल ने कहा।

मनभावन भोजन मिल जाए तो तिलक का पेट फूलकर तबले सा दिखने लगता है और पूरी बेशर्मा से सबको अपना परिचय देने लगता है। तिलक समझ गया था कि मोड़ल ने उसका पेट देखकर ही आराम करने को कहा था। वह थोड़ा हिचकिचाते हुए बोला, 'आपने ठीक कहा मोड़ल। पेट इतना भर गया है कि बिना लेटे काम नहीं चलेगा। ज्यादा देर खड़े रहना मुश्किल होगा।'

मोड़ल ने बीच में ही उसे टोकते हुए कहा, 'अब मुझे शर्मिन्दा मत करो। मैं चटाइयाँ बिछवा देता हूँ। यहीं आराम करो। रात को देर तक जागना पड़ेगा।'

'हाँ, ये ठीक रहेगा।'

'जल्ला, तुमने मुझे मोहित कर लिया है। कितने भले हो तुम लोग!'

उस दिन पूरी दोपहर उन्होंने मोड़ल के घर में ही आराम किया। शाम को सब टोला घूमने निकले। तिलक बूढ़ा हो गया था। वह ऊँची धोती बाँधता था। जो घुटनों से नीचे उतरने का नाम नहीं लेती थीं। लेकिन किशोर और सुबल की धोतियाँ पंजों तक को ढँके रहती थी। अपनी धोती का एक छोर वे गाँठ लगाकर कार्तिक³⁰ की तरह कमर में बाँध लेते थे। कन्धे पर वे अंगोछा डाले रहते। इसे सुबल की उम्र का दोष कह सकते हैं क्योंकि उसकी दिलचस्पी ज्यादातर इसमें रहती थी कि किस घर में विवाह योग्य सुपात्रियाँ हैं, जो अपनी शादी के दिन गिन रही हैं। उसकी नजर जिस लड़की पर भी पड़ती, वह उसका मुखड़ा अपने मन में बसा लेता। लड़कियों के माँ-बाप की नजरें भी उस पर पड़ती थीं। उनमें से कई ने तो सुबल को यह तक कह डाला कि चाहो तो लौटते समय बेटी को ब्याह कर अपने देश ले जा सकते हो। विवाह के नाम मात्र से सुबल के मन में रोमांच की एक लहर दौड़ जाती।

29. शिव को मानने वाले।

30. बंगाल में सौन्दर्य के देवता।

जबकि किशोर के दिमाग में कुछ और ही चल रहा था।

इस गाँव के लोग कितने हृष्ट-पुष्ट हैं। मर्द-औरत, लड़के-लड़कियाँ जिसे भी देखो, उनकी देह से ताकत का ज्वार फूटा पड़ता है। उस ज्वार के आगे टिकने की हिम्मत किसमें होगी भला ! लेकिन रंग सभी का काला ही था। तेल पुती आबनूसी मूर्ति की तरह गहरा काला। वैसे तो किशोर के गाँव के भी ज्यादातर लोग काले थे पर वहाँ गोरे-चिट्टे लोग भी दिख जाते थे। बसन्ती का रंग तो ब्राह्मण-पण्डितों की बेटियों से कम नहीं लगता था। पर इस गाँव में तो सब जैसे नीलमाट³¹ से निकले थे।

किशोर ने एक और चीज पर गौर किया। यहाँ जिस तरह घर-घर जाल दिख रहे थे, उसी तरह हल भी। हरेक घर में एक ओर जाल का साजो-सामान था तो दूसरी ओर खेती का। एक तरफ़ गाव की मटकी, जाल की पोटली, छोटी-बड़ी डोरियाँ और टोकरियाँ थीं तो दूसरी ओर हल-कुदाल, खुरपी-फरसे और मोई³²।

घरों को देखने से लगता था, सालों से इनकी देखभाल नहीं हुई। दालान के एक कोने में कई पीढ़ियों के पुराने जाल और पोटलियाँ पुराने पंचांग की तरह संभालकर रखे हुए थे तो दूसरे कोने से विभिन्न उम्र के चौपायों के चारे और गोबर की दुर्गन्ध उठ रही थी। इनके जीवन-देवता इन्हें दोनों ओर नजर रखने की हिदायत देते चलते थे और आकाश से अपने दोनों हाथ इनकी मदद के लिए बढ़ाते रहते थे। एक तरफ़ मछलियों से भरी नदी उफन रही थी तो दूसरी ओर फसलों से लहलहाते खेतों की हँसी बिखर रही थी। अगर किसी दिन कोई अदृश्य शैतान आकर इनके जालों की गाँठें कुतर दे, नावों के लौह-बन्ध काट दे और एक घूंट में नदी का सारा जल सोख ले, तब भी ये लोग इतनी जल्दी नहीं मरेंगे। खेतों में फसलें उगाएंगे। इनका एक हाथ बीजाई में लगा होगा तो दूसरा जाल आदि से नौकाएँ सजाने में। यथा समय बारिश होगी और नदी फिर से अपने यौवन को प्राप्त कर लेगी। ये भला मरेंगे कैसे। इन्हें गरीबी नहीं सता सकती। पर हम भी तो नहीं मरेंगे। भले ही हमारे गाँव के मालो लोगों के पास खेत-खलिहान न हों, लेकिन तितास तो है। उसे सुखाने की ताकत किसके पास है।

शाम ढलने पर सबने मिल-जुलकर गाने का आस³³जमाया। पहले गीत की कड़ी तिलक ने छेड़ी। सुबल गोपी-यन्त्र बजा रहा था। किशोर सिर हिलाते हुए हाथ से ताल दे रहा था। इस अड्डे में कृष्णमन्त्री भी थे और शिवमन्त्री भी। मंगलाचरण के बाद

31. नील घोलने की बड़ी मटकी/हौज

32. जोते हुए खेत को समतल करने वाली मेज अथवा पटरा।

33. गाने-बजाने की प्रतियोगिता

नजर आया कि एक कोने में कुछ लोग गाँजे की चिलमें सजा रहे थे। तिलक को मौके-बेमौके गाँजा चढाने की लत थी। यहाँ भी उसने एक कश ले ही लिया। नाक से धुआँ छोड़ते हुए उसने अपनी लाल-लाल आँखों से सुबल की ओर देखा और बोला, 'बजाते रहो।' सुबल ने गोपीयन्त्र³⁴ को अपने कुर्ते से रगड़ा और उस पर ताल ठोंकी। मोड़ल अट्टे के बीचों-बीच बैठा था। उसकी ओर देखते हुए तिलक ने गीत छोड़ा,

‘काशीनाथ जोगीराज नाम तुम्हारा निरंजन

साथी तुम्हारे भूत-प्रेत

खेलते हो उन्हीं के साथ

डमरू और सिंगा लिए तुम

नाचते-गाते हो उन्हीं के साथ³⁵

दूसरी ओर से कोई बोला, ये गीत तो बड़ा बेलाइन चल रहा है मोड़ल ! यहाँ तो ये गीत अच्छा रहता,

‘एक पैसे का तेल होता

तो जलती तीन बत्तियाँ

जलती रहती सारी रात

ब्रज की राह पर आगे बढ़ते चलते।³⁶

मोड़ल कहना चाहता था कि, जब ये इस देश के लोग ही नहीं हैं तो यहाँ के गीत भला ये कैसे गा पाएँगे।’ लेकिन उसने खुद को रोक लिया था। बहुत दिनों के बाद तिलक के भाग्य से गाँजे का धुआँ जुटा, उसे संभालना मुश्किल था। गाते-गाते वह इतना थक गया था कि मोड़ल की गोद में ढुलक गया। किशोर और सुबल का नेता चित्त हो गया था। स्वभावतः उन्हें भी अब गाना-बजाना बन्द करना पड़ा। अब वे श्रोता बन गए थे। दूसरे पक्ष की ओर से भी कई तरह के गीत गाए गए। उन्होंने राधा-कृष्ण के मिलन का गीत गाकर आसर का समापन किया। इसके बाद मोड़ल के निर्देश पर बताशों की हण्डी लाई गई। सबमें उन्हें बाँटा गया। किशोर ने तिलक को झकझोरा। उसने किसी तरह नशे से बोझिल आँखें खोलीं तो पाया कि लोग उठ-उठकर जा रहे थे।

34. तबले की तरह का एक ग्रामीण बाजा।

35. काशीनाथ जोगिया-तुमि नाम धरो निरंजन/सदाई जोगाओ भुतेर मन/भूत लईया करो खेलन/ सिंगा डंबूर कांधे लय नाचिया

36. एक पईसार तेल होइले/ तीन बाती जोलाय/जेले बाती सारा राति ब्रेजेर पथे चोले जाय

नदी किनारे की सुबह बड़ी मनमोहक होती है। सूरज अभी उगा नहीं था लेकिन आकाश पर दूर-दूर तक नीलाभ स्वच्छता बिखर गई थी। मकखन की तरह एक नीलाभ शुभ्रता, जो देखने वाले के मन के कोने-कोने को तरंगित कर सुर-ध्वनि जगा रही थी। नदी पर लाख-लाख शिशु-तरंगें हवा के झोंकों से उठ-गिर रही थी। ऐसा लग रहा था जैसे छोटे-छोटे बच्चे तालियाँ बजा रहे हो। तिलक के बूढ़े मन को भी इस मृदुल स्पर्श ने जीवन की पूर्णता का आभास कराया।

पूर्व दिशा में मोड़ल का टोला था। पेड़-पौधों से ढँकी उत्तर-दिशा की ओर बढ़ती हुई नदी बाँई ओर जाकर अदृश्य हो गई थी। लेकिन दक्षिण की ओर वह सीधी बही चली जा रही थी। जहाँ तक नजर जाती-जल ही जल दिखाई देता। दो तटों के बीच बहती इस जलराशि की विशालता अबाध थी। तिलक की नजरें वहाँ जमी थीं, जहाँ नदी का जल आकाश की नीलिमा से मिलकर एकाकार होता दिखाई दे रहा था। कहीं दूर से फागुन की दक्षिणी मृदुल हवा बहती आ रही थी। उसी ओर अपलक ताकते तिलक ने एक लम्बी साँस ली। कितनी उदार और दरियादिल है यह हवा। तिलक ने सोचा। नाव का पिछला हिस्सा खूँटी से बंधा था और आगे वाला भाग हवा के अनुकूल उत्तर की ओर उन्मुख था। नाव के बीच में खड़े होकर तिलक ने कहा, 'जाल फेंकने का समय हो गया किशोर !'

जैसे-जैसे अंधकार दूर हो रहा था, किशोर की आँखों से नींद गायब हो रही थी। तिलक की आवाज ने नींद के सूत्र को एकदम तोड़ दिया था। किशोर ने जल्दी से हुक्का सुलगाया और सुबल को आवाज दी, 'सोने में तो सुबल कुम्भकर्ण का भी बाप है।' पर हुक्के की गुड़गुड़ाहट से सुबल की भी नींद टूट गई थी। टोले की सीमा से बहुत दूर उनकी नाव दक्षिण की ओर बढ़ती गई। यहाँ किनारा ढालू था। इसके ऊँचे हिस्से से एक पैदल-रास्ता सीधा चला गया था। जिसके उस पार धान के खेत फैले हुए थे। सुबह की मृदु पवन धान के शिशु पौधों के सिरों को हिलाती हुई चली जा रही थी। इससे वातावरण में एक सरसराहट-सी व्याप्त थी। आकाश-बाताश (हवा), लहरें सबमें भोर की स्निग्धता घुली हुई थी। कुल मिलाकर पूरा प्रभाती माहौल संगीतमय बना हुआ था। यह देख किशोर की आँखें तृप्त हो गईं। मोड़ल के गाँव के लोगों ने यहाँ धान रोप रखा था। जो जल्दी ही सुनहली फ़सलों में बदलने वाला था। लोग उन्हें अपने कोठारों में सहेजकर रखेंगे। बारिश-बदली के दिनों में अगर ये नदी में न भी उतरें तो किशोर के देशवासियों की तरह इन्हें उपवास नहीं करना पड़ेगा।

'बाँस धीरे उतारो, धान के पौधों को कोई नुकसान नहीं होना चाहिए। न जाने किसका खेत है यह। बेचारे को परेशानी होगी !'

तुम्हीं को सबकी चिन्ता है। न जाने कितने चरवाहे अपनी गाय-भैंसों को लेकर इन्हीं खेतों से गुजर जाते हैं, उन्हें कोई नहीं पकड़ता। फिर हमें तो यहाँ कोई जानता भी नहीं।’

तिलक के गँवारूपन से किशोर चिढ़ गया था। लेकिन ऐसी स्निग्ध सुबह के समय उसे यह व्यक्त करना उचित नहीं जान पड़ा। उसके मन में प्रच्छन्न रूप से जो एक बारीक शिल्प-बोध (कला-प्रेम) सजग रहा करता था, उसने ही उसे क्रोध प्रकट करने से रोक लिया। किनारे पर सबसे पहले वही उतर पड़ा। तिलक द्वारा फेंके गए बाँस को उसने लपककर पकड़ लिया था। उसने बाँस के उद्धत आघात से मूक धान के पौधों को बचा लिया था। जाल संभालने का काम खत्म होने पर किशोर नाव में चढ़ा और सुबल अपना हाथ कमर पर रखकर खड़ा हो गया। तिलक की मदद से नाव को धक्का देकर पानी में उतार दिया गया। जब नाव बीच में पहुँची तो किशोर ने जाल फेंका। उसने एक अंजुरी जल मुँह में भरा, कुल्ला किया और जाल को पानी में फैला दिया। थोड़ी देर जाल को डुबाए रखने के बाद किशोर ने मछलियों की पहली खेप उठाई। ‘यह जगह बहुत अच्छी है। इंच-इंच भर की पतली-पतली मछलियाँ, रूपहली मछलियाँ, लहरों की तरह चंचल मछलियाँ, खेल में मगन थीं।’ किशोर ने तेज गति से जाल को खींचा और एक ही झटके में सारी मछलियों को डाले में फेंक दिया। वे अनिर्वचनीय भंगिमा में नाचने लगीं। पहली ही खेप में इतनी सारी मछलियाँ देखकर किशोर की आँखें फैल गई थीं। मछलियाँ भी उस दिन की सुबह की तरह स्निग्ध थीं। कुछ ही देर में सूरज काफ़ी ऊपर चढ़ गया था। नदी पर धूप की चादर फ़ैल गई थी। ताप का आभास पाते ही सारी मछलियाँ एक साथ अतल जल में डूब गई थीं। जाहिर है, अब वे जाल में नहीं फँसेगी। तब भी किशोर ने एक बार धपास की आवाज के साथ जाल फ़ेंका। लेकिन इस तरह जाल फ़ेंकने का अर्थ था-आज बस यहीं तक। जाल को इस तरह फ़ेंकना समेटने की प्रक्रिया में था। तिलक अपनी कोरी धोती समेटते-समेटते आगे बढ़ा और अपना काम संभालने लगा।

मोड़ल पहले से ही घाट पर उनका इन्तजार कर रहा था। पहले ही दिन इतनी मछलियाँ देखकर वह खुशी से झूम उठा। बोला, ‘छोटे जल्ला, तुमने तो अच्छी साइत की। चलो, मछलियों को घर ले चलते हैं।’

बसन्ती हवा सन-सन करती बह रही थी। इससे साफ़ पानी पर तरंगें उठती दिख रही थीं। किशोर रह रहकर अनमना हो रहा था। नदी की ता-ता-थोई-थोई नृत्य-गति के साथ उसका हृदय भी नाचने को था। पर आकाश में धूप बढ़ती जा रही थी। जब वह धूप नाव पर उतरी तो ऐसा लगा कि उसने तिलक, किशोर और सुबल को पिघले सोने

से नहला दिया है। न जाने किस अदृश्य शिल्पी ने एक मायामय तूलिका से उसके मन में आनन्द के रंग भर दिए थे। किन्तु रह-रहकर उसका मन अनेक तरह की संभव-असंभव चिंताओं में डूब जाता था। एक बार वह सुबल को साथ लेकर शुकदेवपुर गाँव का चक्कर लगा आया था। शुकदेवपुर में तरह-तरह के बाग-बगीचे थे। पेड़ों के पत्ते पहले ही झड़ चुके थे और नए पत्ते आने शुरू हो गए थे -चिकने चिकने, तुलतुले³⁷। ठीक किशोर के मानस-पटल की तरह। इनकी ओर अपलक देखना उसे अच्छा लग रहा था। तुलसी-चौरे के नजदीक एक मकान के सामने बेड़ा लगाकर कुछ फूलों के पौधे लगाए हुए थे। बहुत ही सुन्दर फूल खिले थे उनमें। नानारंगी पंगुड़ियों का अद्भुत सम्मिलन था वहाँ। एक अचीन्हे खूबसूरत फूल की ओर खिंचकर किशोर ठिठक गया था। उसने सामने से गुजरती एक किशोरी को आवाज लगाई। उसके हाथ में सूत का गुच्छा था। किशोर ने सुबल का हाथ पकड़कर उसे रोका और कहा, 'रुक, इस फूल को देखने दे। कितना खूबसूरत है। हमारे गाँव में नहीं मिलता यह।'

‘ए लड़की, इस फूल का नाम तो बताती जा!’

बेचारे सुबल के पास कवि-हृदय नहीं था। सचमुच वह रंगीन मिजाज, समझदार किशोर का साथी बनने लायक नहीं था।

‘तू ही पूछ न, मुझे इसमें मत घसीट।’ सुबल ने कहा।

‘ठीक है, मैं ही पूछता हूँ।’

किसी विचारक के आगे आसामी की तरह एक छोटी-सी लड़की के सामने युवा किशोर एक छोटा चुप्पा बच्चा बन गया था। उसके मुँह से बड़ी मुश्किल से निकल पाया, ‘इस गाँव का नहीं हूँ। हमारे यहाँ यह फूल नहीं होता। इसलिए पहचानता नहीं हूँ। इसका नाम कैसे पता करूँ?’

लड़की ने लज्जा से रूँधे कण्ठ से कहा, ‘मूगरा चण्डी; इसका नाम मूगरा-चण्डी है।’ कहकर उसने किशोर की आँखों में झाँका। लेकिन यह क्या, वह तो किसी मोहित सर्प की तरह उसी को देखे जा रहा था। किशोरी ने आँचल से अपने उभरते उरोजों को ढँक लिया। फिर भयभीत हिरणी की तरह बड़े-बड़े डग भरती हुई एक मकान की आड़ में छिप गई। सुबल को कुछ और ही अंदाज लगा, बोल पड़ा, जो भी कहो भाई, ‘इस गाँव की लड़कियों में तुम्हारी बसन्ती जैसी एक भी नहीं है।’

‘मेरी बसन्ती, क्या कहा तुमने?’

‘शादी तो तुमसे ही होनी है उसकी।’

37. नरम-नरम।

‘इस पारी में जो रुपए कमाओगे, उन्हें लेकर लौटते ही उससे तुम्हारा ब्याह हो जाएगा। अब तुम्हारी नहीं तो क्या अपनी बसन्ती कहूँ?’

किशोर सुनकर हँस पड़ा, ‘नहीं रे सुबल! ऐसी बात नहीं है। बसन्ती मेरी है, ठीक है, लेकिन उसकी सप्तपदी (सात फेरे) तुझसे ही करवा दूँगा।’

‘मन की बात छिपा क्यों रहे हो किशोर वहाँ बसन्ती हँडिया में चावल पकाकर तुम्हारे लौटने के दिन गिन रही होगी। तुम क्या नहीं जानते?’

नहीं रे सुबल! यह बात ठीक हो चाहे न हो। मेरा मन कुछ और ही कहता है। जिसे बचपन में नंग-धड़ंग देखा है, गोद में उठाया है, पीठ पर खिलाया है, हँसाया है, रुलाया है, डराया है, बुद्धू बनाया है, क्या उससे ब्याह किया जा सकता है। ब्याह तो उससे करना चाहिए, जिससे कभी मेल-मुलाकात न हुई हो। पहली बार मुखाचण्डी³⁸ के समय ही देखा हो। जब गाँव की औरतें गीत गाते-बजाते जोकार दे रही हों और वधू को पीढ़े पर उठाकर घूँघट हटाते हुए उसे वर की ओर देखने को कहा जा रहा हो। यह होती है सचमुच की इस्तिरी’। और सब तो बहिर्ने हैं।’

सुबल ने सोचा, ‘किशोर का दिमाग ठीक काम नहीं कर रहा। पर अगर सचमुच बसन्ती से किशोर का ब्याह नहीं हुआ तो फिर किससे होगा?’ उसकी सोच का अन्त न था।

उसके मन में कुछ चल रहा था। इसका अंदाज लगाकर किशोर कुछ लज्जित-सा हो गया। फिर बोला, ‘चल अब लौट चलते हैं। बहुत देख लिया टोला!’

किशोर यहाँ की लड़कियों के बारे में बहुत देर तक नहीं सोच सका। सोचता तो शायद पागल हो जाता।

दूसरे दिन फिर वही स्निग्ध, नीली, फाल्गुनी सुबह हुई। वे जाल उठाकर गहरी नदी में उतर गए। जाल फेंका, फिर उसे खींचा गया। छोटी-छोटी प्राण-चंचल अनेक दूधिया-सफ़ेद, चाँदी-सी शुभ्र मछलियाँ फँसी। हर मछली जैसे एक अलग प्राण हो। जल की गहराई से जब वे पकड़ी जातीं तो जाल में फंसने के बावजूद उनका चंचल नाच और क्रीड़ा देखते ही बनते। पलक झपकाते ही जिनकी मृत्यु निश्चित थी, वे इस तरह मृत्यु की उपेक्षा कर शान्त चित्त-सी कैसे तैरती रहती हैं। जो भी हो, इन्हें देखना बड़ा अच्छा लगता है। किशोर सम्मोहित-सा जाल तेजी से फेंकने और उठाने का काम करता जाता था। इस समय उसके मन के दूसरे भाव न जाने कहाँ छिप गए थे।

चैत आधा बीत चुका था। बसन्त अपने पूरे यौवन पर था। होली-पूर्णमा करीब

38. विवाह के पहले वर-वधू द्वारा एक-दूसरे को देखने का प्रथम अवसर/शुभ-दृष्टि।

थी। बसन्त और पूर्णिमा में कौन किसके साथ झूल रहा था, पता नहीं। लेकिन उनके इस कार्यकलाप ने सबके मनो को सुगबुगा दिया था। बसन्त ने गगन-पवन वन-वन में, लोगों के मन-मन में अमर-सी छुअन जगा दी थी। मनुष्य मानो खुद ही खुद को रंग रहा था, लेकिन इससे उसका मन नहीं भर रहा था। वह अपने प्रियजनों के अलावा अपने-पराए के बंधन तोड़ जिस-तिस को रंगकर अपना बना लेना चाहता था।

शुकदेवपुर के इलाके में भी रंगों की धमाचौकड़ी शुरू हो गई थी।

सब धूमधाम से होली मनाएंगे। एक-दूजे को रंग लगाएंगे और प्रेम की रसधारा बहाएंगे। मोड़ल ने गाँवभर को न्योता भेजा। उसके कार-बार के सहभागियों के रूप में किशोर आदि भी निमन्त्रित हुए। कल सुबह से रात तक होली मनाई जाएगी। गाना-बजाना, रंग खेलना, दावत आदि का आनन्द लिया जाएगा। गाँव भर में होली-पूर्णिमा का सब बड़े मन से इन्तजार करते हैं। औरतें हाथ में रामकरताल लेकर और पाँवों में घुँघरू बाँध परियों की तरह नाचती हैं। जिसने यह नाच नहीं देखा उसका तो मानो जन्म लेना ही बेकार था।

सुबल को अब साबुन की जरूरत थी। किशोर ने उपाय सुझाया, नदी के उस पार हाट लगती है। चलो, साबुन खरीद लाएँ।

‘लेकिन एक टुकड़ा साबुन के लिए इतनी बड़ी नदी पार करना कहाँ की समझदारी है?’

तभी समस्या का समाधान खुद उपस्थित हो गया। इसी पार सँपेरों के दल ने लंगर डाला था। सँपेरिनें नावों में आइने, कंधियाँ, साबुन, बंसी, जूड़े का काँटा, काँच की चूड़ियाँ और नकली मोतियों की मालाएँ और अनेक रोजमर्रा की चीजें लादकर शुकदेवपुर के घाटों पर घूम-घूम कर बेचा करती थीं। उनके साथ-साथ कभी-कभी साँप रखने वाली झाँपियाँ (पिटारियाँ) भी होती थीं। किशोर और सुबल मछली पकड़ने में लगे थे। दिन चढ़ रहा था। थोड़ी देर में ही सब की सब गहरे पानी में उतर जाएंगी। जल्दी-जल्दी जितनी पकड़ी जा सकें उतना अच्छा। ढेर की ढेर मछलियाँ फँस रही थीं। तभी एक सँपेरिन ने उन्हें आवाज दी-‘ओ भाई, मछलियाँ हैं?’

तिलक बुरी तरह चिढ़ गया था। बिड़बिड़ाते हुए बोला, ‘अब ये मछली खरीदने आएँगी और परेशान करेंगी।’

‘नहीं, मछलियाँ नहीं हैं।’ उसने सँपेरिन की ओर मुखातिब होकर कहा।

पर सँपेरिन को विश्वास नहीं हुआ। वह नाव के किनारे पर आई और बया पक्षी के घोंसले जैसी अपनी छोटी सी किशती को उनकी नाव से सटा दिया। अपनी नाव की रस्सी पकड़कर वह एक ही छलांग में उनकी नाव में कूद गई। डाले पर एक नजर

डालते हुए कहा, 'क्या भाई, ये मछलियाँ नहीं तो क्या हैं? चार पैसे की दो ना!'

इस खेप में किशोर को बहुत मछलियाँ मिली थीं। बीच में लगे बाँस पर पाँव रख वह जाल खींचकर मुड़ा ही था कि उसने सँपेरिन को अपनी पीठ से चिपके देखा। जवान माँसल सँपेरिन। उसके दोनों स्तन उद्धत रूप में उभरे हुए थे। जिनके कोमल उन्नत स्पर्श से किशोर के सारे शरीर में बिजली सी दौड़ गई थी। वह तख्ते के नीचे गिरने ही वाला था। गिरता तो हाथ-पाँव तोड़ने का एक नया ही अध्याय बन गया होता। सँपेरिन ने एक हाथ से दाँयाँ बगल पकड़ी और दूसरे हाथ से किशोर का कन्धा पकड़कर उसे खींचा और आलिंगन में भींच लिया। किशोर संभल गया था पर वह दिशाहारा महसूस कर रहा था। सँपेरिन का वक्षस्थल साँप की तरह ठण्डा था। उसने धीरे-धीरे किशोर को अपने बन्धन से मुक्त किया और बोली, 'अरे भैया, गिर क्यों रहे थे? मुझे पकड़ नहीं सकते थे!'

नाव के एक सिरे से तिलक चिल्लाया, 'अरी सँपेरिन, तू अपनी नाव में जा!'

'ए बूढ़े, तुझसे मुझे कोई लेना-देना नहीं। मेरी खरीददारी इनके साथ है।' उसने किशोर के कन्धे पर हाथ रखा है और पुनः उसकी पीठ से चिपक गई।

'ये बुढ़ा तुम्हारा किस जन्म का रिश्तेदार है जी!'

'बढ़े-गिद्ध! बूढ़े-बाज कहीं के! तू चुप रह। तू हमारा इनका रिश्ता क्या जाने!'

अपने साथी को गालियाँ खाते देख किशोर ने सोचा, वह तो दोनों ओर से मुसीबत में है। बोला, 'सँपेरिन तुम अपनी नाव में जाओ।'

'मैं क्या तुम्हारे साथ बसने आई हूँ। मछली दे दो, चली जाऊँगी।'

'ये लो..चार पैसे की मछलियाँ..अब जाओ।'

'मछली तो मिली, पर तुम कहाँ मिले..तुम ही तो हो मेरे मनचाहे पुरुष।'

'नखरे बन्द कर! मेरा तिलक बड़ा गुस्सैल है।'

'गुस्से-उस्से की मुझे कोई परवाह नहीं। मनचाहा आदमी नहीं मिला तो बाद में छाती पीटकर रोने से क्या लाभ। ऐसी ठगी का सौदा मैं नहीं करती।'

किशोर को हंसी आ गई। बोला, 'एक क्षण में मैं तुम्हारा मन चाहा आदमी हो गया? पहले वाला मनचाहा कहाँ गया?'

'उड़ गया। ठीक समय पर उसको बन्धन में नहीं बाँधा ना! इसीलिए तुम्हें जल्दी से बंदी बनाना चाहती हूँ।'

'अरी सँपेरिन, तेरे पास बाँधने को है क्या?'

साँप, मेरी पिटारी में साँप हैं। पलक झपकाते ही उसने दो मोटे-मोटे साँप निकाले और किशोर की ओर बढ़ा दिए।

डर से किशोर की कँपकँपी छूट गई थी। 'दूर.. दूर ..साँप हटाओ..मैं बहुत डरता हूँ इनसे।'

'हटा लूँगी, लेकिन मेरी बात माननी होगी।'

'मानूँगा बाबा, जल्दी बोलो।'

'और दो मछलियाँ फाव³⁹ में दो।'

'लो, ये लो,' कहते हुए किशोर ने मुँह बनाकर छोटी-छोटी कई मछलियाँ उसके फैले आँचल में डाल दीं।

'अब तो चली जाओगी।'

'जाती हूँ, तुम मुझे बहुत अच्छे लगे। तुम्हें तो मैं अपना नातिन-दामाद⁴⁰ बनाऊँगी।'

किशोर मानो इन्द्र-सभा से एक झटके में नीचे आ गिरा। सँपेरिन विजयी मुद्रा में चली जा रही थी कि सुबल उसके पीछे दौड़ा और कहने लगा, 'सँपेरन, क्या तेरे पास साबुन है? हो तो मुझे दो पैसे का देती जा।'

गाना-बजाना शुरू होने के पहले ही तीनों सज-धजकर चौपाल में पहुँच गए। सजावट के नाम पर नीची धोती पहनी, गले में अंगोछा लटकाया। वैसे इस प्रदेश में तो बाहुबल और पेशीबल ही सजावट का प्रतीक था। जिसे चौपाल में पहुँचकर उन्होंने अनूठे रूप में देखा।

मोड़ल के पास चार बड़ी-बड़ी झीलें थीं। बारिश के मौसम में जब नहरों, तालाबों, झीलों आदि सबका जल एकाकार हो जाता था, तब दूर-दूरान्तर की मछलियाँ आकर इन झीलों में अट्टे जमाती थीं। जब पानी घटने लगता तो मोड़ल के कारिन्दे इन झीलों की घेरेबन्दी कर देते। मछलियाँ उनमें बंदी बन जाती। हजारों-लाखों रुई, कातला, नान्दिल, गेल, मृगोल मछलियाँ मोड़ल की सम्पत्ति बन जाती। देश-देशान्तर के गाँवों से मालो लोगों की नावें यहाँ आया करतीं। एक-एक नाव में चार-पाँच मर्द और पन्द्रह-बीस औरतें आतीं। इस तरह बारहों गाँव के बारहों किस्म⁴¹ के मालो नर-नारी एक जगह इकट्ठा होते। ये अपने प्रवास के छह महीने यहीं बिताते। बिचाली⁴² के बड़े-

39. पैसे देकर कुछ खरीदने के बाद मुफ्त में कुछ अतिरिक्त चाहना।

40. बेटे की बेटे का पति

41. किस्म-किस्म के- बांग्ला का एक प्रसिद्ध मुहावरा।

42. धान के सूखे डण्डल।

बड़े गोदामघर बनाए जाते। एक-एक गोदामघर की लम्बाई कई-कई गज की होती।

यहाँ आए लोगों में कोई किसी से पहले नहीं मिला होता, लेकिन यहाँ सब मिलकर एक दुनिया-सी बसा लेते थे। साथ-साथ रहना और काम करना। किसी महोत्सव की रसोई की तरह ये भात और सब्जी को बड़े-से स्तूप की तरह सजाकर रखते। यह एक तरह का लंगर होता था।

कितना काम हुआ करता था उनके पास। औरतें हँसिया लेकर कतारों में बैठ जातीं और मर्द मछलियों के टोकरे उठा-उठाकर उनके पास उलटते जाते। ढेरियाँ लगती जातीं। औरतों के हाथ मशीनों की तरह चलते थे। बड़ी-बड़ी मछलियों को पटककर ढेर करते हुए ये उनके पेट, पीठ और गले से तीन टुकड़े कर देतीं। मर्दों का एक अन्य दल बिजली की गति से इन टुकड़ों को टोकरों में उठाकर सूखने को डाल देता। तीन महीने तक इसी तरह रोज काम चला करता। छह महीनों का प्रवास काट ये पुनः अपने-अपने देश लौटने की तैयारी करने लगते। इस तैयारी को ये झील-पार कहा करते थे।

वे टोकरी भर अबीर ले आए। बाल्टियों में रंग घोला गया। एक चौकोर जगह पर मिट्टी की सीढ़ियाँ गढ़कर उसके दोनों तरफ़ गाड़े हुए दो बाँसों से डोरी बाँधकर एक रेशमी कपड़े के टुकड़े में लड्डू-गोपाल की मूर्ति झुला दी गई। इस लड्डू-गोपाल के पास कोई राधा नहीं थी। घुटनों के बल चलते हुए एक हाथ में लड्डू पकड़े लाल कपड़े के झूले में लटकते ये अकेले-अकेले झूलते रहते। एक-एक कर लोग आते थे और उनके माथे पर अबीर लगा उन्हें झुलाकर चले जाते। इस तरह लड्डू-गोपाल लगातार झूलते रहते थे। यह पक्ष इस तरह तैयार था। शुकदेवपुर का दल अभी नहीं आया था। मेजबानों में से तिलक आदि के पास एक आदमी पीतल की थाली भर अबीर ले आया और बोला, 'ठाकुर जी के चरणों पर अबीर चढ़ा दो। प्रेम के देवता कब किससे किस बंधन में बाँध दें। कौन जानता है।' उजाननगर टोले के ऐसे ही एक बन्धन में किशोर बँध गया था। किससे किसकी जोड़ी बनी, यह भी कोई नहीं बता सकता। जिससे पहले कभी मेल-मुलाकात भी नहीं हुई, वह हठात इतना नजदीक आ जाता है कि महसूस ही नहीं हो पाता कि जन्म-जन्मांतर से यही उसका अपना था। प्रेम के देवता चुपचाप कब किसकी किससे गाँठ जोड़ देते हैं, यह कोई नहीं जानता।

उन तीनों ने लड्डू-गोपाल को अबीर लगाया। इसके बाद कुछ पुरुषों ने मिलकर उनके ललाट और गालों पर अबीर मला। तीन-चार औरतों ने भी यही क्रिया दोहराई। इनमें से कुछ तो किशोर की माँ की उम्र की थीं। उन्होंने किशोर के माथे पर भी अबीर मला। जिसे उनका आशीर्वाद समझकर किशोर ने भी चुटकी भर अबीर उनके पाँवों

पर डाल दिया और चरण-धूलि लेकर माथे से लगा ली।

किशोर की बहन और भावजों की उम्र की कुछ युवतियों ने उसके गाल और माथे को अबीर से रंग दिया। किशोर ने चुपचाप उनका प्यार ग्रहण किया। गड़बड़ तो एक लड़की ने की। कुआँरी लड़की। उसकी देह में यौवन के चिह्न उभरने लगे थे। वह अपने रूप का ज्वार लिए वहीं घूम रही थी। बसन्त के इस उदात्त मौसम में उसका मन भी बासन्ती बना हुआ था। अन्दर ही अन्दर एक गोपन उन्माद हिलोरें ले रहा था। उसकी उम्र कोई पन्द्रह के आस-पास रही होगी। बड़ी मारक उम्र है यह। मन की चंचलता तन में समा नहीं रही थी। छलकी पड़ रही थी। क्यों न छलके ! मालो जाति की लड़कियाँ इस उम्र तक अविवाहित नहीं रहती। विवाह के दो-तीन साल बाद वे इस उम्र में पहुँचतीं। पता नहीं कैसे इस लड़की के मामले में यह अनियम घट गया था।

किशोर के गालों पर अबीर लगाते हुए उसके हाथ काँप रहे थे। दिल जोरों से धड़क रहा था। उसके छन्दमय हाथों के कोमल स्पर्श ने किशोर के रहस्यमय अन्तरमन के अधखिले कमल को छू दिया था और अब उसकी एक-एक पंखुड़ी खिलने लगी थी। इस नई छुआन ने उसमें एक ऐसी सिहरन जगा दी कि उसकी आँखें छलक आईं और वह भरी नजरों से उसी लड़की की ओर देखने लगा। उन आँखों में आमन्त्रण साफ़ दीख रहा था मानो वह किशोर को बुलाकर कह रही हो, 'बस तुम्हारे लिए जन्म-जन्मान्तर से अबीर का यह थाल सजाए बैठी हूँ। आओ, इसे थाम लो और अबीर के साथ मुझे भी ग्रहण करो।' थाली पकड़े उसके दोनों हाथ सचमुच काँप रहे थे। लज्जा से लाल हुई उसकी आँखें झुक गई थीं। उसे बचाया उसकी माँ ने। आँचल को सिर पर ओढ़ाते हुए उसने लजाती बेटी को अपनी ओर खींच लिया। किशोर का ध्यान सुबल ने तोड़ा था। उसकी बाँह को झटकते हुए उसने कहा, 'चलो, गाने की महफ़िल में बैठते हैं।'

शुकदेवपुर के आधे से अधिक लोग मछलियाँ मारने निकल चुके थे। एक सूखी नहर को लेकर वासुदेवपुर के वासियों से मोड़ल का पुराना झगड़ा चला आ रहा था। वह उसको निपटाने गया हुआ था। पहले उस गाँव की औरतें ही थाली में अबीर लेकर वासुदेवपुर की औरतों से जा मिली। बाद में मर्द लोग भी अपने दरवाजे बन्द करके वहाँ आ गए थे।

कुछ देर उनके बीच होली खेलने का सिलसिला चला। बाद में वे थककर चटाइयों पर आ बैठे और चैती-फगुआ (होली के गीत) गाने लगे। औरतें अभी भी रंग खेलने में जुटी थीं। इनके बीच एक बूढ़ा होली का राजा बनकर घूम रहा था। उसका स्वांग देखते ही बनता था। गले में केले-खम्भ की माला, केले के ही पत्तों का मुकुट,

कमर से बंधी फटी धोती, देह पर फटा फतुआ⁴³ । वह बीच-बीच में बैठ जाता, लेकिन थोड़ी देर बाद फिर कमर लचकाकर नाचने लगता था ।

तिलक ने ऐसा खुशमिजाजी वातावरण सालों बाद देखा था । सो उसके मन में भी होली-राज बनने की इच्छा जागी । वह किशोर के कान में जाकर फुसफुसाया । पर उत्तर में सुनने को मिला, 'हम यहाँ परदेशी हैं । चुपचाप भले आदमी बनकर बैठे रहो । नाचा-नाची शुरू की तो सब हमें पागल समझेंगे ।' लेकिन उस समय तिलक के लिए खुद को रोकना मुश्किल हो रहा था । वह इन्तजार में था । जब गीत आरोह पर होगा और झूमुर नाच शुरू होगा, तब वह बिना इधर-उधर देखे महफ़िल के बीचों-बीच पहुँचकर नाचने लगेगा । एक बार कमर मटकाते ही शर्म भी भाग जाएगी । फिर कोई दिक्कत नहीं होगी । गायकों का दल दो भागों में बँट गया था -राधा और कृष्ण का दल । सबसे पहले राधा के दल ने शिष्ट स्वर में गाना शुरू किया-

'हे कोयल, विनती है तुमसे'

सुख-बसन्त के इस मौसम में मत कूको

विरहिणियों के मन में प्रिय की याद आग-सी सुलग रही है

तुम्हारा स्वर उस जलन को दुगुना कर रहा है ।

शान्त हो जाओ, हे कोयल...

वह हमें छोड़कर चला गया कुसुम-कलियाँ क्या भूल पाई हैं⁴⁴

अब कृष्ण के दल ने दूसरा मुखड़ा शुरू कर दिया था-

बसन्त आया, मदन आया

घर के भीतर मन नहीं लगता

पिया बसे परदेश मेरी क्या गति होगी

और कितने दिन ढाँपे रहूँ अपने वक्ष को आँचल से⁴⁵

राधा का दल अब भी धीरजपूर्वक अपना अनुशासन बनाए हुए था-

वन-वन में फूल खिले

मधु के लोभ में भ्रमर जुटे

43. आधी बाँह का कुर्ता ।

44. सुख बसन्त काले डेको ना रे/अरे कोकिल बोलि तोमारे/विरहिणीर विने कान्त हृदाग्नि हय जलन्त/ जले केले द्विगुण ज्वले/ हय ना रे शान्त/ से-जे त्यजे अलि कुसुम कलि रईलो कि भुले

45. बसन्त काले एलोरे मदन/घरे रय ना आमार मन/विदेशे जाहार पति सेई नारिर किंवा गति/कत काल थाकिबे नारि बुके दिया बसन्त

हे सखी, मन में कितनी बातें हैं
 व्यथा किससे सुनाऊँ अपनी
 बसन्त कितना दुःखदायी हो गया है
 हर वृक्ष पर नई डालियाँ हैं
 पर चिर-प्रवासी पिया कहाँ लौटा ?
 शाखों पर कुहू-कुहू बोलती कोयल
 हे मेरी सखी, क्या करूँ मैं⁴⁶
 कृष्ण के दल ने सभ्यता की सीमा लाँघ दी थी-
 आज सुन लो ब्रजनारियो, राजकुमारियो
 तुम्हारे यौवन पर कानून लागू होगा
 हाथ पकड़कर ले जाएँगे
 हृदय-कमल में बैठाएंगे
 हे रंगिणी, आओ तो
 हाथ पकड़कर ले जाएँगे
 हृदय-कमल में बैठाएंगे
 वस्त्र खींचकर खुलवाएंगे
 मारेंगे लाल पिचकारी⁴⁷

राधा का दल समझ नहीं पा रहा था कि इस गीत का उत्तर कैसे दें। उनकी तरफ़ से एक ऐतराज सामने आया। 'मर्दों के गाने की महफ़िल अब उठा दी जाए।' दोपहर ढल गई, अब केवल औरतें गाएंगी।

रसमय प्रसंग से तिलक का मन उल्लसित हो उठा था। उसने सोचा, इस बार राधा का दल भी कृष्ण को ईंट का जवाब पत्थर से देगा। कृष्ण दल फिर और उत्तेजित हो जाएगा। बस तभी उनके गीतों से ताल मिलाकर वह नाचने उठेगा। बेचारे की आशालता मुरझा गई थी।

46. बने-बने पुष्प फुटे/ मधुर लोभे अलि जुटे/कतई कथा मने मने उठे सई/व्यथा कारवा काछे कोई/दारुण बसन्त काल गो नाना वृक्षे मेले डाल गो/प्रवास करे चिरकाल से एलो कई/बसिया तरु शाखे कहु-कहु कोकिल डाके आरे सखिरे आरे सखि रे ए ए ए
47. आजु सुन ब्रज नारि/ राजोकुमारि, तोमार यौवने कोरबो आइन जा रि हस्ते धोरे निय जाबो/ हृदय कमले बसाइबो/रंगिनी आयलो/ हस्ते धोरे निय जाबो हृदय कमले बसाइबो/ वसन तुलिया मारबो अई लाल पिचोकारी

दोल-मंडल⁴⁸ के चारों ओर स्थायी और अस्थायी निवासी औरतें मिल-जुलकर एक हो गई थीं। किसी के हाथ में रामकरताल का जोड़ा था तो कोई सिर्फ हाथों से ताल दे रही थी।

एक साथ अनेक करताल बज उठे थे। झा-झा झम झम, झा-झा झम झम की ध्वनि से आकाश गूँज उठा था। कंगन पहने हाथों की तालियाँ इन आवाजों को और अधिक मधुरता प्रदान कर रही थीं। इसी के साथ कई लड़कियाँ एक लय में नाच रही थीं। कड़ियों का कण्ठ-स्वर मिलकर एक अद्भुत समाँ बाँध रहा था। किशोर का मन एक अनजान आनन्द के सागर में डूब-उतरा रहा था।

दल के भीतर वह लड़की भी दिखाई पड़ी। वह माँ के पैरों की ओर देखते हुए उसी ताल पर अपने पाँव चला रही थी। किशोर से नजर मिलते ही उसमें एक गति-भंग सा हो गया। उसके पैर मानो ठिठक गए। माँ ने स्नेह से उसकी ओर देखा तो पाया कि उसकी बेटी ने नाचना बन्द कर दिया था और उसके मुँह पर लज्जा की गहरी लाली छाई हुई थी। कारण क्या था- दूर खड़ा किशोर उसी की आँखों में झाँक रहा था मानो उसे निगल ही जाएगा।

बेटी के संकोच को देखकर माँ उसे धकेल कर बाहर ले आई, पर वह अनमनी-सी दिख रही थी। माँ ने सोचा कि बेटी को लेकर घर लौट जाए, तभी एक भयानक काण्ड घट गया। तूफ़ानी हवा के झोंके की तरह एक आवाज आई और नाचती-गाती सारी महिलाओं को साँप-सा सूँघ गया। मन्द गति से तरंगायित शान्त तालाब में जैसे झंझा का विक्षोभ जाग उठा था। शुकदेवपुर के जो मर्द वहाँ थे, उन्होंने पलक झपकाते ही अपनी-अपनी धोतियाँ कमर से कस ली थीं और आफ़त का सामना करने को तैयार हो गए। वे आस-पास के घरों से लाठी-डण्डे, झाड़ू आदि जो कुछ मिला, लेकर निकल पड़े। ऐसा लग रहा था जैसे सब युद्ध के लिए तैयार हों। तब तक दुश्मन वासुदेवपुर में घुस चुका था।

औरतों के बीच भगदड़ मच गई थी। हमलावरों में से कुछ ने लाठी लेकर औरतों पर हमला बोल दिया था। उनमें से एक उसी लड़की की ओर बढ़ रहा था। तभी किशोर की तंद्रा जागी। वह कूदकर लड़की के आगे जा खड़ा हुआ और उससे भिड़ गया।

एक हमलावर की आकाश की ओर तनी लाठी का जोरदार आघात किशोर के सिर पर लगने ही वाला था कि शुकदेवपुर के एक युवक ने एक झटके में अपनी लाठी

48. होली उत्सव के लिए गोलाकार नृत्य

से मार हमलावर को धराशायी कर दिया। उसका निशाना चूक गया था। लाठी किशोर के सिर के बजाय हाथ पर जा लगी थी। पर तुरन्त ही उसने मरणासन्न दुश्मन से लाठी छीन ली और भागने के लिए पीछे मुड़ा। लेकिन यह क्या ! उसने पाया कि उसकी धोती के किनारे को मुट्टी में पकड़े वही लड़की बेहोश होकर गिरने वाली थी।

इस बीच भयंकर शोरगुल और सैकड़ों लाठियों की ठकठकाहट से वातावरण गुंजित हो गया था। किसी का हाथ टूटा, किसी का पैर तो किसी का सिर फूट गया था। डाकुओं में कई लौटने की हालत में नहीं थे। लहुलूहान होकर वहीं पड़े थे। बाकी लाठियाँ घुमाते हुए धीरे-धीरे पीछे हटे और खुला मैदान मिलते ही सिर पर पैर रखकर भाग लिए।

इसी हलचल के बीच किशोर ने बेहोश लड़की को अपनी बाँहों में उठाया और जोर-जोर से पुकारने लगा। 'अरे भाई, इसकी माँ कहाँ है? जल्दी बुलाओ। डर से बेहोश हो गई है ये। कोई पानी लाओ रे..एक पंखा भी।'

लड़की के खुले हुए लम्बे बाल धरती को छू रहे थे और सिर किशोर की बाँहों में झूल रहा था। उसकी बाँहों में पड़ी बेहोश लड़की के वक्ष-द्वय किशोर के इतने करीब थे कि उसकी हल्की सी साँस से भी आँचल खिसक जाने की आशंका थी। लड़की की माँ एक जगह खड़ी काँप रही थी। किशोर की आवाज से उसकी जान में जान आई। वह रसोईघर की ओर दौड़ी तथा तेल, पानी और पंखा लेकर आ गई। किशोर ने तेल में पानी मिलाया और अपनी हथेली में लेकर लड़की के सिर पर अपनी पूरी ताकत से मलने लगा। धीरे-धीरे उसने आँखें खोल दी। किशोर ने निस्पृह भाव से कहा, 'लीजिए, अपनी लड़की को संभालिए।' उसकी माँ के कानों में ये शब्द ऐसे पड़े, जैसे उन्हें उसके दामाद ने बोला हो।

उस दिन से इलाके में एक महायुद्ध छिड़ गया था। वासुदेवपुर के लोग भी कम नहीं थे। न संख्या में, न दंगा करने में। शुकदेवपुर के मालो भी आपद-विपद में पीछे नहीं रहते। खासकर मोड़ल को इन लोगों पर काफ़ी भरोसा था। राड़ तो बहुत दिनों से चली आ रही थी। उधर मोड़ल चाहता था कि बिना खून-खराबे के ही कोई हल निकल आए। इसी इरादे से वह उनके गाँव गया था। वह अब तक नहीं लौटा था। इस कारण शुकदेवपुर के मालो लोग चिन्तित थे। वे एक महाप्रलय के आने का इन्तजार कर रहे थे। पुरुषों की युद्ध-प्रस्तुति और औरतों की आतंक-बोज़िल साँसों से शुकदेवपुर की हवा भारी हो गई थी। हर घर से लाठियाँ इकट्ठी की जाने लगी थीं। तीखे-तीखे बाँसों के भाले, हँसिया, दरातियाँ आदि जुटाए जाने लगे थे। युद्ध की सारी तैयारियाँ कर मालो मोड़ल के इशारे के इन्तजार में खड़े थे।

किशोर के मन में एक अस्वाभाविक आशा जगी। काश ! उस लड़की से उसका ब्याह हो जाता। यहाँ आशा को इसलिए अस्वाभाविक कहा जा सकता है क्योंकि उसमें अपनी ओर से किसी को कुछ भी कहने का साहस न था। वह चाहता था कि दूसरी ओर से ही कोई पहल हो। मन ही मन वह रंगीन ख्वाब बुनने लगा था। अच्छा क्या ऐसा नहीं हो सकता कि लड़की की ओर से ही कोई आकर उसे कहे, 'ओ किशोर, यह लड़की हमने तुम्हें दी। अपने देश ले जाकर ब्याह कर लेना'

गाँव के नजदीक नदी के प्रवाह से एक कगार कटकर गिर गया था। शाम को किशोर ने अपना जाल उठाया और कहा, आज गाँव के नजदीक वाले घाट पर ही जाल फेंकूँगा। अनमने भाव से किशोर घाट तक पहुँचा, जाल भी फेंका, लेकिन उसकी प्यासी आँखें मालो टोला के घरों की ओर ही ताक रही थीं। तभी उसी की उम्र का एक युवक टोले से निकल कर किशोर की नाव की ओर आता दिखा। मेरी ओर आने का उसका क्या प्रयोजन हो सकता है। यह सोचते ही किशोर को रोमांच हो आया। युवक शायद उसका भाई हो और रिश्ता पक्का करने की बात करने आ रहा हो।

सचमुच वह युवक किशोर के नजदीक आ खड़ा हुआ और बड़ी आत्मीयता के स्वर में अपनी बात शुरू की, 'सुना है आप लोगों का देश बड़ा अच्छा है। देखने का मन कर रहा है। आपके यहाँ कायस्थ हैं, बराहमन हैं, पढ़े-लिखे लोग हैं। बड़े ही अच्छे देश में रहते हैं आप लोग।'

'भाई, मेरे पास अभी कुछ बताने की फुरसत नहीं। अभी मुझे जाल फेंकना है, फिर उसे समेटना है।' पढ़े-लिखे लोगों के साथ रहने के दुःख और उन जैसे लोगों के साथ रहने के सुख के तात्त्विक अन्तर को सप्रमाण समझाने का समय किशोर के पास नहीं था। इसलिए उसने केवल उसकी बातें सुनी।

'आपके साथ एक रिश्ता जोड़ना चाहता हूँ।'

किशोर की सारी शिराएँ एक साथ स्पंदित हो उठी।

'हम गरीब लोग हैं, हमारी और आपकी रिश्तेदारी क्या शोभेगी?'

'गरीब तो हम भी हैं। गरीबों के साथ ही तो गरीबों की रिश्तेदारी शोभती है। आपका क्या कहना है?'

इस रिश्तेदारी के लिए किशोर कितना व्याकुल था, इस अनभिज्ञ युवक को वह कैसे समझाए? काश वह बिना समझाए ही सब समझ जाता !

किशोर के मन के आकाश पर डूबते सूरज की लाली बिखर गई। मन ही मन सब समझ कर उसने किसी तरह अपनी पुलक को छिपाया और आखिर पूछ ही बैठा, 'किस तरह की रिश्तेदारी करना चाहते हैं?'

‘दोस्ती ! बस दोस्ती का रिश्ता कायम करना चाहता हूँ। कितने दिनों तक कितने ही देश घूमा, पर कोई मनचाहा दोस्ती करने लायक मिला ही नहीं। आपको देखा तो लगा जैसे इतने दिनों से आप ही को तो खोज रहा था।’

‘ठीक है, कर ली दोस्ती, बस तो !’

ऐसी मुँह से कही दोस्ती किस काम की। गा-बजाकर डंके की चोट पर धोती-अंगोछा बदलेंगे। तब न होगी सच्ची दोस्ती।’

किशोर ने मन ही मन सोचा, गा-बजाकर दिखावा.. ये तो केवल उस लड़की को पाने के लिए किया जा सकता था। दोस्ती तो मुँह से बोलकर ही हो सकती है। इस काम में ये सब आडम्बर..धुत्त..अच्छा नहीं लगता। किशोर हठात खुशी के स्वर्ग से मरु-भूमि की रेत पर आ गिरा। बोला, ‘मुझे छोड़िये, उधर जाइये, सुबला से मिलिए और दोस्ती जमाइए।’

और एक दिन दोपहर की धूप को चीरते हुए नाले के उस पार से मोड़ल को लौटते देखा गया।

उनके चेहरे पर जमी चट्टान-सी कठोरता को देख किसी को समझते देर नहीं लगी कि कुछ भयानक घटित हुआ था।

फिर एक दिन मोड़ल के घर से किशोर को बुलावा आया।

किशोर इन दिनों किसी और ही दुनिया में विचरण कर रहा था। वह दिन-रात एक ही खयाल में खोया रहता था। वह सोचता रहता था कि काश कोई अलौकिक घटना घट जाती और उस लड़की का विवाह उससे हो जाता। अगर ऐसा नहीं हो पाया तो उसके जीने का क्या अर्थ? उसकी ओर से कौन प्रस्ताव लेकर जाए?

मोड़ल से खुलकर बात की जा सकती थी लेकिन इन दिनों उनके मन की जो हालत है....

फिर भी किशोर डरता-डरता ही सही मोड़ल के सामने हाजिर हो गया। उनके पास बात करने का बिल्कुल समय नहीं था। हाथ से इशारा करते हुए उन्होंने इतना ही कहा, ‘तुम्हें भीतर बुलाया है।’

यहाँ बात इतनी आगे बढ़ चुकी थी और किशोर को इसकी भनक तक नहीं। उसने मोड़ल-गृहिणी के पाँव छुए और वे उसका हाथ पकड़कर एक कमरे के भीतर ले गईं। वहाँ नई साड़ी पहने वही बैठी थी। ऑठ पान से रंगे थे। उसका तेल चुपड़ा चेहरा शर्म से लाल हुआ जा रहा था। मोड़ल की बीवी के हाथ में दो फूल-मालाएँ थीं।

एक उसने किशोर को दे दी और दूसरी उस लड़की को थमा दी। 'अभी माला-बदल की रस्म पूरी कर लो। अपने घर जाकर पूरे रीति-रिवाजों के साथ इससे ब्याह कर लेना।'

माला-बदल की रस्म पूरी हो गई थी। फिर रस्म के अनुसार वर-कन्या को वहीं छोड़कर बाहर से साँकल चढ़ा दी गई थी। शुरू में लड़की काफ़ी डरी हुई थी। किशोर ने उसको सहज किया। थोड़ी देर बाद मोड़ल की पत्नी आई और साँकल खोलकर बंदी को बाहर निकाला और बंदिनी को छोटी बहन की तरह स्नेह से नहला-धुलाकर रसोईघर में ले आई। फिर किशोर को चेतावनी दी, 'देखो जल्ला, माला-बदल हो गई, इसका मतलब उतावले होकर रोज-रोज पक्षियों की तरह इधर चक्कर मत लगाना। कभी-कभार ही आना-जाना करना।'

दूसरे दिन लड़की की माँ मिलने आई और मोड़ल की पत्नी से कहा, 'माला-बदल की रस्म हो गई ना!'

'हाँ, हो गई।'

'बिटिया, थोड़ा ध्यान रखना, अभी इनकी मेल-मुलाकात ज्यादा न हो। अमंगल होगा। अपने घर लौट रीति-रिवाज से ब्याह करे। भाग्य में यह गर्दिश भी लिखी थी। दामाद तो मिला, मेरी बेटी पराई हो गई। मेरे मन में कोई खास 'अलहाद' नहीं है। अभी तो उसके बाप को समझाना बाकी है। पता नहीं वह कैसा बर्ताव करेगा?'

सारी कथा सुनकर सुबल आनन्द से उछलने लगा। 'हाँ तो दादा, तुम्हारी बसन्ती तुम्हें यहीं मिल गई। अब अपने गाँव वाली बसन्ती को किसे दोगे।'

'जा, तुझे दिया।'

सुबल के मन में आशा का एक तार झनझना उठा।

बादल के जो टुकड़े धीरे-धीरे आकाश की गोद में एकजुट हो रहे थे, वे ही काल-बैसाखी⁴⁹ के तूफ़ान का आकार धारण कर फ़ट पड़े थे। मोड़ल को दम मारने की फ़ुरसत नहीं थी। थोड़ी-सी मोहलत लेकर उन्होंने सबके कान में यह बात डाल दी कि परदेशियों को एक-दो दिन के भीतर ही डेरे-डण्डे उठाकर अपने घर की राह लेनी होगी। मोड़ल किशोर को भी यह बात बताना न भूला। लड़की के सामने उसे बुला भेजा और कहा, 'तुम्हें बेटी दी है, देश लौटकर धर्म को साक्षी बनाकर इससे ब्याह कर लेना। यह तुम्हारे जीवन की साथी है, धर्म-कर्म की साथी है, इहलोक और परलोक की साथी है। इसकी कभी उपेक्षा मत करना और हाँ, कल तुम्हारी सभी सूखी मछलियाँ बिक जाएँगी। यहाँ आए दूसरे व्यापारियों की तरह तुम भी अपनी नाव लेकर वापस

49. मानसून के पहले की बारिश।

लौट जाना। मुझसे अब तुम्हारी मुलाकात शायद ही कभी हो।’

सचमुच मोड़ल के हाथ में समय नहीं था। वह तुरन्त खड़ा हुआ और चल दिया।

लड़की का बाप सामने बैठा था। उसके चेहरे पर गुस्सा झलक रहा था। उसका सामना करते हुए किशोर अपने को अपराधी महसूस कर रहा था। लड़की के बाप ने गंभीर स्वर में पूछा, ‘आपका नाम क्या है?’

‘श्रीयुत किशोर चान मूल्य ब्रह्मण। पिता का नाम श्रीयुत रामकेशव मूल्यब्रह्मण। निवास स्थान गोकन्न घाट, जिला त्रिपुरा।’

लड़की के बाप ने एक कागज के टुकड़े पर ठिकाना लिख लिया था। किशोर ने झुककर उसके पैर छूने की कोशिश की, लेकिन वह बिना कुछ कहे ही चल दिया था। गाँव के घाट पर सभी नावें वापसी के लिए तैयार खड़ी थीं। उस पार वासुदेवपुरवासी अपनी लाठियाँ कन्धे पर रखे धोतियाँ कमर से बाँधे हुए रास्ते पर उतर पड़े थे। उन्हें इस पार से ही साफ़ देखा जा सकता था। किशोर को ऐसा लगा, जैसे आकाश के किसी कोने से पुंजीभूत मेघ का एक काला टुकड़ा टूटकर तेजी से इधर बढ़ा आ रहा हो। दूर से वह और भी काला और भयंकर लग रहा था। मोड़ल को इस तरह अकेले छोड़कर यहाँ से जाने में किशोर को मन ही मन बहुत दुःख हो रहा था।

वह बस एक ही बात सोचे जा रहा था। आस-पास इतने लोग हैं। इतनी धन-दौलत है। इतना विशाल कारोबार है। लेकिन सब-कुछ होते हुए भी ये इतने असहाय हैं। उसकी पत्नी तो और भी असहाय है। लेकिन उसे तो जाना ही पड़ेगा। मोड़ल का कड़ा हुक्म है, किसी भी परदेशी रैयत को वे आनेवाली मुसीबत से नहीं जोड़ना चाहते। आज गाँव के घाट पर एक प्रलय-काण्ड घटने वाला था। उसके पहले सारी नावें विदा हो जाएँ बस। नावों की विदाई बेहद मर्मस्पर्शी थी। नववधू को नाव में बैठाने आई मोड़ल की पत्नी ज़ार-ज़ार रो रही थी। उसे रोते देख किशोर की छाती भी फट आई थी। उसका मन हुआ कि वह भी रो दे।

नववधू ने अपने पाँव नदी के जल में धोए और सबको प्रणाम कर नाव में बैठ गई। दो नावें एक साथ चलीं। जिनमें एक किशोर की थी और दूसरी लड़की के बाप की।

कुछ देर तक वे साथ-साथ चलते रहे। इसके बाद मेघना के पश्चिमी किनारे पर एक नदी की उपधारा के नजदीक से उनकी नावें अलग-अलग दिशाओं की ओर मुड़ गईं। धीरे-धीरे उनके बीच की दूरी बढ़ने लगी। फिर भी यह दूरी अभी इतनी नहीं हुई थी कि किनारे के लोग पहचाने न जा सकें। यह तो साफ़ दिख रहा था कि उस नाव में

बैठी एक प्रौढ़ा अपनी आँखों को आँचल से ढँके बुक्का फाड़कर रोए जा रही थी। उसके रुदन ने पत्थर जैसे कठोर पुरुष को भी पिघला दिया था। वह भी कन्धे पर रखे अंगोछे से अपनी आँखें छिपाए हुए था।

अब वे ओझल हो गए थे। किशोर की नाव में बैठी नववधू की रुलाई सारे बन्धन तोड़कर बहती जा रही थी।

वे दिनभर नाव खेते रहे। तभी तिलक के दिमाग में एक समस्या कीड़े की तरह कुलबुलाने लगी। उसने कुछ देर तो सोचा, फिर समस्या का निदान किशोर के सामने रख दिया। हमारी नाव डकैतों के इलाके से गुजर रही है। साथ में एक लड़की है। मैं तो कहता हूँ किशोर तुम एक काम करो, पाल के नीचे बिछे पटरे पर एक बिछौना लगाओ, जो बाहर से किसी को न दिख पाए।

किशोर ने नाव के तल में कथरी-तकिया लगाकर नववधू के यात्रापथ के लिए एक अस्थायी सेज बिछा दी थी। रात को एक जगह नाव बाँधकर उन्होंने खाना-पीना निपटया। सोती हुई नववधू को भी जगाकर खिलाया गया। इसके बाद उसे वहीं पर्दा लगाकर छिपा दिया गया। सोने से पहले किशोर के हाव-भाव देख तिलक ने घुड़का, मैं बूढ़ा हूँ, पर अपने अनुभव से जो कहता हूँ, उसे गाँठ बांध लो। नाव के भीतर अपनी नजर भूलकर भी न डालना।

बूढ़े की बात से शर्माकर किशोर ने पाल के भीतर एक चटाई बिछाई और सुबल को साथ लेकर सो गया। दूसरे दिन सुबह-सुबह नाव खोल दी गई। तिलक का ऐसा अनुशासन था कि नववधू को छूना तो दूर उसकी ओर नजर उठा कर देखने तक पर पाबन्दी थी। उसे खिलाने और सुलाने की जिम्मेदारी सुबल को दे दी गई थी। भले ही किशोर नाव का मालिक था, पर इस मामले में वह तिलक का कानून मानने के लिए बाध्य था। नाव का पिछला डौंड चलाते हुए सुबल ने सवाल किया, 'तो भाई, मनपसन्द घरवाली मिल गई है न!'

किशोर ने शर्मिली मुस्कान फेंकते हुए उत्तर दिया, 'कैसे बताऊँ भाई, न ठीक से देखा है, न पहचाना। मुझे तो अब याद भी नहीं है कि उसे कब देखा था। बिल्कुल भूल गया हूँ। अब तो लगता है अगर कोई उसे बदल भी दे तो शायद पहचान न पाऊँ।'

चैत बीत चुका था। बैसाख की गर्मी में इस नदी का पानी बढ़ना शुरू हो जाता था और धारा किनारे तक आ जाती थी। नदी के किनारे-किनारे धान और पाट के खेत थे। उनकी जड़ों में जल अठखेलियाँ करता दिखाई पड़ता था। जल नापने की सलाई लेकर एक छलांग में किशोर नदी के किनारे उतर गया था। उसने आसुरी ताकत से नाव में बँधी रस्सी खींची और नाव साँप की तरह धारा को धकेलते हुई किनारे की ओर आने

लगी। रस्सी लम्बी थी और उसे पूरी शक्ति से समेटना पड़ रहा था। सुबल सधे हाथों से डौंड खेता हुआ नाव को आगे बढ़ा रहा था। दूर से किशोर की लम्बाई कम लग रही थी। धीरे-धीरे नाव गहराई से निकलकर किनारे की ओर आ रही थी। पानी अभी भी कमर तक था। वह चिल्लाया, किशोर दा ! जल्दी करो, यहाँ खेतों में पनीले साँप रहते हैं। किशोर ने रस्सी समेटी और फ़िर से नाव में चढ़ गया।

सुबल ने ठिठोली की, 'तुम्हारे सिर पर क्या बीच-बीच में भूत चढ़ता है।' सुबल को जवाब न देकर किशोर ने कहा, अभी तो कई दिन की यात्रा और है। यहाँ से आगाननगर की खाड़ी तक पहुँचने में एक दिन लगेगा और अगर लगातार इसी तरह पूरे दिन नाव खेते रहे तो भैरवबाजार होते हुए कलापूड़ा की खाड़ी तक पहुँच जाएंगे। वहाँ से तितास के मुहाने तक एक दोपहरी का रास्ता है। जैसा कि उन्होंने अंदाज लगाया था, वे एक दिन की यात्रा कर आगाननगर की खाड़ी पहुँच गए। वहाँ रात बिताने के बाद नाव खोली, लेकिन एक की जगह दो दिन चले गए, पर भैरवबाजार का नाम-निशान नहीं मिल रहा था। सामने से हू हू करती जबर्दस्त हवा बह रही थी। मेघना की छाती पर लहरें पछाड़ खा-खाकर गिर रही थीं। नाव एक हाथ आगे बढ़ती थी, एक हाथ पीछे आ जाती थी। दो प्राणी नाव में बैठे लगातार डौंड चला रहे थे। बड़ी-बड़ी लहरों का सामना करते हुए नाव एक बार शून्य में उठती नजर आती तो दूसरे ही क्षण धपास-धपास करती नीचे आ जाती थी। नाव में बैठे लोग कमर तक पानी में डूबे जा रहे थे। उसमें छलक-छलक कर पानी भर रहा था। बीच-बीच में डौंड चलाना बन्द कर किशोर डलिया भर-भर कर पानी बाहर फ़ेंक रहा था। नाव के पिछले सिरे पर बैठा सुबल हवा के थपेड़ों और पानी के छींटों के कारण किसी भीगे कौए-सा नजर आ रहा था। इसके बावजूद वह चाबी दी हुई मशीन की तरह अपने शरीर का पूरा जोर लगाकर नाव को बचाने की कोशिश कर रहा था। तिलक की तो सिट्टी-पिट्टी गुम थी। निराश स्वर में किशोर बोला, 'भाई सुबल अब लगता है कभी घर के दर्शन नहीं होंगे।'

सुनकर व्यथित सुबल ने पूरा दम लगा दिया ताकि नाव डूबने से बच जाए।

न पकाने-खाने का समय था और न ही विश्राम का। यहाँ तक कि एक चिलम तम्बाकू पीने का समय भी नहीं था। कहीं थोड़ी देर के लिए नाव रोकने की गुंजाइश भी नहीं थी। नदी के चारों ओर नजर दौड़ाने पर दिल डूबने लगता था। जल ही जल। कोई कूल किनारा नहीं। कोई अवलम्बन नहीं। अथाह अपार जलराशि। यह जल जो जिन्दगी देता है, इस समय मौत का परवाना महसूस हो रहा था। दूर-दूर तक कोई खाड़ी भी नजर नहीं आ रही थी। इस संकट से वे लगातार तीन दिनों तक जूझते रहे। पर उनके पस्त होने से पहले संकट ही पस्त पड़ गया था। जो हवा पैशाचिक गर्जन

लिए बह रही थी, वह अब तितली के पंखों की तरह कोमल हो गई थी। मेघना के वक्ष का आलोड़न थम गया था। एक तरह की स्तब्धता छा गई थी।

अरे, यही तो है भैरव का बन्दरगाह। लगता है घर के बहुत नजदीक आ गए हैं। धारा को अनुकूल पाकर साधारण मेहनत से ही नाव तीव्र गति से दौड़ने लगी थी। भैरव बन्दरगाह का मालो टोला देखते-देखते बहुत पीछे छूट गया था। अब आगे बढ़ने का नशा छाने लगा था। सामने कलापूड़ा की खाई है। नाव रोकने की सबसे अच्छी जगह। लेकिन आकाश के एक कोने पर अब भी किरणें थीं। किशोर ने कहा, 'नाव बढ़ने दो।' एकदम नए गाँव की खाड़ी पहुँचकर ही रुकेंगे। जितना आगे बढ़ सकें बढ़ें।

सूरज डूबने के पहले ही नया गाँव दीख पड़ा।

यहाँ नए गाँव के एक अद्भुत इतिहास के पन्ने खुल गए थे।

सरल गति से बहती हुई मेघना ने यहाँ अपनी कमर थोड़ी-सी लचका ली थी जिससे पश्चिमी किनारे पर एक छोटी-सी झील बन गई थी। वह बारिश के दिनों में लबालब भर जाती थी। पर साल के बाकी दिनों में सूखकर ठन-ठन गोपाल बनी रहती थी। कभी कभी उसके तल में जो थोड़ा-सा मटमैला पानी बचा रहता था, उसमें बैकुण्ठपुर और तातारकान्दी गाँव के बच्चे अंगोछे से छानकर मछलियाँ पकड़ते थे। यहीं एक दिन बड़ा बदलाव देखा गया। पता नहीं क्यों और कैसे इस जगह पर मेघना की धारा का एक बड़ा गोला बन गया था जिससे झील का कगार बुरी तरह कटाव का शिकार हो गया। किनारे को तोड़ते, चूरमार करते दनदनाती हुई मेघना की उदार जलराशि झील के दोनों किनारों पर ताण्डव करने लगी थी। इससे भी जलकटाव हुआ। 'हू हू' करता हुआ जल कटे हुए घरे में समा गया था। नदी में 'हिस्स हिस्स' करता उच्छ्वास जाग रहा था, जिससे किनारों के ढेले 'खस्स-खस्स' कर जल में गिरते जाते थे। खेतों को डुबाती, छोटे-बड़े गाँवों को निश्चिह्न करती अनगिनत पेड़-पौधों को छिन्न-विच्छिन्न करती मेघना की यह उपधारा दिनोंदिन उदाम गति से भागती रही। भला इसे रोकने की शक्ति किसमें थी! यह गति दुर्वार, दुर्दम और प्रलयंकर थी। किसानों ने मुसीबत को सामने पाकर अपनी फसलों को समय से पहले ही काटकर एक जगह इकट्ठा कर लिया था। गाँववाले पहली बार इस आतंक को देखकर अवाक थे। बहुतों ने अपने सामान-असबाब बाँधकर गाय-बछड़ों को हाँकते हुए पश्चिम की ओर जाकर डेरे जमा लिए थे। कालक्रम में बहुत-कुछ घट गया था। जो कभी एक झील थी, अब वह उपधारा खुद मेघना बल्कि उससे भी कहीं अधिक चौड़ी, वेगवती और भयंकर नई धारा का रूप ले चुकी थी। जब तिलक विस्तारपूर्वक यह कहानी सुना रहा था तब उसकी दोनों आँखें चमक रही थीं। बात वैसे खास नई नहीं थी क्योंकि उनके गाँव के भी

अनेक मालो यहाँ मछलियाँ पकड़ने आया करते थे। यहाँ उन्हें काफ़ी मछलियाँ भी मिल जाया करतीं। किशोर और सुबल ने भी नए गाँव के इस कालांतक दिगन्त प्रसारित मुहाने को कई-कई बार देखा था। उन्होंने यह कहानी भी सुन रखी थी फिर भी तिलक के आवेगपूर्ण विस्तारपूर्वक वर्णन को बड़े मन से सुना था। मछेरों के लिए तो यह भी एक तरह का रोमांस था। नदी की रहस्यगाथा सुनकर ये जितने आनन्दित होते थे, सुनाकर भी उतने ही मगन। श्रोता ने यदि पहले इस गाथा को न सुन रखा हो और वह वक्ता के सामने एक नितान्त नूतन व्यक्ति हो तब तो वक्ता के उद्दीप्त कथावाचन को रोक पाना असंभव काम है। नौका के भीतर बिछौना बिछाए जो नववधू सोई हुई थी, उस पर तो तिलक का खास ध्यान था। नए गाँव की इस रहस्यमय कहानी को वह निस्संदेह कान लगाए सुन रही होगी।

अन्त में तिलक ने कहा, इतना कुछ करने के बाद कहते हैं सारा जल मूल मेघना में विलीन हो गया।

मुहाना सचमुच भयंकर था। यहाँ से फिर नदी का विस्तार बढ़ता चला गया था। किनारे का कहीं पता तक नहीं चलता था। जल धारा में बीच-बीच में चक्रवात उठते थे, दोनों ओर की लहरें मानो एक-दूजे पर झपट्टा मारती थीं। इस दौरान प्रचण्ड आवाजें होतीं। दूर से आती लहरें भी धुन छेड़ती हुई लगती। इनके सुर साफ़ सुने जा सकते थे। इस भयंकरता के एक ओर सुन्दर सी एक झील बन गई थी। यह बड़ा सुरक्षित स्थान था। इससे थोड़ी और दूरी पर एक सुन्दर, शांत और स्निग्ध जलाशय भी बन गया था। चाहे कितनी ही तेज हवा चले, उसमें बड़ी लहरें नहीं उठती।

इस जलाशय में प्रवेश कर तिलक आदि ने देखा, यहाँ तो पहले से नावों का दंगल खड़ा था। इनमें से अधिकतर धान, कटहल और पटसन के व्यापारियों की नावें थीं। सभी वहाँ रात्रि-विश्राम के लिए रुके थे, भोर होते ही अपने-अपने रास्ते चल देंगे। सब काफ़ी थके थे, इसलिए खा-पीकर जल्दी सोना चाहते थे, लेकिन बंगाल के पूर्वांचल की इस नदी पर आश्रित लोगों की अपनी कुछ खासियतें हैं, जो उनके लिए संसाधन की तरह हैं। वे इतनी जल्दी नहीं सोते। अपनी विशेषताओं को वे किसी न किसी रूप में याद रखते हैं। उनका आनन्द लेते हैं, गीत आदि गाते हैं, तब जाकर सोते हैं। किसी एक नाव में मुर्शिदा-बाउल गीत गाया जा रहा था।

इलाही दरिया के बीच नीरांजन का खेल
चट्टानों को तोड़-तोड़कर बहती धारा
पर डूबी कहाँ नौका जहाँ नदी सूखी थी
जल का रूप-रंग साफ़ देखकर

बलुई जगह पर नाव बाँध भाग गया व्यापारी⁵⁰

किसी-किसी नाव में बारहमासे गाए जा रहे थे-

अभी तो आसाढ़ की बारिश गम्भीर

आज रात चोरी होगा लीला का मन्दिर⁵¹

और किसी नाव में केरोसिन के टिमटिमाते आलोक में कोई व्यक्ति जरा-जीर्ण पोथी खोले सस्वर पाठ में लीन था-

हमारे राजा के देश की यही अन्तिम सीमा है⁵²

किसी नाव में हँसी-ठिठोली हो रही थी। बातचीत के बीच में कभी-कभार गीतों की कड़ियाँ भी सुनाई दे जाती थीं-

रोज तो चन्द्रमा उगता था पूरब या पश्चिम में

लेकिन आज उगा है शान के बंधनघाट पर⁵³

निरभ्र आकाश से उज्ज्वल चाँद अपनी चाँदनी सबके सिरों पर बिखरा रहा था। कुछ फटे-पुराने मेघखण्ड चाँदनी को पकड़ने के लिए दौड़ा-दौड़ी कर रहे थे। लेकिन चाँदनी थी कि उनके हाथ ही नहीं आ रही थी। यही सब देखते-सुनते किशोर आदि की आँखों पर नींद काबिज हो गई थी।

तभी कुछ लोगों के दबे पाँव चलने की आहट और उनकी अस्फुट आवाजें आने लगीं, जिन्होंने सबसे पहले तिलक का ध्यान भंग किया। 'उप्रफ़, किशोर ने बेहयाई की हद पार कर दी।' 'इस लड़के पर तो मेरा कोई वश ही नहीं चलता।' चिढ़कर तिलक ने करवट बदल ली और पुनः सोने की कोशिश करने लगा। लेकिन तभी उसे अपने पैरों में एक झटका-सा महसूस हुआ। उसकी तन्द्रा एकदम टूट गई थी। आँखें मलकर जब वह पूरे होश में आया तो उसे याद पड़ा कि वे तीनों तो पाल के भीतर सोए थे, बाहर कैसे आए। और तीनों के पाँव रस्सी द्वारा नाव के कुन्दे से किसने बाँध दिए थे। उनकी नाव भी अब वहाँ नहीं थी, जहाँ उन्होंने उसे बाँधा था। वह 'हू हू' करती हुई नए गाँव के उस सर्वनासी मुहाने की ओर भागी जा रही थी। किसी ने नाव खोल दी थी। तिलक पूरे दम से चीखने लगा, 'उठ रे किशोर कितना सोएगा! देख तो, सत्यानाश हो

50. एलाही दरियार माझे निरान्जनेर खेला/ सिल पाथर भासिया गेलो/सुकनाय डुबनो भेला/जले आसन बसन देइख्या सारा सारि/बालुचरे नाव ठेकाइया/पलाइलो बेपारी

51. एहिता आसार मासे बरिसा गम्भीर/आज रात्रि होबे चुरी लीलार मंदिर

52. हम्मक राजार देशेर वेरिल सेसेरे

53. आर दिन उठेरे चन्द्र पूबे आर फी चमे आजोका उठछे रे चन्द्र शानेर बांधान घाट

गया।’

किशोर ने एक झटके में पाँव की रस्सी तोड़ डाली, फिर गहरी साँस भरी और तुरन्त पाल के भीतर जाकर बिछौने पर नजर डाली।

‘वह कहाँ गई?’

‘अरे, तिलक, वह यहाँ नहीं है।’ ‘नाव में डकैती हो गई है। लुट गए हम तो...’

एक छोटी-सी सन्दूक में व्यापार के मुनाफ़े में कमाए दो-सौ रुपए थे। तिलक ने उसे खोजना शुरू किया लेकिन बऊ के साथ बक्सा भी गायब था।

‘हाय रे हाय, ये क्या हो गया।’ किशोर पागलों की तरह गला फाड़-फाड़कर चिल्ला रहा था। नदी की उफनती लहरों के उच्छ्वास से टकराती हुई उसकी चीख धीरे-धीरे दरिया के जल में समा गई। उसकी प्रतिध्वनि भी नहीं लौटी। इधर मुहाने के बीचों-बीच बहती नाव को लहरों के गर्जन की ध्वनि धीरे-धीरे पास आती महसूस हो रही थी और नाव किसी चुम्बक की तरह खिंचती उसी ओर चली जा रही थी। उस समय आकाश से अजस्र चाँदनी बिखर रही थी पर इनकी जिन्दगी में अंधेरा छा गया था।

बड़ी देर बाद सुस्थिर होकर तिलक बोला, सुबल पीछे जाकर नाव के नीचे देख! यदि पीछे की ओर मुड़ सकें तो!

किशोर ने घोर आपत्ति जताते हुए कहा, ‘नहीं नहीं तिलक, अब पीछे नहीं मुड़ेंगे। नाव ने जिस ओर रुख किया है, उधर ही बढ़ते रहेंगे।’

सुबल और तिलक की प्राणपण चेष्टा के बाद किसी तरह नाव को विध्वंसित होने से बचाया जा सका। रात में तो भटकाव के सिवा कोई रास्ता नहीं था। पर शायद अब वह खत्म होने वाला था। कितनी भयंकर और लम्बी थी कल की रात। जैसे खत्म होने का नाम ही नहीं ले रही थी। खैर, हर रात का एक सवेरा जरूर होता है। इसका भी हुआ। लेकिन रात के तूफान में किशोर नामक पाखी का जो एक पंख टूट गया था, उसका जोड़ा फिर नहीं लग पाया। वह डाँड़ के पास जा बैठा था पर उसके हाथ नहीं चल रहे थे। तिलक यह देख द्रवित हो उठा था, बोला, ‘डाँड़ को छोड़ दो, तुम पाल के नीचे जाकर आराम कर लो।’

किशोर चुपचाप उठा और भीतर जाकर बिछौने पर बैठ गया। वह बार-बार बिछौने को टटोल रहा था। यहीं तो सोई थी वह। न जाने अब कहाँ होगी?

सुबल के हाथों में भी तेजी नहीं थी। तिलक के बूढ़े हाथ ही जैसे-तैसे डाँड़ खे रहे थे। नाव उसी के भरोसे किसी तरह आगे बढ़ रही थी।

यहीं तितास का मुहाना था। इस मुहाने से सम्बन्ध तोड़कर अब तितास में प्रवेश

करना था। कुछ दिन पहले यहाँ तितास का पाट संकरा हो गया था। किन्तु अब बारिश की वजह से चौड़ा हो गया था। तितास में घुसते ही सुबल के मुँह से धत्त तेरे की निकला और डाँड़ समेट लिए। बाँस की खूँटी गाड़कर नाव को ठाँव लगा दिया गया और वह भी पाल के भीतर घुसकर लेट गया। दिन ढलने में देर थी। अभी कुछ आगे और बढ़ा जा सकता था। पर चाहकर भी तिलक यह कहने का साहस नहीं जुटा पाया।

फिर रात आई, गहराई और खत्म भी हो गई। पूरब के आकाश पर उजलापन दिखने लगा। किशोर न जाने क्या सोचकर उठा और बीच नाव में खड़े होकर कुछ देर एक ओर देखता रहा। फिर उसने हाथ बढ़ाकर नदी का जल छुआ।

लेकिन उसका हाथ जल से नहीं टकराया था, तो फिर वह क्या था- बड़ी ही मुलायम और भयंकर ठण्डी कोई वस्तु। उसने नदी में झाँका तो जो कुछ नजर आया, उसके आघात और भय से वह चीख पड़ा।

नदी में एक नारी-शरीर बहा जा रहा था। कमर से पाँव तक जल के नीचे। एकदम अकड़ी हुई देह। सिर लटका हुआ। तितास की मृदुल धारा उसके लम्बे बालों से खींच-तान कर रही थी।

‘देखो देखो, तिलक उधर देखो!’

‘क्या बात है किशोर?’ आँखें मलते हुए तिलक ने कहा।

‘वह मिल गई।’

तिलक ने दूर से बहते हुए शव को देखा और राम-राम कहते हुए सुबल को आवाज दी एवं तुरन्त नाव खोल दी।

पाल के भीतर किशोर निस्तब्ध बैठा था। डाँड़ खेते-खेते क्लान्त होकर तिलक भी नाव में आकर बैठ गया। आगे क्या करना है? किसी को सूझ नहीं रहा था। उसने एक रस्सी जलाकर उसमें तम्बाकू की टिकिया डाली और किशोर से पूछा, चिलम कहाँ है?

जब उधर से कोई उत्तर नहीं मिला तब उसने गौर किया, किशोर की दोनों आँखें अस्वाभाविक रूप में विस्फारित थीं, वे जवा फूल की तरह लाल दिखाई दे रही थीं। चेहरे पर एक दानवी भाव झलक रहा था। बीच-बीच में वह बड़ी तेजी से आँखें ऊपर-नीचे, दाएँ-बाएँ घुमा रहा था। दहशत में आकर तिलक चिल्ला उठा, ‘अरे सुबला, इधर आ जल्दी.. देख..लगता है, किशोर पागल हो गया।’

खण्ड-2

नया ठिकाना

चार वर्ष बाद।

शीत की एक सुबह। मरणासन्न नदी में जो थोड़ा-बहुत जल बचा था, वह भी 'अब गया, तब गया' की हालत में था। रात के ज्वार ने नदी में जो जल भरा था, सुबह के भाटे ने उसे फिर से सोख लिया। धनुष से निकले तीर की तरह जलधारा भागी चली जा रही थी। नदी कभी भी सूखी ठठरियों में बदल सकती थी। उधर दोनों बूढ़ों की परेशानी की कोई सीमा नहीं थी। डेंगी में बाँस का मचान बिछाते-बिछाते उनमें से एक भरे कण्ठ से बोला, 'सुना गोरा!'

गोरा के हाथ की मोटी-मोटी अँगुलियाँ ठण्ड में अकड़ गई थीं। पास ही ढेर सी उलझी हुई रस्सियाँ पड़ी थीं। उनकी गाँठ खोलना उसकी अँगुलियों की सामर्थ्य के परे था। लेकिन खोलनी तो थी ही। बार-बार कोशिश के बावजूद जब गाँठें टस से मस नहीं हुईं तो उसके चेहरे पर निराशा फ़ैल गई। अभी धूप निकलने में काफ़ी देर थी। मालसा⁵⁴ की आग पर हाथों को सेंकने का मन कर रहा था पर वह यहाँ कहाँ?

'गौरा! तू एक बार वरुण के पेड़ के नीचे जाकर आवाज लगा तो।'

नदी सूखने के पहले नाव न खोल पाए तो कीचड़ में ठेलते हुए उसे किनारे तक ले जाना मुश्किल हो जाएगा। तब कमर में रस्सी बाँधकर अथवा कन्धे से धकेलकर उसे आगे बढ़ाने में फ़जीती होगी।

घाट पर एक और डेंगी खुल रही थी। उससे किसी ने पुकारा था, 'ओ नित्यानन्द दादा, ओ गौरांग दादा!' लेकिन ठण्ड से बचने के लिए दोनों बूढ़ों ने सिर और कान पर चिथड़ा धोतियाँ लपेट रखी थीं, वे कुछ नहीं सुन पाए। नाव के समीप आने पर ही उनकी नजर पुकारने वाले पर पड़ी। पूछने पर पता चला कि उनकी नाव में भी मालसा

54. मिट्टी की एक मोटी हँडिया, इसमें उपलों की आग रखी जाती है।

नहीं थी, हताश गौरांग मुँह बिचकाते हुए दाँतों से डोरी की गाँठ खोलने में जुट गया। पर जितना वह उन्हें खोलता, गाँठें उससे अधिक उलझती जातीं। मचान बिछाने के बाद नित्यानन्द ने डोरी की गाँठ चप्पू में घुसाई और बोला, छिनिवास (श्रीनिवास), व्यापार के लिए चलोगे?

‘जरूर, क्यों नहीं।’ श्रीनिवास ने उत्तर दिया था।

‘नहर में मछलियाँ दीख रही हैं। बिना गए कैसे गुजारा होगा? तुम लोग नहीं जाओगे क्या!’

जाएँगे, लेकिन आज नहीं, कल। आज राजा की बेटी को लेकर गोकब्रघाट जाना है। डोरी खोलने और बाँस बाँधने का काम खत्म कर गौरांग ने काँपते हुए घर की ओर कदम बढ़ाए। उसके चेहरे पर इस समय राग-रोष स्पष्ट झलक रहा था, कण्ठ अवरुद्ध हो गया था। पर वह बड़बड़ाए जा रहा था, राजा की बेटी....राजा की क्या। लेकिन चौखट पर पाँव रखते ही उसका सारा गुस्सा उड़ गया था। राजा की बेटी पाँव पसारे बैठी रो रही थी।

बढ़े की आँखें यह देखकर छलछला आईं। इस दुखियारी के दुःखमोचन और फटते हृदय को जोड़ पाने में दोनों भाइयों का स्नेह भर काफ़ी नहीं था। घर के एक कोने में बैठा उसका बच्चा गत्ते के बक्से में परियों की कहानियों के किसी राजकुमार को सजा रहा था। तस्वीरों के कुछ टुकड़े, माचिस के खाली बक्से, जाल बुनने की टूटी चीजें, थोड़ा-बहुत सूत, एक फटी-पुरानी ‘भक्ति-तत्त्वसार’ किताब और छोटी-सी पेंसिल- यही थी उस बच्चे की दुनिया। जिसकी साज-संभाल के बाद उसने माँ का हाथ पकड़कर अपनी ओर खींचा। दुबले-पतले छुटंकी-से बेटे की इच्छा के सामने युवती माँ ने हथियार डाल दिए और आँखें पोंछते हुए उठ खड़ी हुई। अब उन्हें चल देना था। तभी रूँआसे गौरांग ने पूछा, ‘कुछ बाकी तो नहीं रह गया।’

‘बस एक काम और’ कहती हुई वह तुलसी-चौरे को प्रणाम करने चली गई।

धारा के खिंचाव से नाव ठीक ही चली। ग्रामीण नदी, जिसे नाला भी कह सकते हैं, उसके दोनों किनारे बड़े ही खूबसूरत और चित्रोपम थे। धूप निकल आई थी। दोनों किनारों पर एक के बाद एक खुले मैदान थे और उसके बाद गाँव। नाव उन्हें छोड़ती हुई आगे बढ़ रही थी। अनन्त माँ की गोद से सटकर बैठा था। वह पहली बार नाव में चढ़ा था। आनन्द और विस्मय से उसकी आँखें फटी पड़ रही थीं। नदी के दोनों किनारों के बीच अधिक दूरी नहीं थी। यदि उनके किनारे गाँव बसे होते तो कहा जा सकता था कि दोनों गाँव भी काफ़ी नजदीक थे। नौका-सवारों को कभी गाँव दिखाई पड़ रहे थे तो कभी मैदान। तम्बाकू पीते, हँसते-बोलते हुए लोग खेतों में अपने काम करने में मशगूल थे।

हल में जुते दो बैल एक ओर खड़े अपने मालिकों के निर्देश की प्रतीक्षा में उनकी ओर ताक रहे थे।

तभी भाटे के खिंचाव के कारण नाव अचानक एक जगह रुक गई। जल के अभाव में यहाँ धारा का वेग बिल्कुल शिथिल पड़ गया था। पीछे छूट आई नदी के मरने का सिलसिला शुरू हो चुका था। जैसे किसी रोगी की मृत्यु पांव से शुरू होकर जब सिर तक पहुँचती है तब उसे मृत घोषित कर दिया जाता है। इस अभागे इलाके की नदी की वही दशा है। स्वभावतः सूखती नदी में नाव की गति भी जहाँ-तहाँ अवरुद्ध हो जा रही थी।

निराश होकर गौरांग ने डाँड़ समेट लिया। इसके बाद उसे जो करना था वह जाड़े के दिनों में बड़ा ही कष्टदायी था।

अनन्त की माँ ने मालसा से जलती हुई टिकिया निकालकर चटपट चिलम में तम्बाकू सजा दी और उसे गौरांग की ओर बढ़ाया। हुक्का हाथ में लेकर गौरांग ने दूर तक नजरें दौड़ाई। उसे अंदाजा लग गया था कि अब तितास पहुँचने में ज्यादा देर नहीं थी। उसने ममत्व से अनन्त की ओर देखा। बड़ी नदी देखने की कितनी लालसा थी उसे। बड़ी नदी की कथा, उसमें जाल फ्रेंक मछलियाँ फेंसाने की कथा, लहरों पर नाव के तैरते रहने की कथा, सुनते-सुनते उसकी दोनों निश्छल आँखें चमकने लगती थीं। बड़ा होकर यह लड़का जरूर एक नामी मछेरा बनेगा। तब क्या वह गौरांग और नित्यानन्द की तरह ऐसी मरियल नदी के घुटनों तक जल में टेंगरापूटी (बहुत छोटी मछलियाँ) पकड़ने के लिए जाल⁵⁵ फेंका करेगा। तब तो वह तितास के अगाध जल में भेसाल जाल, भैरव जाल और छान्दी जाल फेंका करेगा। शायद वह इससे भी आगे बढ़कर मेघना में उतरे और जगतजाल ही फेंके उस समय क्या भूलकर भी उसे हम बूढ़ों की याद आएगी। नदी में फेंकी मिली उसकी माँ तब तक शायद नदी के सबसे बड़े मछेरे की माँ कहलाने का गौरव पा चुकी हो। वही क्या तब अनन्त को डाकुओं द्वारा अपने अपहरण की कथा सुनाएगी और यह याद दिलाएगी कि दुर्दिन की एक रात जब वह बड़ी नदी में मरणासन्न पड़ी थी, उसे इन्हीं बूढ़ों ने जिन्दगी दी थी। तब अनन्त उसके पेट में था। डूबते-उतराते वह नदी-किनारे की रेत पर कैसे पहुँची थी, उसे याद नहीं था। बस इतना ही याद था कि अगर ये बूढ़े न होते तो आज न वह होती, न अनन्त। कहाँ भवानीपुर गाँव और कहाँ ये अनजानी जगह। क्या वह अनन्त से कभी कहेगी कि, देख बेटा अनन्त ! जैसे बिना घाट के घाट हो सकते हैं और बिना राहों के राह, वैसे ही बिना

55. बड़ी मछलियों को पकड़ने हेतु बुने जाल

रिश्ते के रिश्तेदारियाँ भी हो सकती हैं। ये दो बूढ़े मेरे कोई नहीं, फिर भी सब-कुछ हैं। बाप भी हैं भाई भी। तुम इन्हें कभी मत भुलाना।

धूप खिलने से ठण्ड खत्म हो गई। नित्यानन्द अब तरोताजा महसूस कर रहा था। वह आवाज में पुलक भरकर बोला, 'ले बेटा अनन्त, बड़ी नदी आ गई। तू पागल था न बड़ी नदी देखने को।'

अनन्त अभी बहुत छोटा था। उसके लिए दूर से बड़ी नदी देख पाना सम्भव नहीं था। बूढ़े ने कड़कड़ाती ठण्ड से बचने के लिए ढेर सारे कपड़े पहन, ओढ़कर रखे थे। उसने किसी तरह हिलते-डुलते अनन्त को गोद में उठाया और उसे बड़ी नदी दिखाई। अब नाव किनारे पर आ पहुँची थी। गौरांग ने कमर में रस्सी बाँधी और पानी में उतर गया। उसे नाव को आगे खींचना था और नित्यानन्द को पीछे से धक्का देना था। नाव का भार कम करने की गरज से अनन्त को लेकर उसकी माँ किनारे पर उतर गई थी। उन्होंने नाव का मुँह दूसरी ओर मोड़ दिया था और उसे बड़ी नदी में उतारने की तैयारी में जुट गए थे।

लो, बड़ी नदी भी आ गई।

अनन्त माँ की गोद से उतर पड़ा था। जैसे कोई छुटका-सा चूहा धान के खेतों से चक्कर लगाता हुआ बाहर निकला हो और परीकथाओं के लोक की किसी नदी के किनारे खड़ा उसके रूपहले बहाव को देख रहा हो। वह हतप्रभ था। उसके आगे उछलती उफ़नती चाँदी-सी नदी, जो नदी भर नहीं, हजारों साल पहले की वह अनसुनी कहानी थी, जिसे भले ही दो किनारों ने बाँध रखा था लेकिन वह अपने रास्ते खुद तलाशती चल रही थी।

अनन्त के मुँह से बोल नहीं फूट रहे थे। वह चुपचाप अपनी माँ की क्रिया-प्रतिक्रियाओं पर नजर रखे हुए था। देखा-देखी उसने भी जल को नमस्कार किया फिर अपने हाथ-पाँव, मुँह धोए और नाव में आकर बैठ गया।

माँ ने हुक्का सुलगाया और बुजुर्ग नित्यानन्द की ओर बढ़ा दिया। वह प्रायः नित्यानन्द से नजर नहीं मिला पाती थी क्योंकि उसकी आंखों में तुरन्त आँसू आ जाते थे। दो असहाय बुजुर्ग, दोनों की घरवालियाँ जवानी में ही उन्हें छोड़कर सिधार गई थीं।

अनन्त ने नाव से एक बार फिर स्फटिक स्वच्छ जल की ओर झाँका। जल में उसके छोटे से चेहरे की छाया दिख रही थी। उसकी नजर सहज ही पारदर्शी जल को भेदकर नदी के तल तक पहुँच रही थी, जहाँ शुभ्र बालुका राशि बिछी दिखाई दे रही थी। दो-एक घोंघे धीरे-धीरे सरक रहे थे और बालू पर अपने चिह्न छोड़ते जा रहे थे। छोटी-छोटी बेलें माछ (चमकीली गोल मछलियाँ) उस बालू पर चुप, निश्चल, चित्त

लेटी हुई थीं। लगता था सहज ही उन्हें हाथ बढ़ाकर पकड़ा जा सकता था। घोंघों के सरकने के निशान भी धीरे-धीरे गहरे जल की ओर जाकर मिटते दिखाई दे रहे थे। जल के नीचे की बलुई मिट्टी की ढलान यहाँ से साफ़ दिख रही थी। उस पार शायद यह इतनी ढालू न हो। शायद उस तरफ़ जल ज्यादा गहरा हो। घोंघे इसी कारण उधर बढ़े हैं और साथ ही लेते गए हैं अपने पाँवों के निशान भी। उस पार का रहस्य क्या है, सूखी जमीन मिलेगी भी या नहीं? अभी तो जमीन छूने के लिए डाँड़ को बहुत गहराई में उतारना पड़ रहा है। न जाने उस पार क्या हो? हजार कोशिशों के बावजूद अनन्त शायद कभी वहाँ न पहुँच पाए। उसका बाल-मन दूर से पास लौट आया था। बेले माछ के शिशु भी वहीं चुपचाप सोए थे। हाथ से जल को छेड़ते ही मछलियाँ गहरे जल में उतर गईं और बलुई मिट्टी में अपने को फिर से छिपा लिया। अब जल के भीतर छिपी अन्य वस्तुओं की तरह वह मछलियों को भी नहीं देख पा रहा था।

कुछ देर तक वह घोंघों के मिटते हुए पैरों के निशान देखने में मशगूल रहा। जब माँ उसे गोद में बिठाकर उसका सिर सहलाने लगी तब कहीं उसका ध्यान टूटा।

नित्यानन्द ने माँ-बेटे की ओर स्नेहिल नजर से देखते हुए कहा, 'तितास का पानी कितना साफ़ है। ऐसे पानी में मछलियाँ पकड़ में नहीं आती। उन्हें मटमैले जल में ही पकड़ा जा सकता है। संकट-काल में हम क्या खाकर बचेंगे, मुझे तो यही चिन्ता खाए जा रही है।'

मछलियों के प्रजनन का समय करीब था। गाँव के युवा मछेरों ने उन्हें पकड़ने के लिए मजबूत जाल बुनने की तैयारियाँ शुरू कर दी थीं। जाल के लिए पाट के मोटे सूत (धागे) की जरूरत पड़ती है। एक बार उस गाँव में ठिकाना मिल जाए तो लगे हाथ वह भी महीन और मोटे दोनों तरह के सूत कातने का काम पकड़ लेगी, फिर उन्हें बेच देगी और इस तरह माँ-बेटे के दुर्दिन कट जाएँगे।

मेरी चिन्ता छोड़ो, मेरे दिन-रात तो खाए बिना खाए कट ही जाएँगे, लेकिन तुम लोगों से न जाने अब कब मिलना होगा। शायद कभी नहीं।

वे बूढ़े भी इसी नदी के किनारे बस गए होते। लेकिन जन्मभूमि का मोह छोड़ पाना क्या सहज होता है। उम्र कट गई, सब-कुछ छूट गया लेकिन जन्मभूमि छोड़ने की बात उनके कभी मन में नहीं आई।

तितास की जलधारा मानो अनन्त की माँ की आँखों से आँसू बन 'हू-हू' कर बरसती जा रही थी। नाव के हाल में रस्सी पहना नित्यानन्द ने किसी नौजवान की तरह दो-तीन झटके दिए और कहा, 'अब चलें!'

'गौरांग सुन्दर!'

‘क्या है दादा !’

‘ठंड भाग गई है, मेरी गाँती खोल दे।’

गौरांग सुन्दर नाव के एक छोर को धो रहा था। दादा के निर्देश पर उठा और पीठ पर बंधी बड़ी-सी गाँठ खोल दी। साथ ही उसने कई कपड़ों की कई तहों के भारी बोझ से दादा को मुक्त कर दिया। गाँती इन लोगों की जाड़े की पोशाक थी।

गौरांग सुन्दर ने गंगा का ‘नाम स्मरण’ किया और नाव को धकेलते हुए पानी में उतार दिया। माँ ने अनन्त को अपनी ओर खींच लिया था। वह उसकी बाँहों में चुपचाप दुबका था पर उसका मन माँ की ओर नहीं उन बुजुर्गों की ओर था। वह नाव में है, यह भी भूल गया था। उसकी आँखों के सामने केवल बड़ी नदी थी। मानो वह नदी उसकी पूरी सत्ता, समस्त अनुभूतियों को सूत्रवत खींचती जा रही थी। जैसे कि उसकी जीवन-यात्रा भी यहीं से शुरू हुई हो।

दोपहर ढल गई थी। कुछ देर बाद ही शाम होने वाली थी। अनन्त की माँ ने उस गाँव को कभी अपनी आँखों से नहीं देखा था। बस इतना-सा जानती थी कि वह गाँव कहीं तितास के किनारे बसा था। जहाँ से नदी सीधे उत्तर की ओर बढ़ती हुई, गाँव को छूते हुए पश्चिम की ओर मुड़ गई थी। आस-पास से गुजरते गाँवों को नाव से देखते हुए वह चौंक पड़ती थी। विह्वल होकर सोचती थी शायद यही है वह गाँव। उस गाँव की याद उसको पहली बार नहीं खींच रही थी बल्कि तब से ही वह उसे आकर्षित करती रही थी, जब अनन्त उसके पेट में था। विस्मृति के बीच, विपत्ति के झंझा-झंकारों के बीच उस गाँव के नाम को उसने अपने मन में जिलाए रखा था। उसे और कुछ याद न था सिवाय इसके कि वह उसी गाँव से प्रवास पर गया था। अब तो उसका नाम भी याद नहीं। देखने में कैसा था, याद नहीं। देखा ही कितनी बार था। उसे पहले दिन की भूली-बिसरी मुलाकात याद आ रही थी। उसका मन था कि उसे टकटकी लगाकर देखती। लेकिन ऐसा कर नहीं पाई थी। उस दिन इतने लोगों के बीच गाना-बजाना, हो-हल्ला, मारपीट आदि के दौरान वह तो बेहोश हो गई थी। अगर उसने उसे पकड़ न लिया होता तो वह जमीन पर जोर से गिरती और हमले के कारण हुई भगदड़ में कुचलकर मर गई होती। उसे वह दिन भी याद आया, जब वह पहली बार एकान्तिक रूप से मिला था। उसे बड़ा डर लग रहा था। धड़कते दिल से वह उसकी बाट जोह रही थी। वह आया और उसने अपनी बाँहों में लेकर उसे हर तरह के भय से मुक्त कर सहज बना दिया था। हालाँकि उसके जीवन में यह खास घटना कठपुतलियों के किसी खेल जैसी बनकर रह गई थी। एकाध बार और देखा था उसे, लेकिन सबके सामने नजरें उठा कर देखने में उसे बहुत शर्म आती थी। वह जी-भरकर कभी उसे देख ही नहीं पाई। इसीलिए

उसका चेहरा याद नहीं। उसे यह भी स्मरण आया कि उसे किस तरह नाव के नीचे बिछौने पर सुलाकर छिपा दिया गया था। खाना-पीना सब उसका दोस्त दिया करता था। वह दूर खड़ा देखता रहता था। उसने उसे अपने दोस्त को कहते सुना था, 'मैं तो भूल ही गया वह देखने में कैसी है?' मुझे देखने में संकोच होता था, शर्म आती थी, लेकिन उसके लिए तो ऐसा कुछ नहीं था। पर उसका मन बहुत साफ़ था। आज अगर वह मुझे देखे तो क्या पहचान पाएगा! मेरे लिए तो पहचानना और न पहचानना, दोनों एक से हैं। पहचान जाए तो कहेगा, जिसे डाकू ने छू दिया, उससे मुझे क्या लेना-देना! और न पहचाने तो कहेगा, बेचारी अनाथ है, इसलिए दया करके इससे संबंध जोड़ लेता हूँ। जिन बूढ़ों ने इसे बचाया था, उनका कहना था कि सिर पर पति की छाया नहीं, हाथ में कंगन, माँग में सिन्दूर और इतनी अच्छी पोशाक शोभा नहीं दे रहे थे, इसलिए उन्होंने उसे जबरदस्ती विधवा का लिबास पहना दिया। उसके ऐतराज करने पर समझा दिया कि जब डाकुओं ने हमला किया तो निस्संदेह उसके पति को मारकर फेंक दिया होगा क्योंकि मुहाने की धारा के चक्रवात में जब वह पड़ी मिली थी, तब आस-पास कोई नाव नहीं दिख रही थी। जरूर वह डूब गई होगी। उसके अतीत के बारे में कुछ भी जानने की जगह उन दोनों बुजुर्गों के मन में पिता की तरह केवल उसकी सुरक्षा और सम्मान की चिन्ता थी, इसलिए पड़ोसियों से भी उन्होंने उसका यही परिचय दिया था कि इसके पति को डकैतों ने मारकर फेंक दिया। वे तो इसे भी मार देते लेकिन यह पानी में कूद पड़ी, इसलिए बच गई। उसने तभी से विधवा का वेश धारण कर लिया था। पर यह तो बाहर की बात थी। मन में उसे पूरा विश्वास था कि वह जिन्दा होगा और अपने गाँव पहुँच गया होगा, लेकिन वह न तो उसका नाम जानती थी, न उसके दोस्त का।

धूप धीरे-धीरे चढ़ रही थी, जिससे नाव के गर्म होने के साथ-साथ दोनों बुजुर्गों की सख्त त्वचा भी ततिया रही थी। यह देख अनन्त की माँ का स्नेह उफ़ना पड़ रहा था। वह अपनी सफ़ेद साड़ी के आँचल से सबके लिए छाया कर देना चाहती थी। पर यह संभव नहीं था, बेटा की उम्र की लड़की के आँचल की छाया में वे बुजुर्ग भला कैसे आ बैठते। माँ ने आँचल से अनन्त को धूप से जरूर बचा लिया था। चढ़ती हुई धूप उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकी। मातृ-स्नेह की मीठी छत्र-छाया में आते ही न जाने कब वह नींद के आगोश में चला गया, लेकिन अभी तो उसे बहुत कुछ देखना था, पर नींद पर वश न था। अब शायद वह मनचाही वस्तुओं को सपने में देखे।

घाट पर पहुँच कर नाव में मानो एक संगीत-सा छिड़ गया था। चलती हुई नाव को गौरांग ने डाँड़ एक ओर रखकर रोक दिया। पर वह धीरे-धीरे रुकने के बजाय

जमीन से टिकते ही झटके से रुक गई। जिससे स्वप्न-लोक में विचरण करती अनन्त की माँ की तन्द्रा भी टूट गई थी। वह हड़बड़ाकर उठ बैठी, कपड़े-लत्ते संभाले और अनन्त को आवाज लगाई। माँ की आवाज सुन अनन्त की नींद भी टूट गई थी। आँखें मलते हुए उसने घाट की ओर नजर दौड़ाई। चलते-फिरते लोगों से होती हुई उसकी नजर दूर पेड़ों की छाँव में बसे गाँव पर जा टिकी। उसकी छोटी-छोटी आँखें जिधर देखतीं, एक के बाद एक उसे घाट पर बंधी नावें ही दीख पड़ती थीं। एक आकार और एक गठन वाली सभी नावें क्रम से गड़ी बाँस की खूंटियों से बंधी हुई थीं। सबका पिछला हिस्सा पाल से ढँका था और दोनों किनारे खुले हुए थे।

घाट पर देर से नहाने आई औरतों की नजरें वहाँ बंधी एक नई नाव और उसमें बैठे आगन्तुकों को कौतूहल से देख रही थीं। अनन्त की माँ इनमें से किसी को नहीं पहचानती थी, न ही किसी को पहले कभी देखा था। लेकिन अब ये ही उसकी पड़ोसनें होंगी। इन्हीं के घरों के आस-पास उसकी भी एक झोंपड़ी पड़ जाएगी। अब यही होगा उसका 'नया ठिकाना'। अपने सुख-दुःख के दिन अब उसे इन्हीं के साथ काटने होंगे। किनारे के इस गाँव में बसने के बाद वह भी इन्हीं की तरह अपने रोजमर्रा के कामों में डूब जाएगी। उसे यह सब सोचकर परम शांति और आनन्द महसूस हो रहा था। उसे लगा कि ये उसकी कितनी अपनी हैं। तितास की छोटी-छोटी चंचल लहरें किनारे को ऐसे छू रही थीं, मानो वहाँ अपना माथा टेकने आई हों। अनन्त की माँ के मन की लहरें भी घाट पर खड़ी औरतों के सामने नतमस्तक होने को बेताब हो उठीं।

तभी उसकी नजर दो बूढ़े-बूढ़ियों पर पड़ी जो एक पागल युवक को घसीटते हुए घाट की ओर बढ़ रहे थे। किसी समय वह सुन्दर रहा होगा लेकिन अब उसकी हालत काफ़ी बदहाल लग रही थी। शरीर के नाम पर बस हड्डियों का ढाँचा-भर था। त्वचा ढीली होकर लटकने लगी थी और उस पर सिलवटें साफ़ दिख रही थीं। वह लगातार बड़बड़ाए, अंट-शंट बके जा रहा था। बूढ़े-बूढ़िया से अपना हाथ छुड़ाने की कोशिश में एक बार वह चक्कर खाकर गिर भी पड़ा। नाराज होकर बूढ़े ने अपने कंकाल शरीर की सारी ताकत बटोरी और उसे लात-घूँसों से पीटने लगा। मार खाकर पागल की घिग्घी बंध गई थी पर वह किसी भी सूरत में पानी में उतरने को राजी नहीं था। इधर बूढ़े और बुढ़िया ने आज उसे नहलाने की जिद ठान ली थी। हठात उस पागल की देह में न जाने कहाँ से हाथी-जैसी ताकत आ गई। उसने झटके से अपना हाथ छुड़ाकर भागने की कोशिश की ही थी कि बूढ़े ने तुरन्त पास ही पड़ी एक बाँस की कंची (पतली टहनी) उठाई और उसकी पीठ पर सटाक से दे मारी। पागल बुक्का फाड़कर रोने लगा था। उसे देख स्वयं बूढ़े को भी रुलाई आ गई और वह एक लम्बी साँस भरते हुए

अपने भाग्य को कोसने लगा, 'हाय रे विधाता, हाय रे ऊपर वाले ! तूने मेरे ही साथ ऐसा क्यों किया ? किस जन्म के पाप की सजा बख्शी है भगवान ! सोचा तो ये था कि जवान बेटे की कमाई खाऊंगा, धूमधाम से उसका ब्याह रचाऊंगा, बहू लाऊंगा, गोद में पोते-पोतियाँ खिलाऊंगा। पर हाय रे भाग्य !'

बूढ़े ने बेटे को गले से लगा लिया और फूट-फूटकर रोने लगा। पागल बेटा भी बाप के गले लगकर खूब रोया और रोते-रोते ही पानी में नहाने के लिए उतर गया। हाँ, बुढ़िया रोती नहीं दिखाई दी थी। वह शायद उस पागल की माँ थी। पर थी पूरी पत्थर-दिल। या तो रो-रोकर उसके सारे आँसू सूख चुके थे या जमकर बर्फ बन गए थे। इस दौरान वह अपने काम में लगी रही। उसने अंगोछा पानी में डुबाकर अपने दोनों हाथों से उस पागल की देह रगड़-रगड़कर साफ़ की। घाट की औरतें बुत बनीं यह सारा दृश्य देख रही थीं। अनन्त की माँ को वे बिल्कुल अपनी-सी लगीं। उसके भी मन में आया कि इन औरतों के पास जाकर उस पागल की ओर उसी तरह देखे। कुछ देर के लिए वह अपने नए ठिकाने पर जाने की बात भूल डबडबाई आँखों से उस पागल को निहारने लगी। न जाने क्यों वह उसके गले लगकर जोर-जोर से रोना चाहती थी लेकिन अपने मन पर काबू रख उसने जल्दी से अनन्त को अपनी ओर खींचकर छाती से लगा लिया था।

एक नए परिवार ने इस गाँव में अपना 'नया ठिकाना' बनाया है, यह बात जिसने भी सुनी, खुश हुआ। गाँव के सबसे धनी मालो परिवार की मुखिया माँ ने अपने बेटों से कहकर उन्हें सस्ते दामों पर एक बंजर जमीन का टुकड़ा भी दिला दिया। गाँव के बच्चों ने मिल-जुलकर उस जमीन पर उगे झाड़-झंखाड़ आदि को साफ़ किया और पाँच लोगों की मदद से जल्दी ही वहाँ एक झोंपड़ा खड़ा कर दिया गया।

कुछ दिन बाद अनन्त और उसकी माँ को उनके नए ठिकाने पर छोड़कर दोनों बुजुर्गों ने विदा ली। अनन्त की माँ उन्हें घाट तक छोड़ने आई। उसने किसी तरह अपने को ज़ब्त किया हुआ था। वहाँ काम करती औरतें भी अपने हाथ रोककर इस विदाई को देख रही थीं। धीरे-धीरे नाव चल पड़ी थी। वह लहरों पर तैरती हुई बीच धारा में पहुँच गई थी। पर इतनी-सी दूरी तय करने में ही दोनों बुजुर्ग बुरी तरह थक गए थे। वे एक हाथ से डौंड चलाते और दूसरे हाथ से माथे पर चुहचुहाते पसीने को पोंछने का उपक्रम करते दीख रहे थे। अनन्त की माँ को यह समझते देर नहीं लगी कि पसीना पोंछने के बहाने वे अपनी बार-बार छलक आती आँखें पोंछने की कोशिश कर रहे थे।

धीरे-धीरे नाव काफ़ी दूर निकल गई थी। अब घाट से वह एक काले धब्वे जैसी नजर आ रही थी और दोनों बुजुर्ग उन दो बच्चों जैसे, जो बूढ़ों की पोशाक पहनकर

नौटंकी करने नाव लेकर चन्द्रलोक की यात्रा पर निकले थे। मानो इस दुनिया से उनका कोई लेना-देना ही न था। पता नहीं वे इस दुनिया में क्यों आए थे, पर अब और नहीं रुकेंगे। लहरों पर चढ़ती-उतरती उनकी नाव छोटी और छोटी होती जा रही थी। जल्दी ही वह आँखों से ओझल हो गई।

उनके जाते ही अनन्त की माँ की आँखों में अब तक रुका आँसुओं का बाँध फूट पड़ा। वह धरती पर लोट-लोट कर रोना चाहती थी कि तभी किसी ने पीछे से आकर उसका हाथ थाम लिया।

उसने छलकती आँखों से उसकी ओर देखा। सामने खड़ी औरत उसी की हमउम्र लग रही थी। वह भी विधवा वेश में थी। टोले की औरतों के प्रश्नों का ओर-छोर नहीं था। वे पूछे जा रही थीं- 'वह कौन है? किस देश की बहू है? इस बच्चे का बाप कब मरा? जब यह पेट में था तब! या जब गोद में था अथवा घुटनों के बल चलने लगा था, तब?'

कालो की माँ बड़ी घमण्डी थी। उसका पति अपने पीछे अच्छी-खासी दौलत छोड़ मरा था। ऊपर से बेटे भी कमाऊ थे। टोले में उसका बड़ा मान था। उसके घर साल भर में कोई पाँच से छह टन सूत काता जाता था। जिससे बड़े-बड़े और मजबूत जाल बनाए जाते थे। उनमें एक से एक बड़ी मछलियाँ आसानी से फँस जाती थीं। जाहिर है, उसके घर में पैसों की आमद बहुत थी। दम्भ होना स्वाभाविक ही था।

कालो की माँ के मन में भी कुछ ऐसे ही सवाल कुलबुला रहे थे। सुबह वह उसे देखने आई थी। शाम को भी आई। उसे समझ नहीं आ रहा था कि बातों की शुरुआत कहाँ से करे! आखिर घुमा-फिराकर उसने पूछ ही डाला, 'क्यों री बेटो, क्या तेरी माँ भी मेरी ही तरह अभागन है?'

'हाँ माँ....तुम्हारे जैसी ही!'

'ज़िन्दा है?'

'पता नहीं माँ!'

'हाय रे, फूटे भाग!'

झोंपड़ा उठाने में ही अनन्त की माँ के सारे पैसे निकल गए थे। आगे के दिन कैसे कटेंगे..कालो की माँ के जाने के बाद वह इसी उधेड़बुन में डूबी थी, लेकिन गाँव की औरतों ने उसे कुछ सोचने का ज्यादा मौका ही नहीं दिया। बुजुर्ग औरतों का एक झुण्ड उसके झोंपड़े की ओर बढ़ा आ रहा था। टोले के लोग कालोबरन के घर को 'बड़ोबाड़ी' (बड़ी हवेली) कहा करते थे। अनन्त की माँ के झोंपड़े और 'बड़ोबाड़ी' के बीच एक बाँस का बेड़ा-भर था। अनन्त की माँ उसी पर सूखने के लिए कपड़े

फैला रही थी और सोच रही थी कि, क्यों न सीला बिछौना भी सूखने को डाल दिया जाए, पर तब तक उन औरतों का झुण्ड उसके नजदीक पहुँच चुका था। बिना जान-पहचान औरतें बेहिचक वहीं जमीन पर बैठ गई थीं। उनमें से एक बोलने लगी, 'क्यों री, पान तो होगा घर में!' दूसरी ने कहा, 'चल तम्बाकू ला, हुक्का-चिलम तो होंगे ही...तम्बाकू नहीं है क्या?'

अनन्त की माँ शर्म से जमीन में गड़ गई थी। उसके घर में हुक्का, तम्बाकू की कौन कहे, कुछ भी नहीं था। तभी एक बुजुर्ग औरत ने अपनी कमर में खुँसा एक सुंदर-सा बटुआ निकाला और तुरन्त पान के बीड़े सजाने लगी। अनन्त की माँ को भी एक बीड़ा लेना पड़ा। पान चबा-चबाकर उस बुढ़िया के दाँत एकदम काले हो गए थे। उसने दो-तीन बीड़े एक साथ मुँह के हवाले किए और फिर तर्जनी से जीभ पर ढेर सारा चूना लगाया। पान चबाते हुए वह बीच-बीच में थोड़ा-सा चूना अपने दाँतों पर पोत लेती। उसकी जीभ और होंठ टुक-टुक लाल दिख रहे थे।

'ऐसे मुँह फाड़े क्या देख रही हो? मैं 'बटपाता' कुछ ज्यादा खाती हूँ।' अनन्त की माँ को अपनी ओर ताकते देख उसके मुँह से निकला।

'अगर तूने मेरी सास को देखा होता तो पता चलता 'बटपाता' खाना किसे कहते हैं!'

खुद को संभालते हुए अनन्त की माँ के मुँह से निकला, 'बटपाता खाती थी माने!'

बुढ़िया ने अपनी एक साथिन की ओर इशारा किया तो उसने बटपाता खाने का रहस्य खोला। 'अरे, इसके ससुर का नाम 'पानडव' है। तो यह पान का नाम कैसे ले सकती है भला! इसलिए पानपत्ते को बटपाता कहती है।'

'और तम्बाकू तो मेरा ससुर पीता था! माथे पर एक खाँची घुँघराले बाल और जमदूत-सी आँखें। हम तो देखते ही थर-थर काँपने लगते थे। हरदम सारिन्दा⁵⁶ बजाता और तम्बाकू पीता रहता।'

एक किस्सा और सुनाती हूँ, मेरी ननद की सास का। वह तो अपने दामाद से भी पहेलियाँ बुझा लिया करती थी। उसकी ओर पान का बीड़ा बढ़ाते हुए कहती, पहले एक पहेली बूझो-

'पान खाओ रसिक जवाँई
बात करो हमसे

56. सारंगी जैसा एक प्रकार का लोकवाद्य।

पान का जनम हुआ
किस अवतार से
जो न बता पाओ
पान की जन्म-कथा
बकरी बन खाओ
साउड़ा-गाछ का पत्ता।⁵⁷

अब किस दामाद की हिम्मत कि उसकी पहेली बूझ पाए और सास के सामने पान खा सके।

अनन्त की माँ को ये हंसी-ठिठोली रास नहीं आ रही थी। ये प्रौढ़ाएँ उसके मन की थाह नहीं ले पाईं। उसका मन समझने वाली तो कहीं दूर बैठी थी। बित्ते भर की लड़की। क्या वह उसे भी अपना नहीं बना पाएगी! आखिर कितनी दिमाग वाली है वह!

अनन्त चुप बैठा उनकी ओर ताक रहा था जैसे वे किसी परीलोक से उतरी हों और जिनके पास कहने को हजारों कथाएँ हों। उन कथाओं का एक बार सिलसिला शुरू हो जाए तो फिर खत्म होने का नाम नहीं लेता।

तभी एक ने गल्प का अपना पिटारा खोला। 'मेरा ससुर अनेक तरह के करतब करता था। तुमड़ी बजाता था। वह दरवाजे के दोनों ओर दो जमूरे (उस्ताद) खड़े कर देता। एक के हाथ में साँप थमा देता और दूसरे के हाथ में मोरा। पहले एक मन्त्र पढ़ते हुए साँप को छोड़ता, फिर दूसरा पढ़ते हुए मोर को। मोर साँप को मार डालता। फिर वह आग सुलगाने के लिए कहता। मन्त्र पढ़कर बादलों को बुलाता और बारिश करवाकर आग को बुझा डालता। एक बार कमरू कामख्या (कामरूप कामाख्या) से एक उस्ताद सँपेरिन⁵⁸ मेरे ससुर के साथ तुमड़ी खेलने आईं। खेल का पहला दौर गाँव के एक और उस्ताद के साथ शुरू हुआ। सँपेरिन ने सरसों के दानों पर मन्त्र पढ़कर उस्ताद की ओर फ्रेंका और उनकी जान अपनी मुट्ठी में बाँध ली। उसने सरसों के दानों को एक गाँठ में बाँधा और जैसे ही दूसरा मन्त्र पढ़ा, उस उस्ताद की नाक से गल-गल खून बहने लगा। क्योंकि उसे इस मन्त्र का तोड़ नहीं मालूम था। मेरा ससुर खड़ा देख रहा था। उसने क्रोधित हो एक धक्के में सँपेरिन को जमीन पर गिरा दिया और उसके

57. पान खाओ रसिक जमाई.कता कऊ ठारे/पाने जन्म अईलो कोन अवतारे/जोदि ना कईते पारे पाने जोन्म कथा छागल होईया खाओ साउड़ा-गाछेर पाता

58. बेदे-बेदिनी- बंगाल में बंजारों और सँपेरो की एक जाति

मन्त्र के प्रभाव को काटने का मन्त्र पढ़कर उस्ताद की जान बचा ली। यह देख वह गुस्से से फुँफकारने लगी। बोली, असल बाप के बेटे हो तो मेरे भीमरुल बाण से खुद को बचाकर दिखाओ। मेरे ससुर ने धूल-वृष्टि बाण चलाकर भीमरुल को निष्क्रिय कर दिया और पलटकर ऐसा मन्त्र पढ़ा कि सॅपेरिन की साड़ी उलटकर ऊपर की ओर उड़ने लगी। वह नग्न हो गई। अपने दोनों हाथों से साड़ी नीचे करने की उसकी सभी चेष्टाएँ विफल हो गई थीं। साड़ी फ़र-फ़र करती हुई ऊपर की ओर उड़ी जा रही थी। अन्त में उसने भागकर अपनी नाव में खुद को छिपाया और लाज बचाई।

बातों का सिलसिला बीच ही में रुक गया, कालो की माँ ने आकर महफ़िल भंग कर दी। जैसे सूरज के उगते ही अंधेरा कहीं सरक जाता है। कालो की माँ के आते ही उन सारी गपोड़ी महिलाओं ने यह कहते हुए वहाँ से सरकने में ही अपनी भलाई समझी कि दिन ढलने को है, अब चलते हैं।

कालो की माँ के पास भी समय नहीं था। उसकी तीनों बहुएँ रात-भर सूत कातती रहती थीं। अंतिम प्रहर में कुछ देर के लिए उनकी आँखें झपकती ही थीं कि कालोबरन के जाल फेंकने का समय हो जाता। सुबह-सुबह तीनों भाई जाल लेकर नदी में उतर पड़ते थे। बेचारी बहुएँ? पतियों के बगल से चुपचाप उठ वे उनके लिए तम्बाकू-टिकिया के डिब्बे, मालसा, जाल की पोटली तैयार कर उन्हें भेजने में लग जाती थीं। तब तक भोर का धुंधलका छँट चुका होता और पक्षी कलरव करने लगते थे। जब तक कालो की माँ जिन्दा है, तब तक तो उसकी बहुओं को मुँह-अंधेरे उठना ही होगा और दूसरे घरों की बहुओं के पहले ही नदी से नहाकर लौट आना होगा।

उसके बाद जैसे ही पूर्व के आकाश को अनुरजित करते हुए सूर्य उदित होता, घर के पास बने हुए तीन-चार टीलों पर जाल से घेरेबन्दी कर पहले दिन पकड़ी हुई मछलियाँ सूखने के लिए डाल दी जातीं। इस बीच कालो की माँ कच्ची धूप में बदन सेंकते-सेंकते तितास के किनारे घाट पर लगी हाट में जा खड़ी होती। रात में मछेरे जो मछलियाँ पकड़ते थे, उनसे भरी नावें बाजार के घाटों पर आ लगतीं और घाट पर सैकड़ों व्यापारी चढ़ते-उतरते दिखाई पड़ते। एक शोर-गुल का माहौल बन जाता था। इन्हीं सबके बीच कालोबरन का ध्यान खींचते हुए कोई कहता, 'उधर देखो, तुम्हारी माँ खड़ी है।' माँ के खड़े होने के राजसी ढंग पर सहज ही सबकी नजर पड़ जाया करती। कालोबरन का छोटा भाई दौड़ लगाकर मछली की एक बड़ी टोकरी माँ को थमा आता। उसके घर लौटते ही मछलियाँ काटने की धूम मच जाती। दोनों वक्त के लिए खाने भर की मछलियाँ रखकर शेष को कालो की माँ जाल के नीचे रख आया करती। ऐसे वक्त गाँव भर के कौए मालो टोले में आ जुटते थे। उनकी बेहयाई देखते ही बनती

थी। वे सबकी आँखों में धूल झोंककर बड़ी चालाकी से जाल के भीतर छिपाई मछलियों को खींच निकालते थे। लेकिन कालो की माँ भी कम होशियार नहीं थी। वह एक कंची⁵⁹ हाथ में लिए वहीं चौकी पर बैठी रहती। कौओं के ही कुछ पंख डोरी में बांध कर वह कंची के एक सिरे पर लटका देती थीं जिसे हिलता-डुलता देख कौए करीब नहीं आते। दूर से कांव-कांव करते रहते। घर में कई छोटे-छोटे पोते-पोतियों की कमी नहीं। वे भी टोकरियों में मूड़ी⁶⁰ लिए अपनी दादी की गोद में आ बैठते या उसके आस-पास चक्कर काटते रहते। जिन्होंने अब तक चलना नहीं सीखा था, किसी तरह खड़े-भर हो पाते थे, दादी एक हाथ से उन्हें चलना सिखाती और दूसरे हाथ से कंची घुमाती रहती। इस बीच वह छड़ा भी काटती (बाल-गीत गाना) रहती-

‘कौए का दादा मरा
सूप से ढँका गया
दूर हो रे कौए, दूर हो।’

कालो की माँ के लिए समय की बड़ी कीमत थी। उसके लिए अनन्त की माँ दुधारू गाय बन सकती थी। जो बेवजह समय बिताने के लिए उसके घर आते थे उन्हें वह घास नहीं डालती थी बल्कि उनके जाते ही उबल पड़ती, काम के न काज के, ढाई मन अनाज के..चले आते है मुँह उठाए..

अपने काम-काज के बीच घाट से एक कलसी पानी लाना होगा। इसके अलावा और क्या करे, इस पर बहुत सोचने के बावजूद अनन्त की माँ को कोई कूल-किनारा नहीं मिल पाया। पर उसे कुछ तो करना था। बहुत-कुछ करना था। कोई न कोई काम खोजना था। पर ऐसा कौन था जो उसे किसी रोजगार की दिशा दिखाता। ‘काम करो काम करो’ की रट लगाने वाली कालो की माँ केवल उकसाने वालों में थी, दिशा दिखाने वालों में नहीं। बल्कि काम का रास्ता दिखाया सुबल की घरवाली ने। कम उम्र में ही विधवा हो गई थी वह। घाट पर उस दिन वही तो मिली थी। उसी ने अनन्त की माँ का हाथ थामा था। उस लुअन ने उसे ऊष्मा दी थी। इधर कुछ दिनों से सुबला बऊ (सुबल की घरवाली) उससे मेल-जोल बढ़ाना चाह रही थी लेकिन अनन्त की माँ के उतरे और भावहीन चेहरे को देख उसे यह सब अर्थहीन सा लग रहा था। आस-पड़ोस में तो बातचीत के लिए केवल कालो की माँ ही थी पर उसे सुबला बऊ फूटी आँख नहीं पसन्द करती थी।

जैसे एक हिरणी कभी-कभार अपनी कस्तूरी-गन्ध को खुद महसूस कर लेती है,

59. बाँस की पतली संटी।

60. भुना चावल।

वैसे ही सुबला बऊ के आगमन को अनन्त की माँ ने पहचान लिया था। मछरे के घर की औरत के आस-पास यदि बुना-अधबुना सूत, एक अधूरा जाल, तकलियाँ और जाल बुनने की नाना सामग्रियाँ न हों तो उसमें और कायस्थनी (तथाकथित अभिजात्य स्त्री के लिए प्रयुक्त शब्द) में फ़र्क कहाँ रह गया।

सुबला बऊ की पारखी नजर ने यह भी देख लिया था कि अनन्त की माँ के घर के बर्तन भी कई-कई दिन नहीं मँजते। उसने मन ही मन तय कर लिया था कि दो दिन में इसकी सुस्ती दूर भगाकर रहेगी। अनन्त की माँ के घने, लम्बे बाल उसे बहुत आकर्षित करते थे। उसका मन करता कि उसका जूड़ा खोल बालों को सहला दे। चेहरे पर मलिनता की छाया के बावजूद उसे सुन्दर ही कहा जाएगा। उसकी टुड्डी पकड़कर हिलाने में कितना मजा आता। इन दो खूबसूरत आँखों ने 'शुभ-दृष्टि' के समय किसकी आँखों में झाँककर उसकी दृष्टि को पूर्णता दी होगी। न जाने कैसा रहा होगा वह। लेकिन अब तो वह दुनिया में नहीं है। मेरी ही तरह यह भी तो विधवा है।

'बबुआ का बाप 'सुरग' कब सिधारा दीदी!' एक दिन उसने पूछ ही लिया था।

'पता नहीं!'

'मैं पूछती हूँ मर चुका है ना वह!'

'पता नहीं!'

'तुम्हारा ब्याह किस गाँव में हुआ था?'

'पता नहीं!'

'मैं पूछती हूँ ब्याह हुआ भी था कि नहीं?'

'नहीं पता!'

सुबला बऊ की चिढ़ अब अपनी हद पार कर चुकी थी।

'हाय रे करमजली, मैं कहती हूँ ये तेरा बच्चा ब्याह के बाद ही तो पैदा हुआ होगा?'

कुछ पल मन ही मन सोचते हुए उसने फिर वही दुहराया- 'पता नहीं दीदी!'

'खाली पता नहीं, पता नहीं, पता नहीं! तुम्हें इसके अलावा भी कुछ पता है? या कि नाम न जाने मूड़ी हिलावै।'⁶¹ तुम्हारा यह बच्चा क्या आसमान से टपका है?'

अपमान से अनन्त की माँ का चेहरा तमतमा उठा था।

'तुम्हारा घर किसी सुदरानी (शूद्राणी) का घर है, या कि कोई मन्दिर। जहाँ न तो एक भी रत्ती सूत है, न उसे कातने की तकली। बनी बैठी हो पूरी ब्राह्मणी।'

61. कामड़ सिरे हाथ, के मने आइलो जगन्नाथ

आज दोपहर में सूत मिलने की बात है। पड़ोस की बड़ी ठकुराइन देंगी।
अच्छा..कालो की माँ..किस हिसाब से देगी ?
पता नहीं, उधार देगी।

सुबला बऊ हठात् गंभीर हो आई थी। 'फँसा लिया न उसने तुम्हें अपने जाल में। काम करोगी तुम और मजा मारेंगे राघव-बोयाल'⁶²। अच्छी पड़ोसन से पाला पड़ा तुम्हारा !'

'क्या बात करती हो तुम दीदी ! ऐसी हमदर्द पड़ोसिन कहाँ मिलेगी ? मुझे और अनन्त को कितना प्यार करती है।'

सुबला बऊ मन ही मन हंस पड़ी थी।

'तुम उन पर सन्देह क्यों करती हो ?'

'क्यों संदेह करती हूँ ! उनके कारण मेरे मन में जो आग सुलग रही है, वह न दिखाने लायक है न किसी को बताने लायक।'

'समझ गई।'

बाप के घर में कभी एक गज सूत नहीं काता था, सीखने का मौका भी नहीं मिला कभी ! दस सेर सूत लेकर मानो वह अथाह जल से घिर गई थी।

दोपहर बाद सुबला बऊ खुद सूत कातने के कुछ औजार लिए आ पहुँची। उन्हें जमीन पर रखकर बोली, 'ये लो बड़ी तकली, मोटे सूत के लिए और छोटी तकली महीन सूत के लिए ..और यह रहा तुम्हारा पीढ़ा, घाट पर इसे लेकर जाना और इस पर पटक-पटक कर पाट की लच्छियों को अच्छी तरह धो लेना, फिर धूप में सूखने को डाल देना। आगे क्या करना है, मैं रात को आकर बता दूंगी।'

पहले दिन अनन्त की माँ के मोटे सूत को देखकर सुबला की बऊ हँसते-हँसते लोट-पोट हो गई, फिर बोली- 'अरे इतना मोटा सूत कात दिया कि एकनाल ⁶³ से ही हाथी बँध जाए।'

लेकिन दूसरे दिन का काम देखकर वह खुश भी हो गई। इसके बाद उसने छोटी तकली देते हुए बारीक सूत कातना सिखाया।

सात दिन में कुल चौदह ⁶⁴ नीड़ी सूत कत गया था। उसमें से सात नीड़ियाँ बारीक और सात मोटे सूत की थीं। फिर एक दिन केवट टोले का एक व्यापारी आया

62. बड़ी मछलियाँ यानी बड़े व्यापारी

63. एक लच्छी

64. सूत का एक माप।

और मोल-भाव कर एक रुपए सेर की दर से मोटा और दो रुपए सेर की दर से बारीक सूत खरीदकर ले गया।

सूत बिका ही था कि कालो की माँ आँधी की तरह घर में घुस आई और बोली, 'हाय रे फूटा कपाल, बड़ी मुश्किल है। अभी-अभी ग्रामचण्डी की तरह तेरे घर से निकलकर ये कौन भागी रे?'

'नाम तो नहीं जानती। चेहरे से पहचानती हूँ। उसी से तो सूता लाया करती हूँ।'

'ओ.. समझ गई, सुबला बऊ थी! सुबला तो गया ऊपर..और इसे यहाँ छोड़ गया। पहले सब इसे बसन्ती कहकर बुलाते थे..मैं उसे रामदास की बहन कहा करती थी। मेरे छोटे बेटे के साथ इसके ब्याह की बात चली थी, पर इसके भाग्य में तो गगन का बेटा सुबला लिखा था। वही सुबला, जो मर गया। और ये छेमड़ी⁶⁵ उसी के नाम की माला ढोती फिर रही है। अब तो छोटे से बड़े तक सब उसको सुबला बऊ ही कहा करते हैं।'

'ओ..आपके छोटे बेटे से ब्याह की बात ठीक हो गई थी शायद।'

'अरे ..एक कहानी तो उससे भी पहले की है। रामकेशव के बेटे किशोर से भी उसकी शादी की बात चली थी। वही किशोर जो अब पागल होकर दर-दर भटकता फिरता है।'

दोपहर को घाट पर बर्तन माँजने के लिए जाती मंगला बऊ आस-पास के दूसरे रास्ते छोड़कर अनन्त की माँ के दुआर से गुजरी और घर में झाँका। लौटते समय उसने फिर झाँककर देखा तो सुबला बऊ ने उसे आवाज लगाई- 'ओ महन की माँ, आज क्या दूज का चाँद निकला है।'

मंगला बऊ को सुनकर अच्छा नहीं लगा। रात-दिन सुबला की बऊ की नजर उसी पर रहती है। एक पल भी अकेले साँस नहीं लेने देती। उपेक्षा कई बार मनुष्य को बेहद निर्मम बना डालती है। मंगला बऊ थोड़ा आगे बढ़ी और छाजन के नीचे खड़ी होकर एक पाँव बरामदे में रखा और दूसरा नीचे ही रखे-रखे घर में झाँका। फिर गालों पर हथेली रखकर गंभीरता से पूछा, 'क्यों री सुबला बऊ, आज गाँव-भर में क्या बतकही चल रही है?'

'कैसी बतकही?'

'इसके चरित्र को लेकर गाँव के दस-बीस लोग बैठकर फैसला लेने वाले हैं।'

'ओ महन की माँ..किसकी बात कर रही हो?'

‘बचुआ की माँ की’

मंगला बऊ के स्वर से व्यंजना साफ़ झलक रही थी।

सुबला बऊ ने आगे बात तो नहीं बढ़ाई, पर उसकी गलती जरूर सुधारी।

दस-बीस लोग क्या खाक फैसला करेंगे। वह क्या किसी के बाप का धन सँपेरों पर लुटा रही है या कि रास्ता चलते लोगों को न्योता दे रही है कि ‘आओ, मेरे बारे में फैसला करो.. कान खोलकर सुन लो महन की माँ.. बिना ठीक से सुने और देखे तुम लोगों की तरह मैं उड़ती बात न फैलाती हूँ, न सुनती हूँ!’

सुबला की बऊ इतने पर ही नहीं रुकी। रात को होने वाली पंचायत की सारी बातें उसने मंगला की माँ को बता दीं। इतने दिनों तक गाँव के मातबर ⁶⁶ बाहर गए हुए थे। कोई व्यापार करने उत्तर की ओर निकला था तो कोई धान खरीदने दक्षिण की ओर। इस बीच कुछ लोग बीमारी आदि में पड़े थे। पर अब सब के सब अपने गाँव लौट आए थे। बीमार लोग भी भले-चंगे हो चुके थे।

गाँव के लोगों के एक जगह इकट्ठे होने से बैठक जम गई थी। सामाजिक बैठक⁶⁷ का यही तो समय था। इस बीच कितनी-कितनी बातें इकट्ठी हो चुकी थीं। सब पर फैसला लेना बाकी था। आने वाली काली-पूजा के बारे में भी बात की जानी थी। नाले के सूखते पानी की भी बातें होनी थीं और इन सबके बाद एक और चर्चा की संभावना थी, जो थी अनन्त की माँ के बारे में। पंचों को तय करना था कि वह किसके साथ उठेगी-बैठेगी, सुबला बऊ के साथ, मंगला बऊ के साथ या कालो की माँ के साथ।

सुबला बऊ की बातों की चतुराई से मंगला बऊ तार-तार हो गई। लेकिन अनन्त की माँ को भय लगने लगा। दस-बीस लोग मिलकर उसके बारे में बात करेंगे, यह सोचकर ही उसका दिल धड़क रहा था। नए गाँव में नए लोगों के बीच बसना-बसाना कम बड़ी मगज़मारी नहीं।

शाम होने के कुछ पहले ही दो लड़के घर-घर घूमकर निमन्त्रण देने लगे। मुहल्ले के एक कोने से शुरू करके अंत तक वे लय में एक गीत गाते और दरवाजा खटखटाते-

‘घर में रहने वालो, सुन लो हमारी बात

भारत के घर में होगी आज, दस जनों की मुलाकात

66. पंच-पटेल

67. एक तरह की जाति पंचायत।

तुम सबको भी न्योता, पान-तमाकूखाना
और दसों लोगों की दसियों बातें सुनना।⁶⁸

बात तो पक्की थी। अनन्त की माँ को भी नहीं बख्शा गया था। खासकर, पंच-पटेलों से जिसकी बात जुड़ी हो, जन-गण के आह्वान पर उसे तो जाना ही पड़ेगा।

अनन्त की माँ अकेले जाने को किसी तरह राजी नहीं थी। सुबला बरु ने उसे खींचकर घर से निकाला।

जब वे दोनों भारत के घर पहुँची तो देखा कि पंचायत अपने पूरे शबाब पर आ चुकी थी। उसके घर के आगे एक लम्बी-चौड़ी जगह थी। चारों ओर के टीलों पर उसके चार बड़े-बड़े घर बने थे। बीच की जमीन थोड़ी ऊँची थी। कुछ दिन पहले तक यह जगह इतनी बड़ी नहीं थी। भारत सुटकी मछली का व्यापार करता था। उसने घर के सामने की जमीन के बीच में एक गहरा गड्ढा खोदकर सूखी सुटकी मछलियाँ संरक्षित कर रखी थीं। अब जब बाजार में उनका भाव काफ़ी बढ़ गया तो उसने थोक के भाव उनको बेच दिया और गड्ढे को मिट्टी से भर दिया था। हालाँकि उसने वहाँ की जमीन को समतल करने का प्रयास किया पर गड्ढा भरने के बाद भी कुछ मिट्टी बच गई थी, जो दूर से किसी गर्वीली की फूली छाती-सी लगती थी।

जहाँ बैठकर घर की औरतें खाना आदि पकाया करती थीं, धान उबालती थीं, मूढ़ी और चिवड़ा बनाती थीं, एक-दूसरे के सिर में तेल लगातीं या उकून (जुँएँ) निकालती थीं, वहाँ बाँस का एक बेड़ा लगा दिया गया था। बेड़े के उस ओर सहन में बैठीं वे तो सबको देख सकती थीं पर उन्हें कोई नहीं। घर की सारी औरतें पंचायत की बतकही सुनने वहीं आ बैठी थीं। दरवाजे पर एक तिरपाल लगा दिया गया था। सबके बीच बिछी एक सुन्दर-सी गद्दी पर टोले के गणमान्य लोग आकर बैठ चुके थे। यही थे गाँव के बड़े लोग- कुछ धनबल में बड़े, कुछ पेशीबल में, कुछ जनबल में तो कुछ बुद्धिबल में। इन सबके अलावा पंचायत में उनका बोलबाला था, जिनमें न्याय-बुद्धि, त्वरित-बुद्धि के अतिरिक्त बात को घुमा-फिराकर रखने की प्रतिभा हो। इनमें से ही यदि कोई जनबल और धनबल के मामले में भी बड़ा हो तब तो सोने पर सुहागा। उसकी बात काटने का साहस कौन कर सकता था। जाहिर है, उसकी राय ही मानी जाती। इस पंचायत में भी ऐसा ही एक व्यक्ति बैठा था, जिसके चेहरे-मोहरे और बैठने की भंगिमा ने अनन्त की माँ का ध्यान सबसे पहले खींचा था।

68. ठाकुर सकल घोरि नि आछो आमार एकखान कोथा/भारतेर बाड़ि ते आज दश
जनेर सभा/तुमरार निमन्त्रण पान तामुख खाइबा/दश जनेर दश कोथा सुनबा

सुबला बऊ उसे बता रही थी कि सबसे बड़े मातबर यही हैं। इसके बाद कान में फुसफुसाकर कहा था, 'रामपस्साद नाम है।'

उनकी शिव जैसी आँखें, मणि गोसाईं⁶⁹ जैसी दाढ़ी देखकर अनन्त की माँ को अपने ताऊ की याद आ गई थी, उसने पूछा, 'ये किधर रहते हैं बहिनी?'

'इस गाँव के नहीं हैं। दस साल पहले कालो के बाप से झगड़ अपना घर-द्वार और डेरा-डण्डा उठा यात्राबाड़ी चले गए थे। जिस घाट से तितास मुड़ती है, वहीं एक मठ बना हुआ है, उसके बाद कुण्डलिया नाला है। नाले के उस पार यात्राबाड़ी गाँव है। वहाँ केवल केवटों के घर हैं। यह अकेले मालो हैं, जो वहाँ जा बसे हैं।'

जो दूसरा आदमी अनन्त की माँ का दृष्टि-केन्द्र बना, उसका चेहरा दुर्वासा की तरह क्रोध से तमतमाया-सा दिख रहा था। उम्र कम नहीं थी, लेकिन चेहरे का तेज नवयुवकों जैसा था।

इन बड़े मातबरों के बाद जिसकी बात सबसे ज्यादा सुनी जाती थी, वे कायथटोले की 'जात्रा'⁷⁰ में ऋषि-मुनि का पार्ट खेला करते थे। जब वे कमर में कोपीन पहनकर, ऊपर रामनामी चादर ओढ़ अपनी खड़ाऊँ खट-खट करते हुए महफ़िल में घुसते थे तो सबमें एक भय की लहर दौड़ जाया करती। सब चुप हो जाते थे। हाथ में जनेऊ पकड़कर जब वे गरजते हुए राजा को अभिशाप देते हुए आगे की ओर बढ़ते थे तो आस-पास के गरीब ग्रामीण दर्शक ही नहीं, हाथ में तलवार लिए झमकौआ पोशाक पहने राजा भी थर-थर काँपते हुए उनके पैरों पर झुक जाते। ऐसा तेज था इस आदमी का। नाम था दयाल चंद।

इस दल में और भी कई लोग परिचय के लायक थे। समय कम था इसलिए सुबला बऊ ने दो-चार वाक्यों में अनन्त की माँ को कुछ का परिचय दे दिया था। उन्हीं में एक और खास व्यक्ति थे- नितार्ई किशोर। घूस खा-खाकर उनका पेट तबले-सा फूल गया था। कंजूस इतने कि मजाल है, कोई इनके हाथ से एक मुट्ठी चावल भी निकलवा ले।

'और ये जो सूरदास हैं, वे न्याय करने के नाम पर ससुर के बिस्तर पर बहू और दामाद के बिस्तर पर सास को सुलवा सकते हैं। नाम है किशनचन्द।' इतनी डेढ़ नियति⁷¹ करते रहते हैं, इसी कारण इनका चक्षुधन (आँखें) खो गया है।

पंचायत में बैठे बाकी नर-नारायण बातें सुनने और तम्बाकू पीने आए थे। कुछ

69. पूर्वी बंगाल के एक सुख्यात साधू।

70. एक तरह की नौटंकी

71. उचित-अनुचित करने वाला

लड़के भाग-भागकर मालसा में आग, हुक्के-चिलम की व्यवस्था कर रहे थे। उनके हाथों में गजब की फुर्ती थी। चिलम एक हाथ से दूसरे हाथ होती हुई पंचायत में घूम रही थी। बासी हुक्के फिर उन लड़कों के पास आ जाते थे और वे उन्हें फिर भरकर ताजा करने में लग जाते।

काँसे की एक चमचमाती थाली में पान के पत्ते, चिकनी सुपारी, एक कटोरी में चूना और बीड़ा लगाने के अन्य मसाले सजाकर रख दिए गए थे। थाली को गद्दे के बीचों-बीच रखते हुए भारत ने सबको प्रणाम किया और कहा, 'हे पंच-परमेश्वर गण, मेरी बात पर गौर करें। पान ग्रहण करने का समय हो गया है।'

सबने भारत की ओर सम्मत्तिसूचक नजर से देखा। बाद में रामप्रसाद के इशारे पर भारत ने खुद पान के बीड़े लगाकर मातबरों की ओर बढ़ाए और फिर एक लड़के को थाली पकड़ा दी। उसने तुरन्त इस जनारण्य में विचरते लोगों के लिए बीड़े लगाने शुरू कर दिए। अभी पान-दान की प्रक्रिया पूरी भी नहीं हुई थी कि पंचायत में विचार-विमर्श शुरू हो गया। दयाल चांद ने अपनी दुर्वासा जैसी नजर से एक बार चारों ओर देखा और फिर राम प्रसाद के चेहरे पर नजरें टिकाकर बोलने लगे।

राम प्रसाद की उम्र काफ़ी हो चली थी। शरीर ताम्बई हो गया था। जवानी में उनका रंग सुनहला रहा होगा। त्वचा के वार्धक्य को धकियाकर बाहर आती मोटी हड्डियाँ इस बात की तस्दीक कर रही थीं कि जवानी में इनके बदन में आसुरी शक्ति रही होगी। दोनों आँखों में देव-सुलभ ज्योति थी। सब मिलाकर उनके शरीर से क्षत्रियों-सा तेज फ़ूट-फ़ूटकर बाहर आता दिखता था। उन्हें देखकर लगता था, जैसे आज भी उनमें नए सृजन की क्षमता बाकी है। सत्य की खोज में उनकी दोनों बड़ी-बड़ी आँखें तब तक सुदूर में ताकती रहतीं, जब तक वे उसे तलाश नहीं लेते। दयाल की नीरव जिज्ञासा से वे आँखें सबसे पहले किशनचन्द पर पड़ीं। बोलो, 'हे नगर के मुख्तार, बात आगे बढ़ाओ।' अन्धा आँख उठाकर देखे न देखे क्या फर्क पड़ता है। किशनचन्द ने अपनी अन्धी आँखें झपकाई और बेहद मुलायम स्वर में बोले, 'भारत, किधर है रे?'

'काका, मैं यहीं हूँ।'

'ठीक है, वहीं रह। आज पंचायत क्यों बुलाई है?'

'कहने के लिए तो घर का मालिक उसमें रहने वाला ही होता है, किन्तु जिस जमीन पर वह घर बनाया गया, उसका मालिक तो वह जमींदार था, जिसका उस घर से कोई सम्पर्क नहीं। वह तो अपने राजसी वैभव-विलास और ऐश्वर्य में डूबा रहता। उसने लेन-देन के लिए एक तहसीलदार नियुक्त कर रखा था। समय पर लगान अदायगी न होने पर वह जमींदार से सही करवा कर जनता को उखाड़ने और जमीन

आदि छीने का काम करता था। एक को भगाकर दूसरे को बसाना उसी का काम था। जमींदार खुद आकर तो किसी के लिए घर बनाता नहीं था। ऐसा करने के लिए कई जमींदारों की जरूरत पड़ती थी। सच कहें तो संख्या में वे नगण्य थे। वे लोगों के बीच अपवाद की तरह थे। सबसे अधिक संख्या रैयतों की ही थी, जो कहने और रहने के लिए जमीन के मालिक कहलाते थे। कागज-पत्र पर रैयत मालिक नहीं थे। इसी तरह तितास के मालिक मछरे थे। लेकिन कागज-पत्र पर असली मालिक अगरतला के राजा थे। मालो लोगों का मालिकाना तो सिर्फ मछलियाँ पकड़ने भर का था। पुराने नियम के अनुसार मालो साल में एक बार दस भार⁷² मछलियाँ राजबाड़ी में पहुँचाया करते थे। किसी एक निर्दिष्ट दिन दस आदमी बड़े-बड़े दस भार कंधों पर लटकाए हवा को तरंगित करते तेज दौड़ लगाते राजबाड़ी पहुँच जाया करते। किशनचन्द ने अपनी जवानी में ऐसा ही देखा था। लेकिन नदी में मछलियों का होना निश्चित तो है नहीं। तयशुदा दिन दस भार मछलियाँ नहीं भी मिल सकती थीं। तब किशनचन्द में जवानी का जोश था। मालिकों का दिमाग कैसे ठण्डा करें यह गुर उसे आता था। एकदिन वह सीधे उनकी शरण में पहुँचा, पाँव पकड़ लिए तथा गाँव की ओर से एक पक्का सौदा कर आया। अब मछलियाँ पकड़ने और देने का झंझट खत्म। साल में एक बार मछली के बदले महसूल (लगान) इकट्ठा कर राज-सरकार के हाथ में पहुँचा देना था, बस। गाँव वालों से महसूल वसूलने और उसे जमींदार तक पहुँचाने की जिम्मेदारी भी उसी ने ले ली थी। तीन वर्ष से यही हो रहा था। सबने अपने-अपने हिस्से का महसूल उसके पास जमा कर दिया था। लेकिन अभी राजा के कारिन्दे ने आकर बताया कि उन लोगों का महसूल तीन सालों से बाकी है। अब और ढील नहीं दी जा सकती। उन्हें तुरन्त सारा महसूल चुकाना होगा। गाँव में यह भी मुनादी हुई कि वहाँ के सारे मालो अपना-अपना महसूल पंचायत में पहुँचा जाएँ। आज की पंचायत का मुख्य विषय भले ही राजदूत के खिलाफ़ शिकायत पर विचार करना था लेकिन उसी के साथ कई निजी और सामाजिक मुद्दों पर भी बातचीत होने वाली थी। किशनचन्द को यह अंदाजा नहीं था कि सबसे पहले उसके कुकर्मा का ही कच्चा चिट्ठा खुलने वाला है। इसलिए जब उसकी बुलाहट हुई तो उसने चेहरे पर एक नकली मुस्कान चिपका ली और नजरें नीची किए हुए कुछ-कुछ बोलने लगा, मैं और क्या बोलूँ, भारत की बेटी का ब्याह भी तो करना है। उसी विषय में विचार-विवेचना के लिए पंचायत बुलाई गई है। भारत के मन की बात तो हम समझ ही गए हैं, भले ही उसने खुलकर मुँह से कुछ न कहा हो।’

72. एक बाँस से बंधे दो बड़े-बड़े टोकरे।

भारत ने तुरत अपनी अढ़ाई साल की नंग-धड़ंग बेटी को गोद से उतारा और सामने आकर खड़ा हो गया। जो ठिठोली की जा रही थी, उसका चटपट उत्तर देने में उसने जरा भी देर नहीं की, 'आप जैसे नामवर काका-ताउओं के होते हुए मेरी बेटी के ब्याह पर क्या विवेचना होगी? आप लोग कहें तो इसी पंचायत में उसके सात फेरे करवा दूँ।'

बात सचमुच हँसी की थी। किशनचन्द भी सिर झुकाए हँसने लगा। कुछ लोग इस हँसी में शामिल हुए तो कुछ चुप रहे। जब भारत ने मूल मुद्दा सामने रखा तो वहाँ शान्त बैठे लोगों में असन्तोष फैल गया। पंचायत में बैठे जन-साधारण में हुक्के की गुडगुड़ाहट और ख़ाँसी की मात्रा भी बढ़ने लगी थी। उन बेचारों के पास अपना असन्तोष प्रकट करने की सबसे कारगर भाषा शायद यही थी। समाज के जो लोग युगों-युगों से अपमानजनक जीवन जी रहे थे, उनमें स्वभावतः अपने साहस को दबाने की आदत बन गई थी। इसलिए किसी की हिम्मत नहीं थी कि आगे बढ़कर कोई अपने मन के आलोड़न को भाषा प्रदान करे। भले ही इनमें अन्याय के खिलाफ़ प्रतिवाद का साहस जवाब दे चुका हो, लेकिन किसी भी युग में इन्होंने अन्याय को पूरी तरह हजम भी नहीं किया था। इसलिए हर काल, हर देश में ये भले ही किसी खिलाफ़त के लिए आगे न बढ़ें हों, परन्तु इन्होंने किसी न किसी रूप में अपना प्रतिवाद दर्ज जरूर कराया था; कहीं हँसकर, कहीं रोकर, कहीं सिर कटाकर, बल्कि कभी-कभी तो सारी सीमाएँ तोड़कर दीवार से अपना माथा टकराकर अथवा कपड़ों पर केरोसीन छिड़क आग लगाकर। गोकनघाट गाँव के साधारण स्तर के मालो लोगों ने उस दिन अन्याय के खिलाफ़ अपना प्रतिवाद हुक्के के कश के साथ एक साथ ख़ाँसकर दर्ज कराया। तभी दयाल चंद धीमे स्वर में बोला, 'मैं होता तो अपनी इज्जत बचाने के लिए तितास में डूब मरता।'

'पंचायत में आकर लक्ष्मण-रेखा लाँघने की कोशिश मत करो, समझे न दयाल व्यापारी। रास-लीला की जगह को कुरुक्षेत्र बनाने का कोई मतलब नहीं है। कभी त्रेता-युग में जो बात की गई थी, उसे अब धो-पोंछ के ग्रहण करो, ज्यों की त्यों नहीं।'

यह आपस की बात थी, इसलिए पंचों ने इसे और तूल नहीं दिया, बस रामप्रसाद ने तिरस्कारपूर्वक जरूर कहा, 'किशनचन्द ! लगता है तुम पंचों की मान-मर्यादा भूल गए हो।'

यह सुनकर किशनचन्द को बड़ी लाज आई। बोला, 'मुझे कुछ दिन की मोहलत दें।'

'पंचो, मेरी भी एक बात सुन लीजिए।'

रामप्रसाद ने मुड़कर देखा, आवाज उसके ठीक पीछे से आई थी। रेशमी चादर से देह ढँके एक आदमी कुछ बोलना चाह रहा था।

‘क्या कहना है, बोलो।’

‘जो यहाँ से मछली खरीद शहर में ले जाकर बेचते हैं, उनके आगे एक नई समस्या आ खड़ी हुई है। मैं खुद भी इसका शिकार हूँ।’

मोड़ल का आश्वासन पाकर उस आदमी ने बात आगे बढ़ाई, ‘जो लोग आनन्द बाजार में अपनी मछलियाँ बेचने जाते हैं, जर्मीदार के कारिन्दों ने इन दिनों उनसे जबरदस्ती महसूल वसूलना शुरू कर दिया है। मछली के प्रति भार पर उन्हें दो आने की दर से महसूल देना पड़ रहा है। जो मालो ऐसा नहीं कर पाते, उन्हें बाजार में बैठने से रोक दिया जाता है।’

यह सुनकर रामप्रसाद का चेहरा सख्त होने लगा था। बाजार की इस नई खबर ने उन्हें चौंका दिया था। वे बेचैन हो उठे थे। शहर के दो सुख्यात जर्मीदारों जगत-बाबू और आनन्द-बाबू ने अपने-अपने नामों पर दो बाजार बसा रखे थे। दोनों चाहते थे कि सिर्फ़ उन्हीं के बाजार बसें, दूसरों के उजड़ जाएँ। दोनों के कारिन्दे मालो लोगों के पीछे पड़ गए थे। वे बेचारे परेशान थे, किसकी मानें, किसकी न मानें। पिछली सुबह रामप्रसाद से मिलने जगत-बाबू के कारिन्दे आए और उसी दिन शाम को आनन्द-बाबू के कारिन्दे भी आ गए। उनका कहना था कि मालो रामप्रसाद की बात सुनते हैं, इसलिए उनके इशारे पर ही बाजारों का जमना सम्भव हो जाएगा। जो सुबह आए थे वे लुके-छिपे यह भी बता गए कि जर्मीदार रामप्रसाद को इस काम के तीन-सौ रुपए देंगे। बस, वे बात आगे बढ़ाएँ। लेकिन रामप्रसाद ने ऐसा नहीं किया। जो शाम को आए थे, वे कह गए थे जर्मीदार-बाबू हर मालो को नकद पच्चीस रुपए और एक-एक धोती देंगे। रामप्रसाद ने उन लोगों को पान-तम्बाकू पेश किया था। दूसरे दिन दल के दल मालो मछलियों के भार उठाए आनन्द बाजार पहुँच गए और अपनी दूकानें सजा दीं। जो व्यापारी थे वे तो गए ही, जो नहीं थे, वे भी अपनी नावें घाट पर बाँध एक भार मछली लेकर बाजार की रौनक बढ़ाने पहुँच गए थे। उस दिन आनन्द-बाबू के चेहरे की खुशी देखते ही बनती थी, लेकिन आज वह कहाँ थे? जब उनके कारिन्दे गोकनघाट के मालो लोगों से लगान वसूल करने वाले थे।

‘सुनो, बैपारी! जर्मीदार-बाबू को साफ़-साफ़ बता दो। मालो लोगों ने मछलियाँ बेचने के लिए न कभी महसूल दिया है, न देंगे। वे जगह दें न दें, उनकी मर्जी। मालो अगर बाजार बसाना जानते हैं तो उसे उजाड़ने की हिम्मत भी रखते हैं। वे जिस ओर चल दें, उधर राह न भी हो तो बन जाती है। यदि बाजार न हो तो नए बस जाते हैं।’

तामसी के बाप के कानों में ये सारी बातें नहीं घुस पा रही थीं। वह तो बस अपने बारे में सोच रहा था। पंचायत में उस पर भी बात होगी। उसने मन ही मन खुद को अपराधी मान लिया था। सच ही तो था, टोले में एकता रखना और उसके हितों का मान रखना ही तो पहला कर्तव्य है। वे हमारे कौन हैं। वे मालो लोगों को अपने घरों में घुसने नहीं देते। उनके छू देने पर किसी भी चीज को अपवित्र मान लेते हैं। पूजा-समारोहों पर मालो अगर किसी के घर प्रसाद के लिए बुलाए भी जाएँ, तो उन्हें अपनी जूठी पत्तलें खुद फेंकनी पड़ती हैं। उन पत्तलों को और कोई नहीं छूता। अगर छू दिया तो जात भ्रष्ट हो जाएगी। ये मालो जाति से कितनी नफ़रत करते हैं। मालो पढ़े-लिखे नहीं होते। बाबुओं की तरह धोती-कुर्ता, चादर, जूते आदि पहन-ओढ़कर नहीं चलते। लेकिन क्या इसी कारण उनकी छाया भी अपवित्र हो गई। मालो जाति में पैदा होने से क्या ये इन्सान ही नहीं रह गए।

तभी उसे किसी ने पुकारा।

उसे दयाल चंद ने आवाज दी थी, 'तामसी के बाप! मेरी आवाज नहीं सुन रहे?'
हुँकारी देते हुए वह बोला, 'सुन तो रहा हूँ, कहिए!'

दयालचांद ने कहा, 'तुम्हारा घर तो बाजार के पास है। सुना है वहाँ के कायस्थ तुम्हारे घर आकर तबला बजाते हैं, बल्कि इस बहाने वे तुम्हारी बहू-बेटियों पर बुरी नजर डालते हैं। सोचकर देखो, कायस्थों के साथ उठने-बैठने से वे तुम्हें कायस्थ नहीं मान लेंगे। तुम मालो हो और वही रहोगे। अपने घर भले ही तुम उन्हें सिंहासन पर बैठा दो, लेकिन उनके घर जाने पर तुम्हें बैठने को टूटा पीढ़ा ही दिया जाएगा। तुम उन्हें चाँदी के हुक्के में तम्बाकू पिला दो, पर वे तुम्हें फूटी चिलम ही देंगे। नहीं नहीं, तुम यह ठीक नहीं कर रहे हो!'

तामसी के अनुत्पत्⁷³ बाप के मुँह से बस इतना ही निकल पाया, 'आप पंच-परमेश्वर हैं। मैं जात के नाम पर पहले ही बहुत रो चुका हूँ। अब और सहन नहीं होता।'

सबसे अंत में अनन्त की माँ की बात उठी। उसका दिल जोरों से धड़कने लगा था।

उसका प्रसंग भी भारत को ही उठाना पड़ा। आप सभी ने सुना होगा, 'इस गाँव में एक नया परिवार आकर बसा है। अब आप लोगों को तय करना है कि उसका उठना, बैठना, खाना-पीना, रहना किसके साथ होगा। वह किस जाति में रहेगी। किसन

73. दुःख और क्रोध से जलता हुआ।

काका, दयाल काका या बसन्त के बाप काका के साथ !’

किसनचन्द ने कहा, ‘पहले यह तो जान लो, वह किस जात की है? किस गाँव से उसका संबंध रहा है?’ आदेश के अनुसार सुबला बरु ने उससे पूछा, ‘अनन्त की माँ रोने लगी और बोली, बहिन लोग, मैं जाति और सम्प्रदाय के बारे में कुछ नहीं जानती।’

उसकी बात सुनकर सब हतोत्साहित हो गए थे। किसी ने उसे अपनी जाति में मिलाने का आग्रह नहीं दिखाया। तब किसनचन्द बोला, ‘मेरी जाति के बीस घर हैं। अब मैं और नहीं बढ़ाना चाहता।’ दयालचंद की जाति के भी दस परिवार थे, सब बड़े-बड़े। इसलिए उसकी जाति में भी जगह देना संभव नहीं है। सबसे पीछे मंगला बैठा था। वह भीड़ को ठेलकर आगे आया और बोला, ‘मेरी जाति के कुल तीन घर हैं।’

‘तेरी जाति में कौन कौन हैं?’ रामप्रसाद ने पूछा।

मैं खुद, सुबला का ससुर, और किशोर का बाप।’

‘ठीक है तब यह नया परिवार तुम्हारी जाति में शामिल किया जाता है। अब इसे लेकर तुम्हारे चार घर हो गए।’

‘ठीक है काका।’

कृष्ण-पक्ष की काली रात थी। दशमी या एकादशी होगी। रामप्रसाद स्याह अंधेरे को चीरते चले जा रहे थे। उनकी देह पर जैसे बुढ़ापा जबरदस्ती काबिज होना चाहता था, पर अंग-प्रत्यंगों की गाँठें बड़ी मुश्किल से शिथिल कर पा रहा था। हमेशा चमकने वाली उनकी आँखों से जैसे सहसा दृष्टि-शक्ति छिन रही थी। आज उन्हें क्या हो गया। वे रास्ता तक भूल गए थे। जो रास्ते को पहचानकर चलता है, उसके लिए तो रास्ता एक ही होता है, लेकिन जो दिशाहारा हो जाए, उसके सामने सैकड़ों रास्ते आ खड़े होते हैं। मालीबाड़ी पार करने के बाद जैसे ही उन्होंने दूसरे रास्ते की ओर कदम बढ़ाए, सोच में डूबे होने के बावजूद हठात उनके मन में मालिन की याद ने एक चंचल लहर उठा दी थी। कभी-कभी कुछ यादें बिना दस्तक दिए अचानक सामने आ खड़ी होती हैं। न जाने ये कहाँ, किस अवचेतन में छिपी होती हैं या कि अचानक कहीं आकाश से टूट पड़ती हैं, कोई मनोवैज्ञानिक ही इसकी मीमांसा कर सकता है। हम तो बस इतना जानते हैं कि जो याद अचानक सामने आ गई, वह मन में उठते-गिरते भावों की ही अनुपूरक होती है। इसलिए मालिन की याद उन्हें आकस्मिक लग रही थी पर वे समझ गए थे कि किसी प्रसंग की वजह से उनकी सोच के साथ आज वह याद आ जुड़ी थी। शायद रामगति के दरवाजे पर फैलाए जाल को देखकर वे

अपनी सुध-बुध खो बैठे थे और उन्हें लगा था कि यह वही बाँस का झुरमुट है, जहाँ मालिन दिखाई दिया करती थी। चलते-चलते उन्हें याद आया कि यहीं कहीं दाहिनी ओर उसका घर हुआ करता था। जिसे सब मालीबाड़ी के नाम से जानते थे। अब यह खण्डहर बन चुका था। इसके पास से गुजरने वाले रास्ते पर आजकल रात को कोई पाँव भी नहीं रखता। मालिन की अकाल मौत हुई थी, सुना है वह प्रेतनी बनकर आने-जाने वालों को डराती है। वहीं छोटे-बड़े साँप झाड़ियों से निकलकर मँढक पकड़ते दिखाई पड़ते हैं।

पर यह बाड़ी पहले तो ऐसी नहीं थी। इसके चारों ओर धूमधाम हुआ करती थी। एक तरफ़ फूलों का बगीचा तो दूसरी तरफ़ बैंगन के खेत होते थे। एक ओर बाँसों के झुरमुट और आम के पेड़ तथा पूरब की ओर एक जल से लबालब पुष्करिणी (तलैया) हुआ करती थी। फूलों पर गुंजार करती मधुमक्खियाँ होती थीं तो बसन्त में आम के पेड़ों पर कूजती कोयल। रात-दिन बाँस के झुरमुटों पर कलरव करता बहुरंगी पक्षियों का झुण्ड हुआ करता था। वयःसंधि के मोड़ पर खड़ी मालिन इसी रास्ते से केले के पत्ते ⁷⁴ लेकर पाठशाला जाया करती थी। उन्होंने मालिन को भरी जवानी में देखा था। आज भी याद है, चबूतरे पर माली और मालिन बैठकर गुलदस्ता बनाया करते थे। पर एक दिन मालिन की मृत्यु हो गई। उसके उदाम यौवन के बंधन में उन्होंने काफ़ी समय गुजारा था। तब भी घर के चारों ओर मालन्च का बाड़ा था। उनके मन का बन्धन जितना कमजोर हो रहा था, मालन्च⁷⁵ का बंधन उन्हें उतनी ही ताकत से बाँध रहा था। किसी में उसके भीतर घुसकर फूलों को छूने की हिम्मत नहीं थी। चेहरे पर मधुर प्रणय भाव के बावजूद उसके घर में घुसने से लोग अक्सर सहमते थे। आज अपने फन में कालकूट भरे कोबरा साँप निःसंकोच यहाँ विचरते हैं।

ऐसा क्यों हुआ? काश मालिन की जवानी में उसकी संतानें एवं बुढ़ापे में पोते-पोतियाँ इस घर के आँगन में खेलने उतर पाते और उसकी देह से जन्म लेकर दर्जनों स्त्री-पुरुष अपना खून-पसीना एक कर इस बाड़ी के फलों-फूलों को सजाने में व्यस्त दिखाई पड़ते। तब उसके परिवार के सदस्यों की संख्या इतनी बढ़ गई होती कि इस घर में जगह कम पड़ जाती। आस-पास का जंगल साफ़ करना पड़ता, गड्डों में मिट्टी भरी गई होती और कई माली-बाड़ियों की बुनियाद रखी गई होती। ऐसा क्यों नहीं

74. पहले केले के पत्ते पर बाँस की खपच्ची से अक्षर लिखना सिखाया जाता था।

75. फलों और फूलों से लदा हुआ बाड़ा।

हुआ? जीवन की राहों की यह सहज और विराट संभावना मालिन के मन के एक कोने में सिमटकर क्यों सूख गई? क्यों यह बाड़ी खाली पड़ी है? कभी जो किसी एक स्थान को अपने होने से संगीतमय अर्थ प्रदान करते हैं, वे फिर चले क्यों जाते हैं और नए लोग उनकी जगह क्यों नहीं लेते? मालिन कभी-कभार लौकी और कुम्हड़े की लताएँ बाँस के माचे पर चढ़ा दिया करती थी। जिनसे असंख्य लौकियाँ और कुम्हड़े लटके दिखाई पड़ते थे, लेकिन वह खुद जीवन में एक मजबूत माचे का सहारा लेकर फलवती क्यों नहीं हो पाई? अगर ऐसा हुआ होता तो इस घर का चेहरा पहले जैसा ही खुशनुमा बना रहता। नए युग की संभावना लिए नई पीढ़ी इस आंगन में खेलती-कूदती। नए युग की मांगें पूरी करने के लिए नई पीढ़ी नए शिल्पियों की तरह नए किस्म की रचना करती। तब कोबरा साँप इस घर की सीमा में भूलकर भी नहीं झाँकता।

बाहारुल्ला और शरीयतुल्ला नाम के दो भाई शहर गए थे। उन्हें लौटने में रात हो गई। अंधेरे में डूबे गाँवों के रास्ते पार करते हुए एक मोड़ पर आकर दोनों दो दिशाओं में मुड़ गए। आस-पास दो घर थे। बीच में बेड़ा।⁷⁶ वे दोनों अपने-अपने परिवारों के साथ अलग-अलग रहते थे। जब तक छोटा भाई शरीयतुल्ला अपने घर में नहीं घुस गया, तब तक बाहारुल्ला दूर से उसे देखता रहा, इसके बाद वह अपने घर में गया पर घुसते ही चौंक गया। दालान के कोने में धान उबालने के लिए जो दोमुंहा चूल्हा था, वहाँ धुँधलके में एक छायामूर्ति झुक कर कुछ खोज रही थी। कन्धे की लाठी से साबुत गज़ा मछली खोलकर बाहारुल्ला ने लाठी एक कोने में टिकाई और उस छाया के सामने जा खड़ा हुआ। ध्यान से देखने पर उसे चेहरा पहचान में आया।

‘मातबर तुम! इतनी रात को यहाँ!’

‘बाहारुल्ला भाई, दरअसल मैं रास्ता भूल गया हूँ। गया था पंचायत की बैठक में। ऐसी गलती तो नहीं होती मुझसे पर क्या बताऊँ।’

बाहारुल्ला ने उनका हाथ पकड़कर बरामदे में बिठाया। उसके परिवार-जन तब तक सो चुके थे। पर आवाज सुनकर उनकी पत्नी ने लालटेन जलाकर दरवाजा खोला। वह भीतर घुसा और अपने गमछे में बंधी पोटली जमीन पर रख दी फिर एक पीढ़ा लेकर बरामदे की ओर बढ़ा और पत्नी को लक्ष्य करते हुए कहा, ‘थोड़ी तम्बाकू पिला सकती हो!’

76. बाँस द्वारा बनाई गई दीवार।

बाहारुल्ला के तीनों बेटे बीवियों सहित अपने कमरों में सो चुके थे। बाहारुल्ला की पत्नी ने जल्दी से हुक्का सुलगाया और दरवाजे के कोने से हाथ बढ़ाते हुए उसके लिए भात परोसने रसोई में चली गई। बरामदे से बीच के कमरे का बिस्तर नजर आता था। घर की गृहिणी इसी पर सोई थी। उसके आस-पास कई छोटे-छोटे बच्चे भी सोए हुए थे। हुक्के का कश लेते हुए रामप्रसाद ने एक बार उस बिस्तर की ओर देखा और फिर बाहारुल्ला को। बाहारुल्ला की उम्र उसी के बराबर रही होगी। उसका भरा-पूरा संसार है। अपनी अच्छी-खासी जमीन है। तीनों बेटों के साथ वह खुद चार बैलों की खेती करता है। खेतों में इतना धान उपजता है कि गृहिणी अपनी बहुओं के साथ उसे कूटकर चावल से कोठार भर लेती है। इस बार फसल बहुत अच्छी हुई थी। कुछ अब भी खेतों में खड़ी थी। वह सुबह-सुबह अपने बेटों के साथ उसे काटने जाएगा। उसकी पत्नी अपनी बहुओं के साथ मिलकर धान उबालेगी। उनके यहाँ भोजन पकाने के लिए दोमुंही चूल्हे हैं। लेकिन धान उबालने के लिए चारमुंही और छहमुंही चूल्हे बनाए गए हैं ताकि एक साथ चार-छह हण्डी धान उबाला जा सके, जिससे सिद्ध चावल (उसना चावल) बन सके। मुर्गा बोलने से पहले ही धान उबलना शुरू हो जाता था। जैसे ही आँगन में धूप उतरती, उबले हुए धान को फैला दिया जाता, जो दिनभर धूप में सूखता रहता।

लालटेन की रोशनी में सफ़ेद मिट्टी से पुता दालान चमक रहा था। रामप्रसाद हुक्का लौटाते हुए बोला, 'इस बार तो ख़ूब धान हुआ है।'

'जी मातबर !'

'जारी⁷⁷ नहीं गवाओगे !'

'नहीं, फसल ने पकना शुरू कर दिया, जारी-गाने वालों को खोजने का समय ही नहीं मिला।'

मुँह से धुँआ उगलते हुए रामप्रसाद ने दुआर की ओर ताका। इस पर कितनी बार जारी-गीत गाए गए होंगे। जारी की तैयारी के लिए देशभर के बड़े से बड़े उस्तादों को बुलाया जाता था। महीने भर ये उस्ताद टोले के बच्चों को जारी गाना सिखाते थे। उसके बाद निमन्त्रण भेजकर प्रतियोगिता के लिए किसी दूसरे दल को बुलाया जाता था। बच्चे और युवक कंधे से कंधा और कमर से कमर जोड़कर वीर-नाच⁷⁸ नाचा करते थे। उनके पैरों की धमक से जमीन काँप उठती थी। क्या ख़ूब

77. फसल पकने के समय पूर्वी बंगाल में गाया जाने वाला गीत।

78. वीर सैनिकों का नृत्य।

महफ़िल जमा करती थी।

‘भाई बाहारुल्ला, जारी-गीत सुनने में कितने अच्छे लगते हैं! एकाध गीत के बोल तो अब भी मुझे याद हैं-

मन चाहे उड़ जाऊँ कर्बला के मैदान
जयनाल के रुदन से मन क्या और मानेगा
बिरिक्षों⁷⁹ के पत्ते झड़ रहे हैं।⁸⁰

‘हाँ भाई!, गीतों की महफ़िल खूब जमा करती थी। मुझे भी एक गीत बहुत पसन्द था-

बच्चे तुम मत जाओ लड़ाई के मैदान
चारों ओर काफ़िरों का देश
मिल जाएगा जहर पर नहीं मिलेगा जल।⁸¹

‘वर्षों से ये गीत नहीं सुना। मेरे इसी दुआर पर न जाने कितनी बार जारी-उत्सव हुआ है।’ बाहारुल्ला ने कहा।

गीतों की इन महफ़िलों में मालो लोग भी बुलाए जाते थे। रामप्रसाद के कई-कई दिन बाहारुल्ला के दुआर पर बैठ गीत-रस पीने में बीतते थे। वीर और करुण-रस में डूबे ये गीत सुनकर श्रोता अपनी सुध खो बैठते थे। किसी से बीच में उठते नहीं बनता था। इधर कई सालों से मालो लोगों की फसलें अच्छी नहीं हो रही थीं। बेचारे किसान कर्ज के फन्दे में फँसते जा रहे थे। वे लोन-कंपनियों से कर्ज लेते पर उन्हें समय पर चुका नहीं पाते। किस्त चुकाते समय डाँट और अपमान से तंग हो कभी-कभी वे आत्महत्या तक को मजबूर हो जाते थे, भला जारी क्या गाते। लेकिन इस बार फसल अच्छी हुई थी। वर्षों से बेहाल किसान फसल काट उसे घर में लाने में लगे थे। जारी गाने की फुरसत ही किसके पास थी! मालो लोगों की काली-पूजा कब है?

‘बस, आने ही वाली है। इसी अमावस्या को ही तो है।’

‘इस बार गाना-बजाना होगा क्या?’

‘हाँ!, आठपाला⁸² करने का विचार है। चारपाला जात्रा और चारपाला कवि-

79. वृक्ष।

80. मने लय उड़िया जाई कर्बालार मैदाने/और जयनाले कांदने, मने कि आर माने रे,
विरिक्षेर पत्र झरे

81. बाछा, तुमि रणे जाइयो ना/चौदिगे काफ़िरेर देश/जहर मिले त पानी मिले ना

82. आठ खण्डों का लोक-नाट्य।

लड़ाई।’

‘आ..ठ..पाला..इतने रुपयों से तो मालोटोले में एक इस्कूल’ खोला जा सकता था।’

‘इस्कूल! मालो जीने की जद्दोजहद में पड़े हैं। इस्कूल क्या खाक जाएंगे। देखो मातबर, खुद तो कौआ क, खरहा ख नहीं सीखा! लेकिन अब कुछ-कुछ समझ में आता है कि आखिर काला आखर चीज़ है क्या? महजिद के किनारे एजमाली का जो मकतब है, सुबह-सुबह उसके पास जा खड़ा होता हूँ और बच्चों को पढ़ते सुनता हूँ। उनकी पढ़ने की आवाज मेरे कानों में शहद घोलती है।’

‘भाई बाहारुल्ला, मालो लोगों को उनके हित की बात समझाओ तो मारने दौड़ते हैं। इसी दुःख से तो मैं गाँव छोड़कर देशान्तरी बना।’

हुक्के का एक जोरदार कश लेकर बाहारुल्ला ने उसे एक ओर सरकाया और बोला, ‘मालो लोग सुख से हैं। मर तो हम किसान रहे हैं। घर में धान है तो क्या? लेकिन कमर में बाँधने को एक अच्छा गमछा भी नहीं जुटता। पाट बेचकर कुछ पैसे जरूर मिल जाते हैं, लेकिन लगान और महाजन से निपटते-निपटते सब खत्म हो जाते हैं। कितने ही किसानों ने अपनी जमीनें बेच डाली हैं। आप लोगों की दुआ से अब तक मेरी जमीन बची हुई है। आगे की अल्लाह जाने!’

‘ऐसा कभी मत करना बाहारुल्ला भाई! जब तक जिन्दा हो अपनी जमीन मत छोड़ना। मालो लोगों की बात दूसरी है। पानी पर उनकी डोंगियाँ बंधी हैं। ज्वार में वे ऊपर आती हैं और भाटे में नीचे उतरती हैं। जल पर उनका अगाध विश्वास है। लेकिन जमीन के साथ मनुष्य के जीवन का जो सम्बन्ध है, उसको नहीं छोड़ा जा सकता है।’

‘चलो मातबर, तुम्हें आगे तक छोड़ दूँ।’ रामप्रसाद ने बाहर आकर देखा, आकाश में चाँद ऊपर चढ़ आया था। झक्क उजला चाँद जैसे तेजी से अपना रथ दौड़ाता हुआ आगे बढ़ रहा था।

‘बाहारुल्ला भाई, तुम घर जाओ चाँदनी रात है। मैं अकेले आराम से चला जाऊँगा। जाओ, तुम्हें खाने में देर हो रही है।’

‘जो शिशु-चाँद आकाश के एक कोने से हामागुड़ी⁸³ करता चल रहा था, वह धीरे-धीरे उठ खड़ा हुआ और उसकी चाँदनी पूरे आकाश पर छा गई थी। पहले जो सुनील, स्वच्छ आकाश दूर से एक अदृश्य जगत जैसा दिख रहा था, वह मानो धीरे-

83. घुटनों के बल चलते हुए।

धीरे नीचे की ओर उतर आया और सुसुप्त मालो टोले पर चाँदनी की कनात-सा छा गया। एक-दूसरे से सटे कच्चे झोंपड़े इस पवित्र धवल चाँदनी में नहाकर मानो सिर ऊँचा किए खड़े थे। जगह-जगह उनकी छोटी-छोटी छायाएँ पड़ती दिख रही थीं। रामप्रसाद उन्हीं छायाओं पर पाँव रखते हुए आगे बढ़ रहे थे। चाँद उस समय मालो टोले पर अपनी अजस्र ज्योत्स्ना लुटा रहा था। ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे परीलोक की परिपूर्ण प्रफुल्लता विगलित चाँदनी के रूप में पूरे टोले को भिगा रही हो। शुभ्र आकाश की स्वच्छता और अपना सिर ऊपर उठाएँ घरों, बाड़ियों का यह आवेगमय आलिंगन अनिर्वचनीय था। इस दृश्य को टोले के किसी और आदमी ने नहीं देखा। देखा तो केवल रामप्रसाद ने।

हाँ, एक और आदमी था, जो इस दृश्य को देख रहा था, पर उसका देखना कितना निरर्थक और संवेदनहीन था। रामकेशव के दरवाजे पर पाँव रखते ही रामप्रसाद ने देखा कि वह फटाक से उठा और एक छलाँग में दरवाजे के एक कोने से दूसरी ओर पहुँच गया।

रामकेशव के दरवाजे पर रोशनी का तेज थोड़ा कम लग रहा था। दुआर पर भीगे बाँस की टहनियाँ रख छोड़ी गई थीं, जिनकी छाया जमीन पर पड़ रही थी। जाल के छिद्रों से मछली का सिर भले ही जाल में न घुस पाए, लेकिन चाँद की किरणों को उनमें जाने से कौन रोक सकता है! सटे हुए बाँस की दरारों से छन-छन कर दूधिया चाँदनी धरती को नहला रही थी। ऐसा लग रहा था जैसे किसी कुशल मालो बालिका ने रोशनी का एक अलौकिक जाल बुनकर रामकेशव के दुआर पर बिछा दिया था।

रामकेशव का घर उत्तरी टीले पर था। सामने दो छोटे-छोटे झोंपड़े और एक छोटा बरामदा बना था। टीले बहुत ऊँचे नहीं थे, घिसे हुए भी लग रहे थे। घर के पूरब में जनानखाना था। कभी वहाँ आबरू का पर्दा पड़ा होता था। लेकिन वह बहुत दिन पहले ही खिसककर गिर चुका था। पहले फटे पुराने जाल से टूटी-फूटी जगहों को ढँकने की चेष्टा की जाती थी, अब वह भी बन्द हो गई है। एक नजर डालने पर ही पता चल जाता है कि इस परिवार के लिए अब आबरू की रक्षा का कोई मतलब ही नहीं बचा था।

दुआर के एक तरफ़ बरामदे के ऊपर एक तरफ़ छाजन से उलझी हुई रस्सियाँ लटक रही थीं। उसी के पास चिथड़े हो चुके कुछ जालों की पोटलियाँ जमीन पर पड़ी दिखाई दे रही थीं। वह आदमी शायद उन्हीं के ऊपर कुत्ते की तरह गुड़ी-मुड़ी होकर सोया हुआ था। आहट पाकर वह हठात उठा और रामप्रसाद के सामने से लम्बे-लम्बे डग भरते हुए दुआर के अंतिम छोर की ओर चला गया। नंगे बदन, बस कमर में एक

गमछा लपेटे हुए, सिर पर उलझे हुए बालों का एक गुंजलक, चेहरे पर बेतरतीब बढ़ी हुई दाढ़ी। जब वह अचानक उठकर दौड़ा तो चाँदनी के जाल के बीच उसका धूलि-धूसरित काला बदन साफ़ नजर आ गया था। उसका शरीर अस्वाभाविक रूप से फूला हुआ था। रामप्रसाद उसे देखते ही पहचान गए थे। अपने झूलते हुए हाथों को और तेजी से हिलाते हुए मुँह बाएँ हमला करने की चेष्टा में वह उसी की ओर बढ़ा आ रहा था। फिर रामप्रसाद के चेहरे के बिल्कुल पास अपना मुँह लाकर एक म्लान हँसी हँसते हुए किसी ज्ञानी की तरह धीरे से बोला, 'तो मातबर, इतने दिन बाद ! अच्छा इधर आकर तो देखो। क्या काण्ड हो गया है !'

'ऐसा क्या काण्ड हो गया ? अबे साले, फिर क्या काण्ड कर डाला तूने ?'

'देखो तो सही आकर !' और वह रामप्रसाद का हाथ पकड़कर बरामदे में ले गया। एक दाव ⁸⁴ से उसने जमीन पर तीन-चार गड्डे खोद रखे थे, जो एक-दूसरे से सटे हुए थे। उन्हीं में से एक गड्डे को छूते हुए वह आहिस्ता से बोला, 'झाँककर देखो, क्या हो गया है ? लड़की चोरी हो रही है। यह रहा मेघना का मुहाना। यहीं खाड़ी है। जिधर से नाव आ रही थी, पर वह बड़ी नदी में कैसे जा पहुँची, पता नहीं ! और मौका पाकर लड़की चोरी हो गई। बाहर जगमगाती चाँदनी छिटकी हुई थी और भीतर घटाटोप अंधकार ! ऐसे में क्या लड़की चोरी हो सकती है ! तुम्हारा क्या खयाल है मातबर ?'

रामप्रसाद ने कुछ नहीं कहा।

शाम धिरते देख तितास की छोटी-छोटी मछलियाँ जल की गहराई में उतर जाती हैं, पर उनके अस्तित्व का आभास जल के ऊपर उठते उनकी साँसों के बुलबुलों से होता रहता है। जब वह गुड़ी-मुड़ी होकर जाल की पोटलियों पर सोया था तो उसके अस्तित्व का आभास भी उसकी उठती-गिरती साँसों से ही मिल रहा था।

घर के भीतर रामकेशव घोर निद्रा में निमग्न था। उसके खर्राटों की आवाज बाहर तक आ रही थी। वह रात के अंतिम प्रहर में मछली पकड़ने निकलता था। अभी उसकी नींद में खलल डालना ठीक नहीं था। कच्ची नींद में जागा आदमी शान्त दिमाग से नदी में जाल कैसे फेंक सकेगा। रात की उस गंभीरता में उसे जगाने का अर्थ उसके रोजगार पर प्रहार करना था। सुबह होने में अब देर ही कितनी-सी थी।

रामप्रसाद ने अधिक कुछ नहीं सोचा। चिन्ता और थकान से बोझिल वे जाल पर लेट गए। जाल की गर्माहट से उन्हें नींद आ गई।

लेकिन कुछ ही देर में उनकी नींद उचट गई। उन्हें लगा वही पागल उनसे सटा

84. खोदने काटने के लिए एक किस्म का चाकू / औजार

बैठा है। मिट्टी खोदने वाला दाव उसने पास ही रखा हुआ था। वह कुछ भी कर सकता था। उसके लिए तो सब सामान्य ही होता। जब रामप्रसाद की आँखें नींद से झपक रही थीं, तब भी उनका मन आतंकित था लेकिन अब उसे अपने से सटकर बैठे और टकटकी बाँधकर देखते पाया तो उनकी नींद पूरी तरह उड़ गई। उन्होंने अपनी अधमुँदी आँखों को मलकर देखा तो पाया, अरे ! यह तो रामकेशव था। तब तक रामकेशव ने उन्हें अपनी बाँहों में जकड़ लिया था। इससे दोनों की दाढ़ियाँ आपस में सट गई थीं और उनके हृदय एक-दूसरे की धड़कन सुन रहे थे।

वह उम्र में रामप्रसाद से कुछ अधिक ही था। शरीर में कभी बहुत ताकत रही होगी पर अब वह थका, दुर्बल और कमजोर दिख रहा था। उसकी दाढ़ी, बाल, भौंहें और कानों पर उगे अधिकतर रोयें पक चुके थे। रामप्रसाद के सन की तरह सफ़ेद बालों और दाढ़ी के नजदीक वह झुके हुए उस बूढ़े की तरह लग रहा था, जो आकाश के पथ पर दौड़ते-दौड़ते चाँद के बरामदे में घुस आया हो और अब एक बच्चे-सा दिखाई पड़ रहा हो। ऐसा लग रहा था मानो यह दो प्रागैतिहासिक शिशुओं का कोई अपार्थिव मिलन हो, उस स्तब्ध रात के सिवा इस इतिहास का कोई गवाह नहीं था। जो था, उसका होना, न होना बराबर था।

‘अरे मातबर ! आवाज क्यों नहीं दी ? कब आए, पता ही नहीं चला ! ठण्ड की रात है। तकलीफ़ हुई होगी।’

‘मातबर नहीं, मालो-पूत कहो मुझे, ऐसी कोई तकलीफ़ नहीं हुई। फिर गहरी नींद में कष्ट का क्या पता। मैंने सोचा रात के अंतिम पहर जब तुम नाव लेकर निकलोगे, तब मैं तुम्हारे साथ हो लूँगा। मुझे यात्रा-बाड़ी पर उतार देना।’

मैं रात को एक बार उठा था, तब मुझे लगा बाहर कोई है, आकर देखा तो तुम थे। पर मैंने जगाना ठीक नहीं समझा। पागल पास ही बैठा था। मैं भी तुम्हारे सिरहाने आ बैठा। अब मुझसे मुँह-अंधेरे जाल फेंकना और मछली पकड़ना नहीं हो पाता। खेप उठाकर जब नाव में डालना चाहता हूँ तो हाथ थर-थर काँपने लगते हैं। बड़ी नदी की हवा मेरे माथे और कानों को भेदती हुई निकल जाती है। ऐसा लगता है कोई कलेजे पर भोंथरी छुरी चला रहा है। अब क्या मेरी मछलियाँ पकड़ने की उमर रह गई है। उम्र तो मेरी संन्यास लेकर गुफ़्राओं में शरण लेने की थी, जहाँ बैठकर धूनी रमाता और दिन काटता। लेकिन विधाता ने बेटे को पागल कर दिया। दुनिया में कितने पागल ठीक हो जाते हैं लेकिन मेरा पागल ठीक नहीं होता, अब शायद होगा भी नहीं। आओ, घर के भीतर आ जाओ। मैं तमाखू सुलगाता हूँ। घर के अन्दर केरोसिन की ढिबरी टिमटिमा रही थी। बाहर निकलते समय शायद रामकेशव ही उसे जला गया होगा। उसके धुंधले

आलोक में घर के भीतर की मलिनता और अधिक स्पष्ट हो उठी थी। फटी चटाई पर मैली हो चुकी चिथड़ेनुमा गुदड़ी का बिस्तर बिछाया हुआ था। दो तकियों में से एक पूरी तरह फट गया था और उसकी रुई बाहर निकल रही थी। रामकेशव इसी पर सिर रखकर सोया था। उसकी दाढ़ी और बालों में अटके कुछ रुई के रेशे इस बात की गवाही दे रहे थे। दूसरे तकिए पर उसकी घरवाली सिर रखकर सोई थी, उसने एक भारी फटी हुई कथरी ओढ़ रखी थी।

‘अरी बुढ़िया, देख तो, कौन आया है?’

कथरी की पोटली में हरकत दिखाई दी और कुछ देर बाद मैले कुचैले बिस्तर के भीतर से झाँकते एक मलिन चेहरे ने पूछा, ‘इतनी रात को कौन रिश्तेदार आ मरा?’

‘चुप कर बदमिजाज! दामाद आए हैं।’

‘दामाद!’ बुढ़िया ने कई टूटे सूत्र जोड़ कुछ याद करने की कोशिश की पर कामयाब नहीं हुई। उसके दिमाग में किसी ऐसे रिश्तेदार का चेहरा नहीं उभरा। उसकी नींद से बोझिल आँखों में कीचड़ भरा दिख रहा था। उसके झुर्रियों भरे चेहरे पर नींद का प्रलेप-सा प्रतीत हो रहा था। बीच के दाँत टूटे हुए थे। वह रामप्रसाद को अवाक-सी ताके जा रही थी। घरवाली की ऐसी दशा देख रामकेशव को गुस्सा आ गया। उसने उसका हाथ पकड़कर बैठा दिया। कमर और छाती के उघड़े कपड़ों को संभालते हुए बड़ी कोशिश करके बुढ़िया ने पूछा, ‘कौन सा दामाद, कैसा दामाद! बताओगे नहीं तो जानूँगी कैसे?’

‘यात्राबाड़ी का दामाद है। बसन्त का बाप.. भगिनी-जमाई⁸⁵ है। दूर देश जा बसा है। भगिनी तो बहुत पहले मर चुकी है, इसलिए हमारे यहाँ आना-जाना भी नहीं रहा।’ अब जाकर बुढ़िया का दिमाग कुछ साफ़ हुआ, वह जैसे होश में आई और उसने तुरन्त घूँघट खींच लिया।

रात का सन्नाटा तोड़ते हुए कहीं दूर मुर्गे ने बाँग दी। मेहनतकशों की नजर में यह ब्रह्ममुहूर्त समय है। इसी समय किसानों की बहू-बेटियाँ धान उबालने के लिए अपने चूल्हे सुलगाने लगती हैं। मालो बहू-बेटियाँ हाथ-मुँह धोकर सूत कातने बैठ जाती हैं। जो मछेरे रात रहते नहीं निकल पाते, वे भी इसी समय कंधों पर जाल रखकर नदी की ओर रुख करते दिखाई पड़ते हैं। तभी कन्धे पर जाल और हाथ में हुक्का लिए रामकेशव घर के बाहर निकला और बोला, ‘दामाद जी, आज यहीं रुक जाओ।’

घरों के आँगन में सुबह की सुनहली धूप उतर आई थी। किसी भी घर की बहू-

85. भांजी का पति।

बेटी चुप नहीं बैठी थी। कोई भी बच्चा बिस्तर पर नहीं था। सब के सब आँगन में उतर आए थे। माँओं ने अपनी साड़ियों को दोहराकर बच्चों के गलों में गाँतियाँ बांध दी थीं। बाद में धूप तेज होने पर उन्हें खोल भी दिया गया था। नंगे बदन वे खेलने में मगन थे। काले-गोरे, सुन्दर स्वस्थ बच्चों का दल आँगन में हुल्लड़ मचाए हुए था। उन्हें देखते-देखते रामप्रसाद नदी की ओर बढ़ चले। चारों ओर फैली सुनहली धूप को देख आज उनकी खुद की आँखें भी चमक रही थीं। चुलबुले बच्चे उन्हें स्वर्ण-शिशुओं की तरह लग रहे थे। जिन्होंने सोने की हाड़ी-कूड़ी⁸⁶ में रुपहली चाँदी का भात पका कर चाँद-सूरज को अपने आँगन में भोजन करने का भौतिक निमन्त्रण भेजा था।

अनन्त भी अपने दुआर पर खेल रहा था। माँ ने अपनी सफ़ेद साड़ी दोहरी कर उसके गले में गाँती बाँध दी थी। रामप्रसाद उसके नजदीक जा खड़े हुए। सफ़ेद बालों और खिचड़ी दाढ़ी वाले एक बुजुर्ग को पहले तो अनन्त अपलक देखता रहा, फिर न जाने क्या सोचकर बरामदे से ही आवाज लगाई, 'माँ, ओ माँ।'

अनन्त की आवाज सुन माँ दौड़कर बाहर निकली लेकिन एक अजनबी को पास खड़े और भाव-विभोर आँखों से अपनी ओर ताकते पाकर वह ठिठक गई। न तो वह लौटकर भीतर जा पाई, न ही सिर का आँचल खींच घूँघट ही कर पाई।

रामप्रसाद थोड़ा आगे बढ़े और अनन्त का हाथ पकड़कर हँसते हुए बोले, 'तू मुझे देखकर डर रहा है। मैं तेरे लिए पंचायत करने थोड़े ही आया हूँ। मैं तो बस तुझे देखने चला आया। मैं दूसरे गाँव में रहता हूँ। मेरे घर में तेरी माँ जैसी कोई माँ नहीं रहती। मेरे आँगन में तेरे जैसे छोटे-छोटे नाती-पोते नहीं खेलते। तेरी माँ अगर इस गाँव में न आकर मेरे गाँव में अपना नया ठिकाना खोजती, तो जहाँ मेरा अकेला घर था, वहाँ दो हो जाते। एक ही मालो जाति के दो परिवार बस जाते!'

86. बच्चों के खिलौने रूपी बर्तन।

जन्म, मरण और विवाह

मालो लोग जन्म, मरण और विवाह इन तीनों संस्कारों पर खुलकर खर्च करते हैं। इस दौरान टोले में बड़ी धूमधाम हुआ करती है। हाँ, सबके लिए दौलत लुटाना संभव नहीं है। जिनके हाथ खाली हैं, वे भला क्या नहाएँगे और क्या निचोड़ेंगे? लेकिन जन्म, मरण और विवाह इन्हीं से तो दुनिया बनती है। इन तीनों की मदद से ही प्रकृति अपने संतुलन की रक्षा करती आ रही है। प्रायः सबके साथ इनका घटना सहज है। जन्म के बाद एक लम्बा अन्तराल, फिर विवाह, इसके बाद फिर एक लम्बा अन्तराल, अन्त में मृत्यु। यही स्वाभाविक नियम है। जिनके यहाँ जन्म के बाद ही मृत्यु आ जाती है, उनकी गिनती अभागों में होती है। हालाँकि इन तीनों ही संस्कारों पर पैसे खर्च करने पड़ते हैं लेकिन मालो लोग विवाह में किए गए खर्च को ही सबसे सार्थक और आनन्दपूर्ण मानते हैं। विवाह जवानी के आगमन का सूचक है। यह यौवन के फूटने की संभावना ही नहीं, बल्कि उसकी गारंटी भी है। युवावस्था के इस लोक तक पहुँचने का रास्ता जितना मसृण है, उतना ही खूबसूरत भी। इस रास्ते के दोनों किनारे फूलों के वन हैं, तितलियों की उड़ानें हैं और इन्द्रधनुष के रंग बिखरे हैं। यह रास्ता शुरू होता है बसन्त द्वारा बिछाए गए हरे गलीचे से ढँकी पहली सीढ़ी पर कदम रखने के साथ और जब खत्म होता है तब हरे-भरे पेड़ों का समापन समारोह हो रहा होता है। तब तक उन पेड़ों में फल लग चुके होते हैं। समय आने पर ये फल पक जाते हैं और चूँकि इन्हें सुखाकर तो रखा नहीं जा सकता, जाहिर है तब इन्हें झड़ना ही होता है। कालक्रम से पेड़ बाँझ हो जाते हैं और उनके पत्ते झड़ जाते हैं, जड़ें शिथिल पड़ जाती हैं और उनका जड़ से उखड़कर गिरना अवश्यंभावी हो जाता है। झड़ने वाले फलों के लिए न मनुष्य दुखी होता है, न उखड़ने वाले पेड़ों के लिए वह आँसू बहाता है।

क्योंकि जन्म, विवाह और मरण, इन्हीं से मनुष्य की दुनिया बनी है।

हर किसी के लिए इन तीनों घटनाओं की अनिवार्यता के बावजूद कुछ ही परिवार ऐसे भाग्यशाली होते हैं, जिनमें इन तीनों को क्रम से घटते देखा जा सकता है। लेकिन प्रायः ऐसे परिवार ही अधिक मिलते हैं, जिनमें ये तीनों घटनाएँ क्रमवार नहीं घटतीं। अतीत को यादकर खुश हुआ जा सकता है, सपने सजाए जा सकते हैं, लेकिन उसे लौटाया नहीं जा सकता। जो हाथ की मुट्ठी में समा सकता है, वह है वर्तमान; और जिसकी आशा में आँखें उजली की जा सकती हैं, वह है भविष्य। कब, कैसे जीवन में क्या घट जाए, इसके बारे में सोचने का कोई अर्थ नहीं। जिसने जन्म लिया है, उसे एक दिन मरना ही होगा। जहाँ जीवन है, चूँकि वहाँ मृत्यु भी होनी ही है। इसी तर्क पर जन्म और विवाह की घटनाएँ भी घटेंगी, यह जरूरी नहीं। मालो टोले में केवल रामकेशव का घर इसी अभाग्यपन का मारा है। बूढ़े के पाँव कब्र में लटकते हैं, कभी भी अघटन घट सकता है। इस परिवार रूपी सूखे पेड़ पर भी कभी फल आएँगे, यह सोचने वाला निरा पागल ही कहलाएगा। और विवाह! जन्म के बाद विवाह के पहले ही जो आदमी पागल हो गया हो, उसके विवाह की बात सोचने पर तो कोई वास्तविक पागल भी दुविधा में पड़ जाएगा।

इस घर में अब कभी किसी जन्मोत्सव पर 'उलूक ध्वनि' नहीं सुनी जाएगी, न विवाहोत्सव पर हल्दी चढ़ेगी, न गीत गाए जाएँगे। कुछ दिन बाद इस घर में एक ऐसी आवाज सुनी जाएगी, जिसकी कल्पना से भी दिल काँपता है। मन का सारा आनन्द काफूर जाता है। लेकिन रामकेशव का घर कोई मालो टोले का प्रतिनिधि थोड़े ही है। यहीं कालोबरन का भी घर है। जिसके परिवार में एक के बाद एक तीन-तीन विवाहों की उलूक-ध्वनि गूँजी है। झम-झम करती हुई तीन-तीन बहुएँ उतरी हैं। तीनों फली-फूली लताएँ हैं। होड़ लगाकर बारी-बारी से बच्चे जनती जा रही हैं। इस घर में बच्चों का जन्मोत्सव पूरे धूम-धड़ाके से मनाया जाता है। अन्नप्राशन का तो कहना ही क्या!

कुछ दिन पहले की बात है, मँझली बहू पेट से थी। पति और खुद का खाना-पीना निपटाकर वह घूरे पर जूठन फेंकने जाया करती, वहाँ से उसे अनन्त की माँ के घर का सब-कुछ दिखाई देता था। अनन्त उस समय बेंत की कुछ टहनियों, एक दाव तथा ऐसी ही कुछ फेंकी-फांकी बेकार-सी चीजों के साथ पूरी तन्मयता से खेलने में डूबा रहता। वह मँझली बहू का निस्तेज चेहरा और अस्वाभाविक बेढंगी चाल का कारण कभी समझ नहीं पाता था।

एक दिन कालो की माँ को बेहद व्यस्त देखा गया। वह दौड़ती हुई अनन्त के द्वार पर आई और उसकी माँ को पुकारा। अरी अनन्त की माँ! जल्दी आ। जोकार देनी है। अनन्त की माँ उसके पीछे-पीछे चल दी। पाँच और घरों की औरतें न्योती गईं। वे सब

जाकर एक छोटी-सी कोठरी के द्वार पर खड़ी हो गई। सब बड़ी उत्कंठित लग रही थीं। अनन्त की माँ भी उनमें जा मिली थी। माँ से सटककर अनन्त भी खड़ा था। कहाँ से क्या हुआ, उसे पता नहीं चल रहा था। तभी एक ने याद दिलाया, 'बेटा हो तो पाँच और बेटे हो तो तीन बार जोकार देना है।' अनन्त के लिए यह बात भी अर्थहीन थी।

कालो की माँ कोठरी के भीतर न जाने क्या उलट-पलट कर रही थी। अचानक उसने बंद किवाड़ों की फाँक से झाँककर कहा कि मुश्किल टल गई। तुम सब जी भरकर जोकार दो। सबने मिलकर जोकार से पूरा आँगन गुँजा दिया। नवजात शिशु के इस मांगलिक स्वागत के बाद औरतों ने घर के भीतर झाँककर देखा। कौतूहलवश अनन्त ने भी झाँका तो मंझली बहू का एक और ही रूप देखने को मिला। बेहद दुर्बल वह जमीन पर चित्त पड़ी थी। बाल बिखरे थे। प्रसव-पीड़ा के दौरान उसके चीखते मुँह में उसी के बाल ठूस दिए गए थे। बेहोश पड़ी मंझली बहू के मुँह में अब भी कुछ बाल दिखाई पड़ रहे थे। खून से सनी मंझली बहू के नजदीक मनुष्य का नन्हा-सा टुकड़ा भी दिखाई दे रहा था। मक्खन-सा नर्म और सींक के गुड्डे-सा दुर्बल। बहू का पेट फाड़कर इतना-सा मनुष्य बाहर कैसे आया होगा ?

नवजात को एक चिथड़े में लपेट कालो की माँ मंगलध्वनि कर रही औरतों को दिखाने के लिए दुआर पर आई। सबमें उसकी एक झलक पाने की होड़ लग गई। धक्का-मुक्की में अनन्त पिछड़ गया। किसी तरह उसे शिशु की झलक-भर दिखाई पड़ी। छठवें दिन एक कमरे में कलम-दवात रखी गई। रात को चित्रगुप्त आएंगे और इस कलम से शिशु के ललाट पर उसका भाग्य लिखेंगे।

आठवें दिन आठ कलाई की रस्म होनी थी। टोले के अन्य बच्चों के साथ अनन्त को भी बुलाया गया। खोई, भुनी मटर और बताशों से उसने भी खोईंछा⁸⁷ भर लिया था।

तेरहवें दिन अशौच (अपवित्रता की स्थिति) खत्म हुआ। समूचा घर-आँगन, दालान लीपने-पोतने, धोने-पखारने के बाद नाई आया तथा कालोबरन और उसके दोनों भाइयों के तेरह दिन से बढ़े हुए बाल काटे। उनकी हजामत बनाई। इसके बाद पुरोहित आया। उसके मंत्रपाठ के बाद आँगन में एक चटाई बिछाकर उस पर धान की ढेरी रख दी गई। फिर मंझली बहू नई साड़ी पहन कर, अपने नवजात को एक नए रंगीन पोतड़े में लपेट गोद में लिए सौरघर (प्रसूतिगृह) से बाहर आई और चटाई पर रखी धान की ढेरी को पैर से चारों ओर बिखरा दिया। इस बीच टोले की औरतों ने सोहर⁸⁸ गाना

87. दामन।

88. बच्चे के जन्म के समय गाया जाने वाला गीत।

शुरू कर दिया था-

‘देख रानी भागवती,
तेरी गोद में नाचे खुद दयालु भगवान
नाच रे नाच गोपाल
खा रे तू खीर-माखन
नाच तो गढ़वा दूंगी हाथ की पछेली
एक बार नाच, दो बार नाच, तीन बार नाच.. देखूं मैं
नाच तो गढ़वा दूंगी हाथ की मोहन मुरली।’⁸⁹

कालोबरन ने पुरोहित को विदा करते समय कहा, ‘देखिए तो कर्ता, मुँह में प्रसाद देने का एक शुभ दिन देख कर बताइए तो। एक ही आयोजन में दोनों रस्म पूरी कर देना चाहता हूँ।’

पुरोहित ने पंचांग खोलकर बताया, ‘अन्नप्राशन के लिए परसों ही एक अच्छी साइट है।’

छोटी बहू का बच्चा कुछ बड़ा हो गया था। नीचे बिठा देने पर खुद ही अपना सिर संभालने लगा था। लोग कहते हैं मुँह में प्रसाद देने ⁹⁰ का यही सही समय है।

स्वभावतः दो दिन बाद ही घर में एक और उत्सव हुआ। इस दिन भी अनन्त की माँ को बुलाया गया। और भी अनेक औरतों को न्योता गया। उन्हें उत्सव-गीत ⁹¹ गाने का काम दिया गया। सबसे पहले नदी नहान की रस्म होनी थी। बच्चे को गोद में लिए छोटी बहू को बीच में कर गाती-बजाती औरतों का दल तितास के घाट पर पहुँचा। बहू ने पहले तीन बार तितास को प्रणाम किया, फिर अपने बच्चे के हाथ जुड़वाकर उससे भी तीन बार नमस्कार करवाया। एक अंजुरी जल लेकर बच्चे का सिर धुलवाया गया। इसके बाद साड़ी के आँचल से उसे पोंछकर नदी को सिर नवाने के बाद वह घर लौटी।

पलभर विश्राम के बाद सभी एक थाल प्रसाद लेकर राधा-माधव मंदिर जा पहुँचे। सबसे पहले प्रभु के चरणों में प्रसाद चढ़ाया गया। फिर छोटी बहू ने एक चुटकी

89. देख रानी भाग्यमान, रानिर कोलेते नाचे दयालु भगवान/ नाच रे नाच रे गोपाल/
खाईया क्षीर ननि, नाचिले बानाइबा दिबो हस्तेर पाचनि/ एक बार नाच दुइबार नाच
तीन बार नाच देखि/ नाचाइले गड़ाइबा दिबो हस्तेर मोहन बांसी

90. अन्नप्राशन

91. रस्म-विशेष पर आधारित पारंपरिक गीत

प्रसाद लेकर बच्चे के मुँह में डाला। बाकी प्रसाद आस-पास खड़े बच्चों में बाँट दिया गया।

मालो लोग विवाह समारोहों में सबसे अधिक मौज-मस्ती करते हैं। विवाह करने में जो सुख है, उससे ज्यादा उसे देखने में है। और जो विवाह करता है, उसके सुख का तो खैर कहना ही क्या! टोले-मोहल्ले के सब लोगों के लिए वह एक खास दिन होता है। जो सबसे प्रिय और निकट है उनके विवाह के बाद दुल्हन को विदा कराकर घर लाने और उसके साथ आमोद-प्रमोद में मालो बहुत आनन्दित होते हैं।

जो ब्याह नहीं करता, उसे अपनी रातें नरक की तरह काटनी होती हैं। इस टोले के गुरुदयाल की गिनती ऐसे ही लोगों में होती है। उम्र चालीस के आस-पास होगी। गाँव में एक दिन कालोबरन के छोटे भाई से उसका झगड़ा हो गया।

गुरुदयाल उस दिन बाजार के घाट पर कह रहा था। तीन शादियों से तीन-तीन बच्चों का बाप बनने के बावजूद यदि श्यामसुन्दर फिर से ब्याह करे तो चाँद पूरब में नहीं पश्चिम में उगने लगेगा।

कालो के भाई ने इस पर प्रतिवाद किया था, रहने दो। लकड़ी का कार-बार कर इतना धन किस लिए जोड़ा है। अन्त में अगर व्यापारी की बीवी साथ नहीं रही तो क्या रुई के तकिए के साथ रात बिताएगा। एक बार जो बात उसने कह दी तो उसे पूरा करके ही दम लेगा। अब कोई कुछ भी कहे, वह चौथा ब्याह कर के ही छोड़ेगा।

‘हाँ, बात तो सच कही। अन्त समय अगर ‘इस्तिरी’ साथ नहीं रही तो मरते वक्त मुँह में जल कौन डालेगा। पूत तो कुत्ते का मूत है।’

कालो के भाई को अभी हाल ही में पुत्र-प्राप्ति हुई है। वह पितृत्व के बोझ से गर्वित है। पुत्र जाति के ऊपर ऐसी भद्दी टिप्पणी से वह तिलमिला उठा था। ‘तुम ठहरे राजा निर्बसिया। बात भी वैसी ही कर रहे हो।’ वह बोल उठा था।

गुरुदयाल के लिए पितृत्वहीनता का यह अपमान असह्य था।

उसके मुँह से अभिशाप निकला, ‘जबान संभाल अपनी, भगवान करे, तू भी राजा निर्बसिया बन जाए।’

‘दुर-दुर..भाग यहाँ से..स्यावणा गाछ⁹² के कौए! इसी कारण तेरी यह गति हुई। बाल, दाढ़ी पक गई लेकिन सिर पर सोले का मुकुट (वर के सिर पर पहना जाने वाला मौर) नहीं जुटा।’

‘क्या बोला, फिर से बोलना जरा..मेरे माथे मौर नहीं सजा तो पंचायत में तुझे

क्यों जलन हो रही थी। मैं क्या रात-बिरात तेरे घर की चौखट लांग्रता हूँ। कभी तेरे दरवाजे पर दस्तक दी मैंने !’

‘अबे साले गुरुदयाल, रुक तो ज़रा, अभी लाठी मारकर तुझे तेरे बाप की शादी याद दिलाता हूँ।’ यह कहते हुए नाव की लगगी खींच उसे गुरुदयाल के सिर पर तान दिया। गुरुदयाल भी अपनी नाव से लगगी निकाल लाया था। नावों पर बैठे दूसरे लोग बीच-बचाव करने लगे। किसी ने कहा, अरे रामनाथ, माफ़ कर ! कोई बोला, गुस्सा थूक दे गुरुदयाल ! रामनाथ नासमझ हो सकता है, तू तो समझदार है !

अन्ततः कालो के भाई की बात ही सही साबित हुई। श्यामसुन्दर व्यापारी जिस उत्तर मुलुक से लकड़ियाँ लाकर अपना कार-बार करता था। एक दिन वहाँ से एक आदमी रेलगाड़ी में बरु⁹³ बैठाकर लाया और उसके घर छोड़ गया। खुद दूर देश जाकर ब्याह करने की जहमत तक उसे नहीं उठानी पड़ी। चिट्ठी-पत्री से ही सब ठीक-ठाक हो गया।

जिस दिन ब्याह की रस्म होने वाली थी, उस दिन शाम को टोला-घुमनी कुछ प्रौढ़ाएँ अनन्त की माँ के बरामदे में आ बैठीं। उनके बीच उस दिन होने वाले ब्याह का प्रसंग छिड़ गया। एक बताने लगी, नन्द की माँ बैपारी की पहली ब्याहता थी। उसका मायका मेरे मायके में था। हम दोनों एक ही साल पैदा हुए, शादी भी एक ही गाँव में हुई। वह बड़े घर की बहू बनी और मैं गरीब के घर आ गई। उसके हाथ में पहनाया गया सोने का कंगन और मेरे हाथ में थमाई गई भात राँधने की हण्डी ! लेकिन अब उन बातों का क्या मतलब ! क्यों बहिन, पुरानी बातें दोहराने से क्या लाभ ! आज बैपारी जिस से ब्याह कर रहा है, जानती हो, उसकी उम्र नन्द की माँ की पोती के बराबर है। बुढ़ऊ उसे लेकर क्या करेगा ? जब यह कली खिलेगी तब तक बुढ़ऊ के सूख कर झड़ने का समय हो जाएगा। अनमनी बैठी अनन्त की माँ का ध्यान खींचने की कोशिश करती हुई एक बोली, ‘अरे भाई, यह काम तो कौए की चोंच में सिन्दूरी आम पकड़ाने जैसा हो गया।’

वहाँ बैठी तीसरी औरत के मन की बगिया में भी रंगीन फूल खिल उठे थे, उम्रदराज होने के बावजूद उसके मन में अब भी रंगीनियत बाकी थी। दूसरों के ब्याह में बजते बाजों से उसे अपने विवाह की याद हो आई। मन की खुशी दबा पाने में असमर्थ हो उसने अनन्त को छोड़ा, ‘क्यों रे, ब्याह करेगा ?’

अनन्त इस विवाह की चर्चा तीन-चार दिन से सुन रहा था। वह किसी बात को

93. वधू

समझ तो नहीं पा रहा था लेकिन इतना जरूर जान गया था कि ब्याह कोई खराब चीज नहीं है। इसलिए उसने बड़ी ही सहजता से कहा, 'करूंगा।'

'अच्छा बता तो, ब्याह क्यों किया जाता है?'

सवाल जटिल था लेकिन क्षण भर अपनी बुद्धि पर जोर डालते हुए अनन्त ने पूरे विश्वास से कहा, 'इसमें भात रँधवाया जाता है।'

ही..ही..ही कर दाँत निपोरते चौथी प्रौढ़ा बोली, 'नहीं..नहीं, तू नहीं बता पाया। ब्याह करके लोगों को बरु की टांग को कन्धे पर उठाना पड़ता है, समझे!'

इस उत्तर से अनन्त को जरा भी संतुष्टि नहीं हुई। उसने मन ही मन सोचा। ऐसा तो हो ही नहीं सकता। लेकिन अगर ऐसा होता है, तब तो शादी बड़ी भारी मुसीबत है।

'मुझसे ब्याह करेगा?' प्रौढ़ा ने कहा।

उसकी मोटी-मोटी टांगों पर नजर गड़ाते हुए भयातुर अनन्त ने कहा, 'ना बाबा..ना!'

शाम ढले जब अनन्त अपनी माँ के साथ विवाह मण्डप में पहुँचा तो भौंचक्का खड़ा रह गया, उसे लगा जैसे वह विवाह नहीं बल्कि एक कौतुक-भरी कहानी की दुनिया में आ गया हो। अन्तर बस यही था कि कहानी में जो पात्र होते हैं, वे दिखाई नहीं पड़ते। बस उनके बारे में सुना जाता है, लेकिन यहाँ तो जो सुना जा रहा था, उसे वह साफ़-साफ़ देख भी रहा था।

माथे पर टोपर ⁹⁴ पहने जो चुपचाप सामने बैठा था, वह किसी विराट दैत्य से कम नहीं था। एक छोटी-सी बच्ची को उसके कारिन्दों ने पकड़ लिया था और उसे लाकर दैत्य की गुफ़ा में बन्दी बना दिया था। लड़की अपने चारों ओर लोग ही लोग देख रही थी। भागना संभव नहीं था, शायद इसलिए चुपचाप बैठी थी। इस समय तो दैत्य की परिक्रमा कर उसके सिर पर फूल-चन्दन छिड़क उसे संतुष्ट रखना ही ठीक लग रहा था। ज्यों ही दैत्य के नौकर-चाकर इधर-उधर होंगे, वह मौका पाकर वहाँ से निकल भागेगी। पर जाएगी कहाँ! शायद वहीं जहाँ उसके खेल के साथी उसका इंतजार कर रहे थे। अगर वह भागकर अनन्त के घर चली जाए तो कितना अच्छा हो। माँ जरूर कुछ दिन उसे छिपा कर रख लेगी। दैत्य टोले भर घूम-घूमकर उसे खोजता हुआ मर जाएगा, पर वह मिलेगी नहीं। अन्त में एक दिन मन की पीड़ा से तंग आकर वह खुद भी तितास के जल में डूब मरेगी।

तभी अनन्त का ध्यान टूटा, देखा कि उसके पास कोई बताशे की एक बड़ी हण्डी लिए खड़ा है। उसकी ओर एक मुट्ठी बताशे बढ़ाते हुए कहा गया, 'ले, बताशे

94. सोले का मुकुट

ले, उधर किधर देख रहा है !’

अनन्त ने हाथ बढ़ाकर बताशे ले लिए थे। श्यामसुन्दर का विवाह सम्पन्न हो चुका था। समापन के मधु-प्रतीक के रूप में नाई दादा गुरुवचन बाँच रहे थे-

‘सुनो सुनो सभी जन सुनो लगाकर मन
शिव-विवाह कथा का अपूर्व कथन
कैलाश के शिखर पर शिव थे ध्यान-मगन
उमा से नारद ने ठीक कर दिया लगन
शिव को देख रोए उमा की माई
ऐसे बूढ़े से नहीं होगी उमा की सगाई
लेकिन शिव को पा खुश थी उमा
पूरा हुआ शिव विवाह बोलो हरि-हरि।’⁹⁵

श्यामसुन्दर गुरुवचन सुनकर चौंक पड़ा था। यह कथा कहीं उसी के लिए तो नहीं सुनाई जा रही थी ! हो भी तो क्या फर्क पड़ता है, अन्त में तो जीत उसी की होगी। उमा की माँ जो भी सोचे, खुद उमा तो खुश है ना !

विवाह-मण्डप खाली होने के पहले ही अनन्त की माँ उसका हाथ पकड़कर घर की ओर बढ़ चली। रास्ते में अनन्त को हाथ के बताशे बेकार लगने लगे थे। वह मन ही मन इस विवाह में हुए अपने अनुभवों के बारे में सोचने लगा था। कई अनजानी गाँठें खुद-ब-खुद खुलने लगी थीं। इस विवाह में श्यामसुन्दर ने खुलकर खर्च किया था। मालो टोले के सभी लोगों को महाभोज कराकर उसने सबकी बोलती बन्द कर दी थी।

मालो टोले में काली पूजा का समारोह सबसे भव्य होता है। विदेशों तक से कारीगर आते हैं। पूजा के एक महीने पहले से ही मूर्तियाँ बनाने का काम जोर-शोर से शुरू हो जाता है।

वहाँ बाँस का पण्डाल अनन्त के लिए बड़े विस्मय की चीज थी। उसे बनाने में पाँच दिन लगे थे। एक बोझा बिचाली ⁹⁶ लाई गई। पाट की बारीक डोर से बिचाली को मरोड़-मरोड़कर बाँधा गया और निर्मस्तक मूर्तियाँ तैयार की गईं। पूरा ढाँचा केवल बाँस पर खड़ा था। मूर्ति उसी पर बनाई गई। पहले मूर्ति की पीठ बनी, फिर हाथ-पैर

95. सुन सुन सभा जन सुन दिया मन/शिवेर विवाह कथा अपूर्व कथन/कैलाश शिखरे शिव ध्याने ते आछिलो/उमार सहित बिया नारदे घटाइलो/शिवेरे देखिया कांदे उमा देवीर माँ/एमन बुड़ा रे आमि उमा दिबो ना/शिवेरे पाइया उमा हर्षित होइलो/सांग होइलो सिवेर बिया/ हरि हति बोलो

96. धान के सूखे डन्ठल।

और अंततः पूरी मानव-आकृति तैयार हो गई। बस सिर और मुखमण्डल नहीं था।

एक दिन एक बोझ मिट्टी तितास के किनारे गिराई गई। उस मिट्टी में पाट के रेशों को सानकर मालो बालकों को पानी डालने की जिम्मेदारी दी गई। उन्होंने कूद-कूद कर अपने पैरों से मिट्टी को खूंदकर नरम कर दिया था। उस ढांचे पर इसी मिट्टी के लेप से मूर्ति बनाई जानी थी। जाहिर है, इस मिट्टी में काम करना एक गर्व की बात थी। खासकर, बच्चों के लिए।

कारीगरों ने इस मिट्टी को लेपकर मूर्ति की देह निर्मित की। जब उसके धड़ पर सिर स्थापित किया तो मूर्ति देखने में इतनी जीवन्त लगने लगी, मानो अभी बोल पड़ेगी। फिर जब उस पर खड़िया से रंग कर दिया गया तो अनन्त को लगा कि कारीगरों ने अपना काम पूरा कर डाला। बस अब इसी की पूजा होगी। पर कब होगी पूजा? धत, बैल कहीं का! अभी इसमें बहुत काम बाकी है। अब सफ़ेद पुताई पर भी रंग किया जाएगा। तरह-तरह का रंग। जब नेत्र बनाकर उनमें रंग भर दिया जाएगा, तब काम पूरा समझो।

साथी का आश्वासन पाकर अनन्त दूसरे दिन फिर आया। लेकिन उसे निराशा ही हाथ लगी। पर्दा लगाकर मण्डप का सामने वाला हिस्सा ढँक दिया गया था। कारीगरों के भीतर आने-जाने के लिए एक कोना-भर खुला था। अनन्त ने उसी कोने में आँख गड़ाकर देखा कि छोटी-छोटी कई कटोरियों में तरह-तरह के रंग घुले रखे थे। उनमें तूलिका डुबोकर कारीगर तेजी से हाथ चला-चलाकर प्रतिमा को पूरा करने में लगे थे। मूर्ति प्रतिक्षण नए से नया सुन्दर आकार लेकर विचित्र रूप धारण कर रही थी।

कालो की माँ ने ही यह ठीक कर दिया था कि कल होने वाली कालीपूजा में वह खुद, अनन्त और वृंदा की माँएँ मिलकर संयमी (ब्रती) रहेंगी। इन संयमियों को पूजा के पहले निरामिष भोजन करना पड़ेगा और पूजा के दिन सुबह-सुबह नदी-नहान जरूरी होगा। जल, फल-फूल, भोग-प्रसाद आदि सजाकर गले में फूलों की माला पहन उन्हें लगातार देवी का नाम जपते हुए पुरोहित के निर्देश पर पूजा-सामग्रियाँ आगे बढ़ा देनी होंगी। पुरोहित के साथ ये भी प्रतिमा से जुड़े अनेक विधानों में सहभागी बन, उसकी सहायिकाओं का गम्भीर दायित्व वहन करेंगी। आधी से अधिक पूजा तो उन्हें ही सम्पन्न करवानी थी, लिहाजा यह उनके लिए बड़े गर्व की बात थी। पुरोहित तो केवल मंत्रपाठ के कारण ऊँचे आसन पर बैठते हैं। इससे अनन्त की माँ का भी गौरव बढ़ा था। इस मौके पर बार-बार उसे सुबला बरु के लिए बड़ी तकलीफ़ हो रही थी। इन सब कामों में तो उसे अद्भुत दक्षता थी पर कालो की माँ ने उसे मौका ही नहीं दिया।

दिन भर निर्जल रहने के बाद जब कारीगर मूर्ति की सजावट को अंतिम रूप दे

चुके तो पर्दा उठा दिया गया। सूरज ने अपने प्रकाश के पंख समेट लिए थे, इसलिए पण्डाल में रोशनी के लिए गैस-बत्ती जलाने का आयोजन चल रहा था।

माँ ने अनन्त को सख्त हिदायत दी थी कि इतनी बड़ी माँ की मूर्ति को अचानक मत देख लेना। पहले उसके चरणों पर नजर डालना, फिर धीरे-धीरे आँखें ऊपर उठाते हुए पूरी मूर्ति के दर्शन करना। सीधे उनका मुख-दर्शन किया तो डर जाओगे। पर अनन्त माँ की बात भूल गया और उसने एकबारगी देवी-माँ का चेहरा ही देख लिया, उसे बिल्कुल डर नहीं लगा।

कुछ ही देर में हाथ में प्रसाद लिए शुभ्र और दुग्ध-धवल पुजारिन के वेश में अनन्त की माँ पण्डाल में घुसी। उसने नई साड़ी पहन रखी थी। कहाँ मिली, यह पता नहीं। इस पोशाक में अनन्त को उसकी माँ अद्भुत सुंदर लग रही थी। पण्डाल के बाहर एक बाँस बँधा हुआ था, जिसके उस तरफ जाने की किसी को इजाजत नहीं थी। कोई कोशिश भी करे तो उसे डाँटकर भगा दिया जाता। उसने खुद इसका अनुभव किया था। और उसी की माँ सारी सामग्री लिए पण्डाल के भीतर मूर्ति से बिल्कुल सटकर खड़ी थी। देवी की मूर्ति के इतने पास जाने वाले जरूर साधारण लोग नहीं होते। अनन्त की माँ भी निस्संदेह असाधारण थी। उसकी देवताओं से भी जरूर बातचीत होती होगी। माँ के प्रति अनन्त के मन में अनिर्वचनीय श्रद्धा पैदा हो गई थी। वही माँ, जो आज देवी के इतने नजदीक खड़ी थी, उसे अपनी गोद में लेती थी, खिलाती-पहनाती थी। उसकी बड़ी इच्छा हो रही थी कि माँ एक बार उसकी ओर देख ले। उसकी दृष्टि का प्रसाद अनन्त के चेहरे पर बरसे। पर वह ही अभागा रहा। माँ बिना किसी की ओर देखे आगे बढ़ गई थी। एक बार भी नहीं देखा कि उसका बेटा अनन्त दीन-हीन की तरह दूर खड़ा उसे देख रहा था। पर माँ के लिए अनन्त ने गर्व का अनुभव किया।

इसके बाद बहुत देर तक उसे माँ नहीं दिखाई पड़ी। शायद वह घर चली गई थी। बाहर अमावस्या का घोर अंधकार था। पण्डाल के भीतर की तेज रोशनी के साम्राज्य से बाहर निकलते ही अनन्त अंधकार के महासागर में गिर पड़ा। अंधेरे में किसी तरह राह पहचानते हुए जब वह घर पहुँचा तो उसने दरवाजा बन्द पाया। माँ अभी तक नहीं लौटी थी। इतनी रात हो गई, घना अंधेरा है। इस समय वह कहाँ होगी! शायद उसे फिर पण्डाल जाना पड़े। यह सोचकर उसे अच्छा नहीं लगा। पर वह वापस लौट पड़ा। उसने दुस्साहस-भरी विजय-यात्रा शुरू कर दी। मन में अदम्य साहस जुटाए, बिना इधर-उधर देखे वह सीधे रास्ते पर डग भरने लगा। किस्से-कहानियों में उसने जिनकेबारे में सुन रखा था, कहीं आज वे मिल न जाएँ, लेकिन पूरे रास्ते ऐसा कुछ नहीं

हुआ। शायद उन लोगों को यह पता नहीं था कि अनन्त अकेले जा रहा था, जान जाते तो जरूर आ गए होते। उनके तो असंख्य नंदी-भृंगी⁹⁷ थे। अनन्त जैसे एक छोटे बच्चे को उठा ले जाना उनके लिए बेहद आसान काम था। इससे उसके आत्मसम्मान को ठेस पहुँची। वह उनके बारे में जानता ही कितना था। साथ ही, वे भी उसके बारे में ज्यादा कहीं जानते थे!

इसी मकान में पूजा की सारी सामग्री रखी थी। उसकी माँ जरूर यहीं किसी कमरे में होगी। पूजा के इतने उपकरणों के सामने किसी जलते हुए दिये के बिल्कुल पास शायद उसकी माँ मूर्तिवत बैठी हो। पास जाकर देखने पर वह उसे भगा तो नहीं देगी! पूजा के लिए माँ ने उसके कपड़े धो-फाँचकर साफ़ कर दिए थे, फिर भी वे उसकी माँ के कपड़ों जैसे उजले नहीं थे, न ही वह कभी माँ जैसा सुन्दर दिख सकेगा। इस समय उसका माँ के नजदीक जाना उचित नहीं होगा। लेकिन अंधेरे के महासागर को पार करने का आज उसने जो दुस्साहस किया था, यदि माँ को यह बात पता चली तो उसे गोद में बिठाए न बिठाए, पास बुलाकर समझाएगी जरूर कि फिर ऐसा कभी मत करना। नहीं माँ, मुझे अब डर नहीं लगता! माँ कहेगी, तुम्हें डर लगे न लगे, मुझे डर लगता है। अगर मैंने तुम्हें अंधेरे में खो दिया, तो फिर दूसरा अनन्त मैं कहीं से पाऊँगी। अगर वह ऐसा कहेंगी तो! माँ का कहा सच ही होगा। सचमुच वह एक और अनन्त कहीं से पाएगी? एक जैसे दो आदमी तो उसने देखे नहीं अब तक! नहीं-नहीं, उसे माँ को अपने दुस्साहस की बात बता देनी होगी।

उसने एक कमरे की ओर कदम बढ़ाए। दरवाजा खुला था। भीतर दिया जल रहा था। जिसके प्रकाश से बाहर तक रोशनी फैली थी। धुंधली रोशनी में किसी बच्चे को संदिग्ध रूप में घूमते देख किसी को भी संशय हो सकता था कि वह पूजा की कोई चीज चुराने आया होगा। तभी पीछे से किसी ने उसे जोर से डाँटा। अनन्त को यह बताने का मौका भी नहीं मिला कि वह अपनी माँ को खोजने आया था। डाँट खाकर वह चुपचाप पूजा-पण्डाल में लौट आया।

उसे असहाय हालत में खड़े देख किसी को उस पर दया आ गई। उसने अनन्त से पूछा- 'ए बच्चे, तू किस घर का है?'

अनन्त को इस सवाल का मतलब समझ में नहीं आया।

'अरे तेरे बाप का नाम क्या है?'

बाप नामधारी चीज दरअसल है क्या। यह तो अनन्त कुछ-कुछ ही समझता था,

97. शिव के साथी, चले-चपाटे।

उसके इस टोले के हम-उम्र बच्चों का कोई न कोई 'बाप' था। वे उन्हें घाट से लगे बाजार से भुने चने, मटर, बिस्कुट और संतरे आदि खरीद दिया करते थे। सुबह या रात को काम से लौट जाल समेटकर रखने के बाद किसी का बाप अपने बच्चे को गोद में उठा लेता, तो कोई अपने बच्चे का मुख चूमता, कोई गुदगुदी करता, हंसातरुलाता, तो कोई दोपहर में अपने हाथों से तेल मालिश कर तितास के घाट पर उन्हें नहलाता था। अपनी पत्तल से मछलियों के अण्डे चुनकर उन्हें भात के कौर के साथ खिलाता था। अनन्त को तो ऐसा कोई अनुभव था नहीं। बहुत दिनों तक देख-सुनकर मन ही मन विवेचना कर वह इस निर्णय पर पहुँचा था कि बाप नामधारी जीव यही सब किया करते थे। उसने यह भी गौर किया कि मालो टोले के बच्चे जो लाल-नीले कुर्ते पहना करते हैं, वे भी उनके इन 'बापों' द्वारा ही खरीदे गए होते थे। जिनके बाप हैं, उनको जाड़ा नहीं सताता। अनन्त को मन ही मन बड़ी कोपित हुई कि उसका कोई बाप क्यों नहीं है। ये सारे काम क्या माँ के हैं? उसका भी बाप हो सकता था अथवा कोई बाप रहा भी हो, उसके मन में यह बात कभी नहीं उठी। माँ ने भी कभी नहीं बताया, जबकि माँ उसे कितनी सारी बातें बताया करती है। कितना अद्भुत सवाल था। पहले किसी ने उससे यह क्यों नहीं पूछा! अनन्त को इस सवाल का कोई ओर-छोर नजर नहीं आया।

'अरे, यहाँ तू किसके पास आया है?'

इस बार बड़ा सीधा सवाल पूछा गया था। किन्तु पूरे वाक्य में उसे सिर्फ 'आया है' समझ में आया। जिसे पकड़कर वह बोला, 'वह तो अभी-अभी अंधेरे को जीतकर अकेला आया है। उसके साथ कोई नहीं है। वह अकेला आया है।'

'अरे विपिन, यह बैल किस परिवार का है?'

विपिन नाम के युवक ने प्रश्न करने वाले की ओर कौतूहल से देखा और यह कहते हुए आगे बढ़ गया कि 'तुम दूसरे गाँव के हो, इस गाँव में कौन आया, कौन गया, तुम कैसे जानोगे? इसकी माँ विधवा है। ये इस गाँव में हाल ही में आकर बसे हैं। कालोबरन बैपारी के घर के पास ही इन्होंने झोंपड़ा बांधा है। अधिक उत्सुकता हो तो सुबह जाकर खुद देख लेना।'

विपिन एक पतली कथरी ओढ़े हुए था। वह प्रश्नकर्ता के कानों में जाकर फुसफुसाया—'रहती है छोटे-से घर में, पर है बड़ी गुणवंती। ही ही ही..।' अनन्त ने बिना कुछ सोचे प्रतिवाद किया—'नहीं..नहीं।'

अनन्त को ठण्ड से काँपते देख किसी ने उसे अपने पास बुलाया। पण्डाल के सामने बाँस की खूंटियाँ गाड़, टीन से छाकर एक घर का ढाँचा बनाया गया था, जिसे

तीन तरफ़ चट (बोरे या पल्ली) से घेरकर एक ओर खुला छोड़ दिया गया था। पूजा देर रात होनी थी। अनेक बच्चे और बूढ़े कथरी-गुदड़ी लेकर चले आए थे तथा इस अस्थाई घर में बिछी दरी पर सो गए थे। इस घर और पण्डाल के बीच की जगह में मोटी-मोटी आम की लकड़ियों से रातभर के लिए अलाव सुलगा दिया गया था। जिसे दस-बारह लोग घेरकर बैठे थे। हण्डी भर तम्बाकू की टिकिया उनके सामने रखी थी। पाँच-छह हुक्के जल-बुझ रहे थे। आग के ताप और तम्बाकू के नशे से वे एक साथ उत्तप्त हो रहे थे। इन सबकी देह पर उम्र की छाप साफ़ झलक रही थी। उन्होंने कानों तक फेंटा बांधा हुआ था। कुछ ने कथरियाँ ओढ़ रखी थीं तो कुछ ने सूती कम्बल। उनके चेहरों पर दाढ़ी-मूँछ का जंगल उगा हुआ था। आग की लपटों के करीब बैठे ये लोग यदि अनन्त को अलौकिक प्राणी नजर आएँ तो इसमें अजीब क्या था! उनमें से ही एक के बुलावे पर अनन्त धीरे-धीरे दुविधाग्रस्त मन से उनके पास जा खड़ा हुआ।

‘जाड़ा लग रहा है क्या?’

अनन्त ने सिर हिलाकर हामी भरी।

‘ओढ़ने को कुछ नहीं है!’

उसने इस बार नहीं में सिर हिलाया।

‘इधर आकर बैठ जा। शरत काका थोड़ा सरको, इसे भी बैठने दो। बेचारा काँप रहा है।’

अनन्त भी उन सबकी तरह अलाव के पास बैठ गया और हाथ बढ़ाकर आग की लपटों से गर्माहट छीनकर अपने चेहरे पर मलने लगा।

सुबला बरु पूजा की तैयारी देखने आ रही थी कि उसकी नजर अनन्त पर पड़ गई। रसोईघर के बरामदे से आवाज लगाई- ‘ओ दीदी, ओ अनन्त की माँ, अपने बेटे के करतब देखो तो! बूढ़ों के दल में बैठ कर तुम्हारा बचवा भी बूढ़ा हो गया है।’

पूजा का प्रसाद सजाने के बाद कहीं जाकर माँ को बेटे की याद आई। उसने सोचा कि एक बार उसकी खोज-खबर ले ली जाए, आखिर वह है कहाँ! उसी समय उसे सुबला बरु ने पुकारा। बेटे को बूढ़ों के बीच बैठा देख उसको हँसी आ गई थी। मन में छिपी करुणा जाग गई। दूर से उसकी आधी पीठ ही दिख रही थी। जैसे बादलों की सात परतों के पीछे चाँद ढंक गया हो, वैसे ही बूढ़ों की मजबूत देहों के पीछे छोटे से अनन्त की देह ढँक गई थी। बड़ी देर तक माँ उसे खड़ी देखती रही। तभी उसने पाया, एक छोटा-सा हाथ दोनों ओर बैठे बूढ़ों की चादरें खींचने की नाकाम कोशिश कर रहा था। ठण्डी हवा से बचने के लिए बूढ़े भी आग से सटने में लगे थे। जो भी हो, थोड़ी देर बाद बादलों को परे हटाते हुए जैसे चाँद दिखा हो, वैसे ही अनन्त का अबोध

चेहरा माँ को नजर आया पर वह चाँद शीघ्र ही बूढ़ों के बीच फिर छिप गया। माँ ने सोचा, उसका बच्चा लोगों के बीच सुरक्षित है और वह आश्वस्त होकर फिर अपने काम-काज में लग गई।

अनन्त को जिस पूजा का कई दिनों से इन्तजार था, वह उसे देख ही नहीं पाया। असल में, जो लोग भीतर सो रहे थे, उन्हें देख अनन्त की आँखों में भी नींद उतर आई थी। वह भी उन्हीं के पास जाकर सो गया। आधी रात को जब कांसे का घण्टा बजाने के बाद पूजा होने लगी तो सब उठ गए। देवी को प्रणाम किया और प्रसाद लिया। पर अनन्त की नींद नहीं टूटी। जो बच्चे अपने बाप, भाई, चाचा-ताउओं के साथ आए थे, उन्होंने भी पूजा देखी, प्रसाद लिया और अपने घर चले गए। अनन्त तो किसी के साथ आया नहीं था। उसे कौन जगाता !

उसकी नींद टूटी तो दिन काफ़ी चढ़ आया था, जहाँ वह सोया था, वहाँ से सब उठकर जा चुके थे। उसने देखा, मूर्ति के दर्शन के लिए उन लोगों की भीड़ जमा थी, जो आस-पास के गाँवों से घाट पर बाजार करने आते थे। वे लगे हाथ धर्म कमाने की इच्छा भी रखते थे।

माँ तो इसी मकान में थी, शायद अब भी वहीं हो। यह सोचकर आँख मलते हुए अनन्त उसी ओर चल पड़ा।

माँ वहीं थी। वहाँ उसकी उम्र के ढेर सारे बच्चे इकट्ठे थे। एक विशाल पीतल के गमले ⁹⁸ (कड़ाह) में सारा चढ़ावा और भोग लेकर माँ अपने हाथ से उसे माख ⁹⁹ (मिला) रही थी। चीनी, बताशे, संदेश, केले, अरवा (भीगा) चावल आदि बहुत-सी चीजें मिलाकर माँ प्रसाद तैयार कर रही थी। सारे बच्चे दम साधे प्रसाद और अनन्त की माँ के चेहरे की ओर टकटकी लगाए हुए थे। उनकी नजर प्रसाद बनाते हाथों पर टिकी थी।

अनन्त को अपनी व्यस्त माँ के सामने जाकर खड़ा होना ठीक नहीं लगा। इसलिए वह भी बच्चों के दल में शामिल हो गया और उनमें से ही एक बनकर माँ की ओर देखने लगा।

इस तरह प्रसाद बन जाने के बाद माँ मधुकरी ¹⁰⁰ जैसे बड़े-बड़े गोले बनाकर बच्चों के हाथों पर रखने लगी। दूसरों की देखा-देखी अनन्त ने भी भीड़ में अपना हाथ बढ़ाया। उसे भी एक गोला मिल गया था।

98. चौड़े मुँह का एक बड़ा बर्तन।

99. सानना

100. पके हुए अन्न की भिक्षा

अनन्त ने गौर किया कि उसके हाथ पर प्रसाद रखते हुए माँ के चेहरे पर मुस्कान खिल आई थी। रात भर जागे हुए स्वच्छ किन्तु पीले पड़ते चाँद की रोशनी जैसी उसकी माँ की ममता भरी मुस्कान उसे बहुत अच्छी लगी थी।

इसके बाद अगले चार दिनों तक पूजा की धूम रही। लगातार आठ पाला जात्रा¹⁰¹ और कवि-गान¹⁰² होते रहे। मालो रोज रातभर जात्रा देखते और दिनभर कवि-लड़ाई। ये चार दिन उनके विश्राम के थे। नावें घाटों से बंधी रही और गाव में डूबे हुए उनके जाल धूप में सूखते रहे। न उन्हें खाने का होश था, न सोने का। पर कुछ दिन ऐसे मधुमय क्षणों में काट अब मालो-टोला ऊँघने लगा था। अत्यधिक आनन्द के बाद अवसाद का आना अनिवार्य है। मालो-पाड़ा भी पूजा-उत्सव के बाद अवसन्न हो बच्चों-बूढ़ों सहित नींद की गोद में ढुलक गया था। किन्तु रामकेशव का घर इस मामले में अपवाद था। जिसके घर से हमेशा के लिए आनंद ने विदाई ले ली हो, दुःख का अंधेरा उसके यहाँ स्थाई रूप से बस जाता है। यहाँ सुख के घने बादल कभी नहीं बरसते।

गाँव के मातबरों ने उन पर दया करते हुए कहा था- 'रामकेशव, तुम्हारे पगले का चन्दा हमने छोड़ दिया, पर अपने हिस्से का चन्दा तो दे दो।' वे लालटेन लेकर दरवाजे पर बैठे थे।

'नहीं देने पर काम नहीं चलने वाला..ये टलने वाले नहीं है।' रामकेशव ने सोचा था। उसने अपना हुक्का लेनदारों को थमाया और आवाज लगाई, 'मंगला रे, अरी मंगला..तू जाल खरीदना चाहती थी ना, कुछ पैसे हों तो ला, दे जा।'

तूफान को दिल में छिपाए उसने पुराना जाल बाहर निकाला। रूप दे मंगला पुराना जाल ले जाने ही वाली थी कि चन्दे की रसीद वाला युवक बोला- 'किशोर के बाप, अभी जाल मत बेचो। तुम्हारे बिना चन्दा दिए भी पूजा हो जाएगी। अगर ये जाल बेच दिया तो नया जाल खरीदने में तुम्हें महीनों लग जाएंगे। फिर क्या करोगे? मैं पंचों को समझा लूँगा।'

सुनकर रामकेशव को बहुत संकोच हुआ। बिना चन्दा दिए पूजा का प्रसाद कैसे खाएगा। दूसरों के चन्दे से हुआ गाना-बजाना कैसे सुनेगा। लोग क्या सोचेंगे?

पूजा की रात से लेकर पाला-जात्रा और कवि-गान के चारों दिन-रात उसने

101. एक प्रकार की नौटंकी, जो विभिन्न सामाजिक विषयों और मिथक-कथाओं को लेकर की जाती है।

102. आशु-कविता गान की प्रतियोगिता अथवा एक तरह की समस्या-पूर्तियाँ।

पागल को घर में बाँधे रखा। खुद भी न पूजा देखी, न प्रसाद लिया और न ही पाला-जात्रा और कवि-गान सुनने गया। चार रातें उसने नाले के मुहाने पर लगातार जाल फेंका और ढेर-सारी मछलियाँ पकड़ीं। उन्हें चढ़ी कीमत पर बेच कुछ पैसे भी कमाए लेकिन गरीब के हाथ में पैसे आते ही वे खर्च होने के लिए छटपटाने लगते हैं। उसने घरवाली को कहा- 'पागल की मंगल-कामना के लिए आलन्ती ¹⁰³ के दिन कुछ लोगों को भोजन कराने की इच्छा थी।' बुढ़िया बोली- 'यह तो साल का मुख्य-पर्व है। घर-घर पकवान बनेंगे। तुम्हारे यहाँ कौन आएगा? बताओ भला!'

'बात तो ठीक थी।'

मालो काली-पूजा के समय गाने-बजाने और आमोद-प्रमोद पर खर्चा किया करते थे, जबकि खाने-पीने पर उत्तरायण-संक्रांति के दिन। यह दिन पूस महीने का अंतिम दिन होता है। पाँच-छह दिन पहले से ही इसकी तैयारी होने लगती है। गुड़ीकोटा¹⁰⁴ की धूम मच जाती है। चावल से मूड़ी भूनने और सत्तू कूटने की जोड़-तोड़ लग जाती है। चावल की खुद्दी ¹⁰⁵ धोकर धूप में सुखाई जाती है, उसका पीठा बनाया जाएगा। त्योहार के पहले दिन औरतें रात-भर जागकर पीठा बनाती हैं। तरह-तरह के पीठे। आकार और रूप में नए-नए। ढेर सारे पीठे। दूसरे दिन सुबह से ही उसे खाने की होई-चोई लग जाती है। औरत-मर्द, बच्चे-बूढ़े पौ फटते ही तितास के घाट पर जा पहुँचते हैं और डुबकी लगाने लगते हैं। मछरे भी नाव में चढ़ने से पहले गमछा बाँध नदी में डुबकी मारना नहीं भूलते। ठण्ड से थर्राती देह से मछली पकड़ना बड़ा मुश्किल हो जाता है। उनके मुँह से हठात निकलता- धत्त तेरे की, त्योहार के दिन भी मछली पकड़ने का काम! और वे दो-चार खेप निकालने के बाद ही जाल खोल लेते। घर में बैठी औरतें और घाटों पर खड़े बच्चे नावों के आने की प्रतीक्षा करते रहते कि किसकी नाव सबसे पहले आएगी। जो जितने सवरे आएगा, उसे उतनी ही जल्दी पीठा मिलेगा। सुबह-सुबह खाने-पीने की रस्म पूरी नहीं हुई तो गाँव के नगर-कीर्तन ¹⁰⁶ की प्रक्रिया शुरू करने में भी देर होगी। गाँव भर में घूम-घूमकर कीर्तन करने के लिए सबसे पहले मालो टोले का दल निकलता था। उनकी देखा-देखी साहा-पाड़ा और योगी-पाड़ा के दल भी निकल पड़ते, लेकिन मालो लोगों के कीर्तन का जैसा जलवा होता है, वैसा और किसी का नहीं होता। बाकी दल कीर्तन करते हुए ऊँघते रहते थे, जबकि मालो इसे बेहद

103. उत्तरायण-संक्रांति (पौष महीने में आने वाला) का दिन

104. पतंग-उत्सव।

105. टूटा चावल।

106. एक किस्म की धार्मिक प्रभात-फेरी।

उत्साह से नाचते-कूदते, छल्लाँग लगाते, हवा में तैरते हुए सम्पन्न करते थे। कीर्तन के बीच में कदमे-बताशे लुटाए जाते थे। अद्भुत आनन्द का वातावरण होता था। मालो कीर्तन करते हुए लपक-लपककर कदमे-बताशे ¹⁰⁷ लूटते। इस बीच घर में उनकी औरतें नाना उपकरणों से पंचान्न-व्यंजन ¹⁰⁸ बनाने में व्यस्त रहतीं। जिस उत्सव के दिन घर-घर में छप्पन भोग पक रहा हो, उस दिन भला रामकेशव के घर निमन्त्रण खाने कौन आता। लेकिन रामकेशव के लिए अपनी इस इच्छा को दबाना मुश्किल हो गया था। उसने निश्चय किया कि वह राधा-माधव के मंदिर में 'सीधा' दे आएगा और यात्रा-बाड़ी से आए दामाद रामप्रसाद को खाने के लिए न्योत आएगा। अपनी पड़ोसिन मंगला बऊ, उसके बेटे मोहन, सुबला की ससुराल के सभी सदस्यों को निमन्त्रण देने के अलावा उसे एक और परिवार की भी याद आई। वह परिवार जो इस गाँव में नया आया था-अनन्त और उसकी माँ का परिवार बेचारी के बेटे को प्यार करने की उसकी बड़ी इच्छा होती थी। बुलाने पर वे जरूर आएंगे। शायद अब तक कालो की माँ उसे न्योत भी आई हो। उसके यहाँ तो खाने-पीने की बहार होगी। खाने का न्योता पाते ही सुबला बऊ और उसकी सास ने ढेर सारा चावल कूटकर रामकेशव के घर पहुँचा दिया, अपने घर में बनाने के लिए जो चावल कूटकर रखा था, वह भी दे आई। इस बार का पर्व अपने घर में न मना वे रामकेशव के घर में ही मना लेंगे।

रामकेशव जिस इच्छा को अपने मुँह से प्रकट करने का साहस नहीं जुटा पा रहा था, सुबला बऊ ने इसमें उसकी मदद की। चावल कूटने का मुख्य काम खत्म करने के बाद सास-बहू शाम के समय अनन्त की माँ के घर जा पहुँचीं और बोलीं, 'चलो उठो दीदी, पीठा बनाना है।'

'कहाँ?'

'उस सामने वाले मकान में! जिसमें एक पागल रहता है।'

अनन्त की माँ को जैसे साँप सूँघ गया हो। बोली, 'नहीं नहीं बहन, मेरे वे चीन्ह के, न पहचान के! न उन्होंने आज तलक कभी मुझसे भेंट-मुलाकात की, न मैं ही कभी उनके घर गई। दीदी, मैं नहीं जा सकूंगी।'

अरे दीदी, सोचो तो सही, मैं ही कौन सी उनकी चिर-परिचित थी। मेरी जान-पहचान हुई ना आखिर! मनुष्य का सम्बन्ध आने-जाने से बढ़ता है और पशुओं का एक के पीछे एक चलने से। दीदी, ना मत करो। बूढ़े लोग हैं। न जाने कब मौत का

107. चीनी की सख्त गोल मिठाई।

108. छप्पन भोग।

परवाना आ पहुँचे। मन में लोकसेवा की इच्छा जागी है, पर आज साल-भर के त्योहार के दिन लोग कहाँ मिलेंगे। एक राधा-माधव के मंदिर में मिला है, कुछ मेरे बाप के घर से जाएंगे और एक बड़े मातबर आएंगे। एक तुम्हारा अनन्त रहेगा। मेरे तुम्हारे जिम्मे तो बस पीठा बनाने का काम है। अनन्त की माँ को कुछ बोलने का मौका न देते हुए उसने अनन्त का हाथ पकड़ा और सीधे रामकेशव की रसोई में घुस गई। पहले साँचे का पहला पीठा उसने राधा-माधव के लिए अलग रख दिया और दूसरा पीठा अनन्त के हाथ में देते हुए उसे मचिया पर बैठने को कहा। साँचे से पीठे निकालते हुए वह नजर बचाकर अनन्त को प्रेम से खाते देखती रही।

अनन्त की माँ ने घर में शाम का दीपक जलाया, पर तुरन्त बुझा भी दिया। फिर किवाड़ बन्द कर निमन्त्रण-बाड़ी पहुँच गई। उस समय अनन्त सुबला बऊ के बगल में बैठा मस्ती से पीठा खा रहा था। पति-पुत्र को नदी नहाने भेज थोड़ी देर बाद मंगला-बऊ भी उनके साथ पीठा गढ़ने आ बैठी। तीनों मिलकर आपस में बोलती-बतियाती हुई तेजी से हाथ चलाने लगीं। एक बुढ़िया किशोर की माँ और दूसरी सुबला बऊ की सास, किसी भी तरह इन युवतियों से ताल मिला पाने में असमर्थ वे बेढंगे पीठे गढ़ रही थीं। थोड़ी रात गहराते ही दोनों एक दूसरे पर ढुलकने लगीं। उन्हें युवा-पीढ़ी ने छुट्टी दे दी और वे बीच के कमरे में जाकर खराटे लेने लगीं। बेचारे अनन्त को उन्हीं दोनों के बीच सोना पड़ा। तीनों को बराबर से नींद आ रही थी। ऐसा लग रहा था उस रात वे तीनों इस घर के मालिक थे और बाकी सभी मजदूर।

पागल को रात में नींद नहीं आती थी। आज तो उसका पागलपन और बढ़ गया था। कुछ देर पहले ही वह इन औरतों को घूर रहा था। अब बरामदे में बैठकर कभी गाने लगता, कभी प्रलाप करने लगता तो कभी दाव से मिट्टी खोदने लगता था। यह सब करके भी उसे चैन नहीं मिल रहा था। वह फिर से औरतों के पास आने के लिए उठा ही था कि मंगला की बऊ ने झट से किवाड़ बन्द कर लिए। यह देख पागल फिर से वहीं बैठ गया। देर तक बैठा रहा।

मंगला बऊ को अचानक आधी रात को किस्सा सुनने की इच्छा हुई। अनन्त की माँ को पकड़कर बोली, 'एक परस्ताव (किस्सा) सुनाओ ना बहिन! नए देश से आई हो, इस गाँव में नई हो। तुम्हारे पास तो सुनाने के लिए दुनिया भर के किस्से होंगे।'

अनन्त की माँ कुछ पल सोचती रही, उसके खुद के जीवन में इतने किस्से इकट्ठे हो रखे थे और वे किस्से स्वयं में इतने विचित्र थे कि उन्हें भुलाकर काल्पनिक किस्से कोई क्या बुने? न तो वे अच्छे लगेंगे, न ही वह अपने मन के दर्द को ठीक से बयाँ कर पाएंगी। उसके जीवन की विराट कहानी के सामने तो दुनिया की सारी कहानियाँ

नितान्त तुच्छ हैं, लेकिन यह कहानी तो यहाँ सुनाने की चीज है नहीं। और यहीं क्यों, कभी कहीं भी सुनाने की चीज नहीं। यह कहानी खुद जितनी कूल-किनारा विहीन है, उसका अपना भविष्य भी उतना ही अनिश्चित। इसे सहज ही किसी को खोलकर नहीं सुनाया जा सकता, लेकिन इसे मन की परतों में छिपाए रखने के लिए असीम धीरज चाहिए। कठोर आत्मसंयम चाहिए। सचमुच अपनी व्यथा-कथा को गोपन रखने के लिए उसे खुद पर ही बल-प्रयोग करना पड़ेगा। लेकिन उसने मन ही मन प्रतिज्ञा कर रखी थी कि अगर कभी नितान्त जरूरत पड़ी, ऐसा समय आया तो वह इसे प्रकट जरूर करेगी, उचित समय आने के पहले दिल चाहे चूरमार हो जाए, लेकिन वह इसे पूरी कोशिश के साथ छिपाए रखेगी। मंगला की बहू ने उसके अनमनेपन को ठोकर दी और कहा- 'क्यों री, बिन्दाबन की नारी ! कौन सांवाला-सलोना छोरा आकर मन में प्रेम की बंशी बजा गया। परस्ताव सुनाना है तो सुनाओ बहिनी ! मुझे टालमटोल नहीं भाता। कथा आती तो कहो, और नहीं आती हो तो वह भी कहो।'

कड़ाही के टग-बग खौलते तेल में एक पीठा छोड़ते-छोड़ते अनन्त की माँ ने कहा- 'मुझे तो एक ही किस्सा आता है। एक लड़की को देखकर एक पुरुष उसके पीछे पागल हो गया था। कहने लगा था कि मैं तुझसे ब्याह करूंगा।'

'ब्याह किया?'

'हाँ, किया।' कुछ देर की चुप्पी के बाद अनन्त की माँ ने जवाब दिया।

'फिर क्या हुआ?'

'फिर तो मुझे याद नहीं!'

'हाय दैया ! ये थी तुम्हारी कहानी ! क्या एक ही मर्द ने ऐसा किया। दुनिया के सारे मर्द औरतों को देखकर पागल हो जाते हैं। ब्याह करके ही दम लेते हैं। लेकिन असली कहानी तो ब्याह के बाद शुरू होती है। बहिनी तुमने तो वह सुनाई ही नहीं। मन में दबाए बैठी हो।'

'मुझे इसके बाद की कहानी सचमुच नहीं आती बहिनी। आती तो जरूर सुनाती।'

अनन्त की माँ की कहानी सुनकर वह चौंक उठी थी। सोचने लगी, इस लड़की को ये कहानी कैसे मालूम ! और उसने अनन्त की माँ द्वारा सुनाई गई कहानी को ही आगे बढ़ाया- 'तो सुनो, मुझे पता है माइया-पागल ¹⁰⁹ सचमुच कैसे पागल हो गया और उसका गहरा दोस्त कैसे मरा ! आगे मैं भी कुछ नहीं बताऊँगी।'

सुबला बरु ने कह तो दिया कि आगे वह कुछ नहीं कहेगी, पर थोड़ी देर रुकने

109. औरत के पीछे दीवाना।

के बाद उसने फिर कहना शुरू किया- 'यह एक पागल और उसके दोस्त के बचपन की कहानी है। एक लड़की की माँ उन दोनों को बहुत प्यार करती थी। लड़की तब नौ-दस साल की रही होगी। माघ-मंडल पर्व के दिन दोनों दोस्तों ने मिलकर उसके लिए चौयारी बनाई थी। लड़की की माँ ने उसी दिन तय कर लिया था कि इनमें से एक को वह अपनी बेटी सौंप देगी। बाद में उसने एक को चुन भी लिया। दोनों में जो उम्र में बड़ा था, वह उसे ज्यादा पसन्द आया। वह उसी को अपना दामाद बनाना चाहती थी। लेकिन उसका यह भावी दामाद एक दिन पागल होकर लौटा। उस दिन सबके भाव बदल गए। लड़की के बाप ने पागल के बाप से नजरें चुरानी शुरू कर दीं। पागल के बाप ने एक दिन उसे बुलाया और कहा कि तुम इस तरह बेरुखी क्यों दिखा रहे हो? बाजार जाते हो, तो मेरे दुआर का सीधा रास्ता छोड़ रामगति के दुआर वाला टेढ़ा रास्ता पकड़ते हो। क्या मुझे पता नहीं है। मैं तो पहले से ही भाग्य का मारा हूँ। भला पागल से तुम्हें बेटी ब्याहने को क्यों कहूँगा। फिर एक दिन ढोल-नगाड़े बजे और लड़की की शादी हो गई। किससे हुई, यह नहीं बताऊँगी।'

कहानी इसके आगे भी है। 'शादी के बाद एक दिन पागल का दोस्त नाव लेकर बड़ी नदी में मछली पकड़ने गया। रात में जोरों का तूफान आया और नाव साँ-साँ करती विपरीत दिशा में भागने लगी। उसे वश में करना असंभव हो गया था। पर नाव के मालिक बड़े ही चालाक थे। वे मुसीबत में खुद नहीं फँसते थे। जिन्हें मजदूर बनाकर रखा था, आपद-विपद में उन्हें ही धकेलते थे। नाव अगर किनारे से टकराती तो चूर-चूर हो जाती। उससे पहले ही उसमें सवार पाँचों लोगों को छलांग लगाकर उतर जाना था तथा कंधे और पीठ से नाव की गति को रोकना था। यह तय करके सब छलांग लगाने के लिए तैयार हो गए, लेकिन ऐन मौके पर सभी ने धोखा दे दिया। पागल के उस दोस्त को छोड़कर कोई नहीं उतरा। नाव के धक्के से वह चित्त हो गया। अकेला था, सो गिरने के अलावा कोई चारा नहीं था। नाव उसे पीसती हुई आगे निकल गई। वह किसकी नाव थी, ये सब जानते हैं, मैं क्यों बताऊँ ?'

'अगर तुम जानती हो तो नाम बताओ ना !'

'मत पूछो, मैं रो पड़ूंगी, मुझसे नहीं बोला जाएगा।'

'जिस लड़की की बात तुमने सुनाई, वह कौन है?'

'उसका नाम बसन्ती था। पर अब वह नहीं है, मर गई।'

वातावरण सहसा बेहद करुण और बोझिल हो उठा। मंगला बरु को यह अच्छा नहीं लग रहा था। सो माहौल को हल्का करने की कोशिश में बोल पड़ी- 'मैं भी कुछ-कुछ जानती हूँ।'

मंगला की बऊ ने ऐसा भान किया जैसे उससे ज्यादा इस कथा को कोई नहीं जानता। उसके बाद उसने अपना पूरा ध्यान साँचे में पीठा भरने में लगा दिया। और इस तरह देखा कि अगर वे उसके पैर भी पकड़ लें, तब भी वह इस कहानी का खुलासा नहीं करेगी।

मंगला बऊ ने अपनी रसीली कहानी के माध्यम से आबो-हवा को हल्का करने की कोशिश जरूर की, पर बात बनी नहीं। दो नारी-मन एक साथ एक ही काँटे से कैसे बिंधे थे, कौन बता सकता था। पागल चुप्पी साधे टुकुर-टुकुर उन्हीं की ओर देख रहा था, जिससे दोनों के मन और आहत हो गए थे। शायद वह कुछ सोच रहा था। लेकिन क्या, इस बात की कल्पना मात्र से उनके दिल की धड़कनें तेज हो गई थीं, और ऐसा लग रहा था जैसे दूर से आई किसी लहर ने उन्हें किनारे पर ला पटका हो। अनन्त की माँ का मन उद्वेलित हो उठा- 'बोलो न बहिनी ! कहानी पूरी सुनाओ ना। शायद इससे मेरे मन-प्राण को शान्ति मिले।' परन्तु मन की वेदना मुँह से कह भर देने से हल्की थोड़ी हो जाएगी। जिस कहानी की वियोगिनी नायिका वह खुद है, उसकी सखी को वही कहानी शुरू से अन्त तक मालूम है, लेकिन जिसके कारण यह सब घटा, वह आज सिर्फ़ श्रोता बनी हुई है। शायद यह बात उसे नहीं मालूम। इससे अधिक आश्चर्य की बात और क्या हो सकती है !

सुबला बऊ ने बिना किसी लाग-लपेट के अनन्त की माँ को प्रवास-खण्ड के दौरान किशोर के पत्नी-लाभ और पत्नी के अभाव में पागल होने के विवरण को विस्तारपूर्वक बताते हुए कहा- 'तो कन्या, इस व्रत-कथा का यहीं अन्त हुआ।'

अनन्त की माँ ने अपने आँसू छिपाते हुए हुंकारी भरी और कहा- 'हम्म'।

'तो अब समापन, घड़े पर बेल-पत्र रख दो।' सुबला बऊ ने कहा।

इसके बाद का जो हिस्सा अनन्त की माँ को मालूम नहीं था, वह और भी करुण था। किशोर से छीनकर बसन्ती को किस तरह सुबला को सौंप दिया गया और सुबला कैसे मरा, इसके बारे में सुबला बऊ ने दो-चार घटनाएँ और सुनाई थीं।

तो फिर आगे क्या हुआ ?

व्यापार पर निकला बेटा पागल होकर अपने घर लौटा था। कहाँ तो बाप ने सोचा था कि बेटा ढेर सारा धन कमाकर लौटेगा, जिससे वह धूमधाम से उसका ब्याह करेगा और बसन्ती को अपनी बहू बनाकर घर ले आएगा। परन्तु उसकी परोसी हुई थाली में राख पड़ गई थी। वह पागल होकर आया था।

बसन्ती के बाप का नाम दीननाथ था। वह इन दिनों रामकेशव को नजरंदाज करने लगा था। पहले उन दोनों में बहुत अपनापा था। जब बसन्ती और किशोर के ब्याह को

लेकर कानाफूसियाँ होने लगीं तो उनका अपनापा और बढ़ गया था। इन दिनों दीननाथ रामकेशव के दरवाजे की ओर ताकता भी नहीं, कहीं वह उससे कुछ पूछ न बैठे। लेकिन बहुत दिनों तक वह ऐसा नहीं कर सका। रामकेशव ने एक दिन झपटकर उसका हाथ पकड़ लिया और सुना ही दिया- 'आसमान में चाँद उगता है तो दूर-दूर के लोग जान-जाते हैं। मेरा किशोर पागल हो गया है, इसे कौन नहीं जानता। मैं क्या इसे ढँक-तोपकर रख रहा हूँ।'

दीननाथ से कुछ बोलते न बना।

'मैं क्या अपनी कसम दिलाकर तुम्हें एक पागल से बसन्ती को ब्याहने के लिए मजबूर कर रहा हूँ।'

'अरे दादा, ये क्या कह रहे हो, मैं क्या तुम्हें जानता नहीं। तुम भला ऐसी बात करोगे।'

'तब तुम इस तरह मुझसे छिपते-छिपाते क्यों चलते हो।'

'छिपता-छिपाता...तुम्हारा दुःख देखकर मेरा कलेजा फटा जाता है, इसलिए'

'मुझे मेरे हाल पर छोड़ दो, मेरे लिए किसी को रोने की जरूरत नहीं है।'

दीननाथ का कलेजा वेदना से छटपटाने लगा। एकमात्र संतान और वह भी पागल...घर-द्वार फोड़ता है, माल-असबाब तोड़ता है। बुक्का फाड़कर रोता है। बूढ़े पर आफ़त टूट पड़ी है। एक तो उग्र का यह पड़ाव, ऊपर से ऐसी जलन। पिछले कुछ महीनों में वह दुगुना बूढ़ा दिखाई देने लगा था। बुढ़िया की ओर तो देखते नहीं बनता। घनीभूत रुदन ने उसे गूंगा बना दिया है। उनको सहानुभूति देने की अपेक्षा नजर बचाकर चलना ही कहीं अधिक सहज है।

'बसन्ती का ब्याह कहाँ ठीक किया?'

दीननाथ ने अपराधी की तरह कहा- 'मैं तो चुप था, गड़बड़ तो मेरी घरवाली ने की। बोली, सुबल से अच्छा पात्र कहाँ मिलेगा? उसी को बुलाओ और बेटी का बेड़ा पार लगाओ।'

फ़िर एक दिन सुबला के साथ बसन्ती का ब्याह हो गया। उस रात आकाश में चाँद भी था, सितारे भी। दीननाथ के दरवाजे पर कदली वृक्ष के तले बसन्ती का हाथ पकड़ सुबल ने उसे अपनी पत्नी बना लिया। गाँव की औरतों ने मंगल गीत गाए, उल्लूक-ध्वनि की। जोर-जोर से बाजे बजे। इतनी जोर से कि रामकेशव के कानों के पर्दे फटने लगे। टिमटिमाती ढिबरी के सामने बैठा रामकेशव तमाखू पीता रहा। हुक्के की गुड़गुड़ाहट में बाजों की आवाज को दबाने की कोशिश करता रहा। उसके पास बैठी बुढ़िया ऊँघती रही। वह किसी भी चीज को गम्भीरता से सोचने की बोध-शक्ति शायद

खो चुकी थी। पागल ही में बोध-शक्ति कहाँ बची थी। वह निरर्थक ढंग से एक पुराने जाल को खींच-खींचकर फाड़ता रहा।

बड़ी रात तक बाजे बजते रहे, फिर वे भी शान्त हो गए। शायद तब तक विवाह-बाड़ी के सारे लोग सो चुके थे, लेकिन बूढ़े-बुढ़िया की आँखों से रात-भर नींद गायब रही।

इसके बाद एक-एक कर पाँच साल बीत गए। इन सालों में कितना-कुछ बदला, कितना-कुछ घटा, पर इसे कौन याद रखता।

लेकिन एक घटना को मालो टोले का कोई भी व्यक्ति नहीं भुला पाया था। वह थी सुबल की मौत। उसकी मौत बड़े दर्दनाक तरीके से हुई थी। कालोबरन की बड़ी नाव लेकर गहरी नदी से मछलियाँ पकड़ने गया था। सुबल ने कालोबरन से कहा कि वह मछली के व्यापार में उसे साझीदार बना ले, लेकिन उसने यह कहकर साफ़ मना कर दिया कि नाव उनकी, पूंजी उनकी। फिर वे एक मेहनतकश को हिस्सेदार क्यों बनाएँ? मासिक वेतन ले, अपना काम करे। यह सुनकर सुबल बरु ने कहा था, कोई जरूरत नहीं उनके साथ काम करने की। लेकिन शादी की, इतने लोगों को खिलाया-पिलाया। हाथ के सारे पैसे खर्च हो गए थे। आसाढ़ का महीना सामने था। कष्ट के दिन आने वाले थे। उन दिनों में वह खुद क्या खाता और पत्नी को क्या खिलाता? वेतनधारी नौकर होने के अलावा उसके पास रास्ता भी क्या था!

और एक वेतनधारी की औकात ही क्या है? जिसकी पूंजी वही मालिक। वह जिसे वेतन देता है, उसे जरखरीद गुलाम समझता है।

मेघना नदी के बीच से होकर कालोबरन बैपारी की नाव आगे बढ़ रही थी कि अचानक तूफान आ गया। ईशान कोण से उठी तेज हवा का झोंका नाव को धक्का दे-देकर किनारे की ओर फेंक रहा था। सबने मन बनाया कि नौका के तीर से टकराने से पहले वे कूदकर उतर जाएंगे और एक-साथ पूरी ताकत से इस नाव को धक्का देते हुए आसन्न दुर्घटना से बच जाएंगे। सबसे पहले सुबल को आदेश दिया गया- 'जल्दी करो, लगगी के सहारे कूदकर तीर पर पहुँच जाओ, फिर उससे धक्का देकर नाव को बचाओ। तुम्हारे साथ-साथ हम भी आ रहे हैं।'।

वेतनधारी नौकर के सामने हमेशा मालिक के आदेश का पालन मजबूरी रहा है। इसलिए फलाफल की चिन्ता न कर सुबल उनके आदेशानुसार नाव से कूदकर किनारे पर उतर गया, लेकिन डर के मारे और कोई नहीं उतरा। उसने लगगी के एक सिरे को नाव की तरफ बढ़ाया और अपने कन्धे से धकेलना शुरू किया। जिससे नाव की गति कुछ कम हो जाए लेकिन वह पूरी तरह रोक नहीं पाया। किनारे पर ढलान थी। नाव

तेजी से आई और किनारे पर चढ़ गई। सुबल उसके नीचे दबकर इस तरह पिसा कि फ़िर उठने का सवाल ही न बचा।

बसन्ती के हाथ का शॉखा ¹¹⁰ टूट गया था, माँग का सिन्दूर पੁँछ गया था। बस एक चीज जागती रही- इन मालिकों के प्रति गहरी नफ़रत और अव्यक्त क्रोध।

चार-पाँच सालों में वह काफ़ी-कुछ भूल गई थी। पति के लिए अब उसे बहुत कष्ट भी नहीं होता था। वह बहुत भयानक मौत मरा था, यह बात उसे जब-तब याद हो आती और वह सोचने लगती कि एक मालिक के असंगत आदेश पर एक मजबूर नौकर ने उसका पालन करने के लिए खुद को मौत के मुँह में क्यों झोंक दिया ?

पागल के मन की पोथी के वे पन्ने जिनमें उसके पागलपन का इतिहास दर्ज था, एक के बाद एक उलट-पलट गए थे। पुरानी यादों ने पल भर के लिए ही सही, शायद उसे चेतन कर दिया था। उसने अपनी और दुनिया की ओर देखने की सहज क्षमता फ़िर से पा ली थी। नहीं, शायद ऐसा कुछ नहीं हुआ था। दोनों औरतें रसोईघर में बैठी पीठा बना रही थीं। इन दोनों के साथ उसका जीवन गम्भीर रूप में जुड़ा हुआ था। इन दोनों को समीप पा शायद पल भर के लिए उसका मन भर आया था। शायद नहीं भी। एक साधारण आदमी के लिए किसी पागल के मन की थाह पाना सहज नहीं, डर भी लगता है, उन दोनों औरतों के एक साथ इतने समीप होने ने उसके मन में उद्वेलन जगा दिया था। नहीं तो हंड़िया-कुड़िया फोड़ना और जाल को खींच-खींच कर तोड़ना छोड़ वह किसी आम आदमी की तरह स्थिर बैठकर रोता नहीं !

रसोईघर में सुबला बरु की कहानी अब खत्म होने वाली थी और उसे यह साफ़ सुनाई पड़ रहा था कि बरामदे में बैठा पागल फफक-फफककर रो रहा था। अनन्त की माँ अपने मन की पीड़ा को छिपा नहीं पा रही थी। भीतर ही भीतर वह जबरदस्त तड़पन महसूस कर रही थी। लगता था अब रोई, अब रोई। लेकिन जीवन में सारी भावनाओं को दबाने की उसे ऐसी आदत पड़ गई थी कि उसने एक बार फ़िर अपने मनोबल से खुद को पत्थर की तरह सख्त बना लिया।

ढिबरी के मलिन प्रकाश में उसके पीले पड़ते चेहरे को देख सुबला बरु सिहर उठी थी। मध्य रात्रि की निस्तब्धता में उसका चेहरा एक अपार्थिव-सा आकार लिए दिख रहा था। उसके मन में अचानक एक सन्देह ने जन्म लिया। कहीं यह वही तो नहीं जिसे बड़ी नदी में ड़ाकू उठा ले गए थे। दिन का आलोक जिन वस्तुओं को सत्य और वास्तविक बनाए रहता है, रात की गहनता उन्हें ही अवास्तविक रहस्य में रूपान्तरित

110. सुहाग की सूचक शंख या हाथीदाँत की बनी सफेद चूड़ी।

कर देती है। सुबला बऊ के विवेक ने मानो काम करना बन्द कर दिया था। रात की गंभीरता ने उसकी कल्पना की उड़ान धुंधली कर दी थी। एकबारगी उसे लगा था कि यह वही है, लेकिन रक्त-माँस से बनी यह वह नहीं लग रही। शायद यह उसकी प्रेतात्मा हो।

सुबला बऊ को सोच में डूबा देख मंगला बऊ को लगा, शायद इसे नींद आ रही है। बोली- 'जा रे सुबला बऊ, थोड़ी देर अनन्त के पास जाकर सो जा।'

वह अनन्त के पास जा लेटी थी। उसने सोते हुए अनन्त को अपने कलेजे से लगा लिया, उसे ऐसा लगा जैसे बहुत दिनों बाद उसने सचमुच जीवन्त मिट्टी का स्पर्श पाया था।

अगले दिन सुबह पागल को वैसा ही देखा गया जैसा वह पहले था। अनन्त की माँ ने रात भर आँखें नहीं मूँदी थी। सुबला बऊ, मंगला बऊ और अनन्त निश्चिन्त होकर सो रहे थे। साथ में सो रही थीं दोनों बुढ़ियाँ भी। बूढ़ा भोर में ही मछली पकड़ने निकल गया था। उसे लौटने में काफ़ी देर थी। दिन चढ़ आया था। अनन्त की माँ ने इधर-उधर देखा। उसकी ओर किसी का ध्यान नहीं था। उसका दिल जोरों से धड़क रहा था। उसने कुछ पीठे लिए और उन्हें एक डलिया में कायदे से सजाया। मन में चिन्ता की लहरें उठ-गिर रही थीं। पागल की आँखें तो झपकी तक नहीं थीं। वह बरामदे के एक बाँस से घिरे कोने में बैठा था और दाव से जमीन की मिट्टी खोदने में लगा था। अनन्त की माँ उसके सामने जा खड़ी हुई। उसने गर्दन उठाकर देखा और हाथ के दाव को ऊँचा करते हुए उसे मारने दौड़ा। अनन्त की माँ चुपचाप खड़ी रही। उसने एक हाथ से डलिया उसकी ओर बढ़ा दी और दूसरे हाथ से उसकी पीठ और सिर को सहलाने लगी। ऐसा लग रहा था जैसे कोई सुन्दरी किसी जंगली जानवर को वश में करने की कोशिश कर रही हो। पागल ने अपने उठे हुए दाव को रोक लिया था लेकिन अभी शांत नहीं हुआ था। दाव की मूठ से उसने अनन्त की माँ की पीठ पर एक आघात जड़ ही दिया। पर उसने अपनी भौहों पर सिकुड़न भी महसूस नहीं होने दी। किंचित हंसी के साथ उसने एक पीठा उसके मुँह में ठूस ही दिया। किन्तु पागल मुँह फिराकर दरवाजे की ओर मुड़ा और एक तरफ़ भागने लगा।

अनन्त की माँ के मन में आशाएँ अंकुरित होने लगी थीं। शायद यह पागल एक दिन ठीक हो जाए। उस दिन सुबला बऊ के गले लगकर अनन्त की माँ देर तक रोती रही लेकिन सुबला बऊ को इस रुदन का कोई अर्थ खोजने पर भी नहीं मिला।

माघ का जाड़ा बीत गया था। बसन्त ने दस्तक दे दी थी। पागल के घर में एक मन्दार का पेड़ था। जिस पर एक कोयल आकर अक्सर कूजा करती थी। मौका

मिलने पर अनन्त की माँ वहीं जा खड़ी होती ताकि उसे एक नजर देख ले। वह चोर की तरह दबे पाँव जाती थी, कहीं कोई देख न ले। यह भी चिन्ता थी कि पागल की नजर में वह खुद न पड़ जाए। चैत बीतने वाला था और बसन्त भी जाऊँ-जाऊँ कर रहा था। ठीक इसी समय होली-पूर्णिमा आई। उत्तर के शुकदेवपुर की तरह इस गाँव के मालो लोगों ने भी होली मनाई, गीत गाए। सुबला बऊ खुद नहाई, अनन्त और उसकी माँ को भी नहलाया। इसके बाद अनन्त को कहकर बाजार से अबीर मँगवाया। फिर कहने लगी- 'चलो दीदी, उत्तरी अखाड़े के राधा-माधव को अबीर लगा आएँ।'

राधा-माधव कोई जीता-जागता प्राणी तो है नहीं, एक मूर्ति-भर है। उसे अबीर लगाकर क्या होगा? वह तो बदले में उन्हें अबीर लगा पाएगा नहीं! चुपचाप जितना भी अबीर लगाओ, लगवा लेगा। लेकिन इसमें भी एक नवीनता है। दस-बारह औरतें इस बहाने एक साथ कुछ मौज-मस्ती कर लेती हैं।

'चलो चलें!' अनन्त की माँ ने जवाब दिया।

राधा-माधव का रास्ता पागल के घर के सामने से गुजरता है, वह न जाने कहाँ से दौड़ता हुआ आया और उनकी राह रोककर खड़ा हो गया। उसने जिद पकड़ ली थी- 'ए गोपिनी, मुझे भी अबीर लगा ना!'

सुबला बऊ तंग आकर बोली- 'आज ये खुशी से पागल हुआ जा रहा है। अपने पागल को लोग बाँधकर क्यों नहीं रखते। एक कहावत है, दूसरे के पागल को देखकर ताली बजाई जाती है और अपने पागल को बाँधकर रखा जाता है।'

'तो फिर अपने पागल को ऐसे खुला क्यों छोड़ देते हैं? अड़ोसियों-पड़ोसियों को तंग करने के लिए।' उसने किसी तरह बगल काटकर सामने खड़ी मुसीबत से छुटकारा पाया। अनन्त की माँ पीछे खड़ी थी। उसने आवेग में आकर पागल की झाड़ियों की तरह बड़े हुए बालों और दाढ़ी पर मुट्ठी-भर अबीर मल दिया। पागल की आँखों में एक रहस्यमय भाव उतर आया। उसने कहा- 'मेरा अबीर कहाँ है..ही ही ही...।' यह कहते हुए उसने एक झटके में अनन्त की माँ के हाथ की अबीर से भरी थाली को जमीन पर गिरा दिया और भागकर अपने घर में घुसकर भीतर से किवाड़ लगा लिए। सुबला बऊ अवाक रह गई थी। बोली- 'दीदी तुमने यह क्या किया?'

अनन्त की माँ ने हंसते हुए कहा- 'आज के दिन तो सभी एक-दूसरे को रंग रहे हैं, लेकिन बहिनी, पागल को तो किसी ने नहीं रंगा। सो मैंने थोड़ा सा रंग लगा दिया।'

'अगर कोई देख लेता तो!'

'तो मैं कहती इस पागल ने मुझे भी पगली बना दिया है।'

'मसखरी छोड़ो दीदी! किसी दिन पागल ने तुम्हें पकड़ लिया तो न जाने क्या कर

बैठेगा? मुझे इसकी बड़ी फ़िक्र है। इसके पागल होने की कहानी तो तुम्हें पता नहीं!’

‘जानती हूँ रे! अच्छी तरह जानती हूँ। अपने किसी प्रिय पात्र को खोकर यह पागल हुआ है।’

‘उस प्रिय पात्र को, जिसे खोकर वह पागल हुआ है, क्या उसे मुझसे मिलवा दोगी?’

‘यह तो शायद न कर सकूँ, लेकिन कोशिश करके देख तो सकती हूँ। देखूँ, अगर मैं खुद ही उसकी प्रिय पात्री बन सकूँ।’

‘बसन्त ने तुम्हारे मन को बावला बना दिया है। मुझे लगता है तुम्हें एक मर्द की जरूरत है।’

अनन्त की माँ ने इसका कोई जवाब नहीं दिया। चुप साधे रही। प्रतिवाद कर बात को बढ़ने नहीं दिया। माँ का आँचल पकड़े अनन्त शान्ति से खड़ा सब देख रहा था। उसकी ओर इशारा करते हुए दबे स्वर में बोली- ‘जो सो, मत बोलो बहिनी, देख नहीं रही, बच्चा पास में ही खड़ा है।’

अनन्त को इसमें मजा आ रहा था। पागल का चेहरा परीकथाओं के किसी पात्र जैसा था और उसकी माँ ने उसे ही अबीर मल दिया। पागल ने उसकी अबीर की थाली गिरा दी। माँ का इतना सारा अबीर बर्बाद हो गया। अनन्त झुककर मिट्टी में मिला हुआ अबीर उठाने लगा था, तभी सुबला बऊ ने उसका एक हाथ पकड़ा और झटका देकर सीधा खड़ा कर दिया, बोली- ‘धत्त तेरे की, अब राधा-माधव को अबीर लगाने नहीं जाएँगे। उसे अबीर लगाने से क्या फायदा। अनन्त चल, चलें!’

घर लौटकर उसने अनन्त को अबीर लगाया, उसका मुख चूमा और कलेजे से लगा लिया। वह बड़ी देर तक उसे बाँहों में जकड़े रही। अनन्त का चेहरा बड़ा सुन्दर लग रहा था, दोनों आँखें, पूरी देह सब सुन्दर थी। जब बोलता तो उसकी बातें सुन्दर लगतीं। जब उसकी ओर देखता, तब वह उम्र से कहीं अधिक बड़ा, काफ़ी बड़ा नजर आता।

‘नहीं दीदी, मन पर काबू करो। मर्द को चाहकर क्या होगा? वे तो बारिश के पानी की बूँदें भर हैं, झर्रीं और खत्म! वे ज्वार का जल हैं, क्षणभर का सुख दे नदी के अन्तराल में समा जाते हैं। यह अनन्त ही हमारी आशा है और यही भरोसा। हम दोनों मिलकर इसे ही पाल-पोसकर अच्छा इन्सान बनाएँगे। यही एक दिन हमारा दुःखमोचन बनेगा।’

अनन्त की माँ जब भी सूत कातने बैठती, बैशाख की उदास हवा सामने के पेड़-पौधों के सूखे पत्तों को बटोर उसके घर में आ घुसती थी। इस समय की तेज हवा

बहुतों को चौंका देती। ऐसे में अनन्त की माँ के हृदय में छिपी शून्यता उसे और भी सालने लगती। यह हवा उदास भले ही हो, है बड़ी नटखट। बेवजह बाहर के सूखे पत्ते बटोर उसके घर में कूड़ा बिखरा जाती है। एक बार झाड़ू लगा कर उन्हें बाहर भी निकाल दो, पर कोई फायदा नहीं होता, वे फिर 'सूं सूं' करते अन्दर आ जाते हैं। उसी समय तेज हवा के झोंके की तरह अनन्त भी हाजिर हो गया। वह आम बीनने गया था। इस हवा से जिस तरह पेड़ों के सूखे पत्ते झड़ते हैं, वैसे ही आम के टिकोरे भी। अनन्त दोनों हाथों से जितने टिकोरे बटोर सका था, उन्हें छाती से चिपकाए बन्द दरवाजे पर खड़ा होकर माँ को पुकार रहा था- 'माँ, किवाड़ खोल, देख तो कितने आम हैं।'

माँ क्या अपने बच्चे की इस पुकार को अनसुना कर पाती। किवाड़ खोल वह उसे भीतर ले आई। 'देखूँ, कितने आम हैं। जा अपनी मौसी को बुआ ला।' अनन्त एक दौड़ में सुबला बऊ के दरवाजे पर पहुँच गया। वह बुलाए और सुबला बऊ न आए, ऐसा भला कैसे हो सकता था।

बारिश के दिन बड़े दुखदायी होते हैं। अनन्त की माँ के दिन भूखे पेट कैसे कटें, इस समय नदी मछलियों से भरी होती है, उन्हें पकड़ने के लिए मछरे अपने जालों की बुनाई पहले ही खत्म कर चुके होते हैं। इन दिनों सूत नहीं बिकता।

कताई में अब उसके हाथ भी नहीं चलते। जब उनकी माँग ही नहीं तो कातकर क्या लाभ! उसकी गृहस्थी पर बन आई थी। पेट भर अन्न के अभाव में अनन्त दिनों-दिन सूखता जा रहा था। सुबला बऊ अपने माँ-बाप की आँखें बचा एकाध टूरी¹¹¹ चावल, थोड़े से आलू-प्याज, कुछ मछलियाँ, नमक, तेल, हल्दी आदि चोरी छिपे अनन्त के घर पहुँचा देती। लेकिन उससे कितने दिन चलता! ऊपर से यह काम भी वह बहुत दिन नहीं कर पाई। एक दिन रंगे हाथों पकड़ी गई। एक तो माँ-बाप पर पहले से ही बोझ बनी हुई थी। ऊपर से किसी दूसरे के लिए चोरी। उसका जीवन भी क्या है, जैसे पानी के ऊपर तैरती कोई चीज। पाँव बढ़ाकर उसने अपने नीचे ठोस जमीन तलाशने की कोशिश जरूर की थी, पर वह भी कहाँ मिली। अब वह क्या करे? माँ ने डाँटा, बाप ने धमकाया। उसने सबकी गालियाँ चुपचाप सुन ली। उन्होंने उसे कड़ी चेतावनी दे दी। खबरदार, जो उसने अनन्त की माँ के दरवाजे पर कदम रखा। अब उनकी बात मानने के सिवा उसके पास और कोई चारा नहीं था।

अनन्त की माँ को चारों ओर अंधेरा नजर आ रहा था। भरोसे की एक हल्की रोशनी भी कहीं नहीं दिख रही थी। फूस की छाजन में छेद हो गए थे। रात-दिन पानी

111. हाथ की बुनी बाँस की डलिया।

टपकता रहता था। बाँस का बेड़ा भी जगह-जगह से टूट चुका था। हू-हू करती ठण्डी हवा तीर की तरह चुभती थी। जो साड़ी उसने पहनी थी, वह भी जहाँ-तहाँ से फट चली थी। कमर ढँकती तो छाती उधड़ जाती और छाती ढँकती तो उधड़े पैरों की गोरी चमड़ी पर लोगों की नजर गड़ने लगती थी। घर के जिस कोने में पानी नहीं टपकता, वहीं अनन्त को गोद में लिए चुपचाप बैठी रहती। कथरी-तकिया को भी नजदीक खींच भीगने से बचाने की कोशिश करती। आजकल अनन्त की माँ के दिन बोझिल हो गए थे। वे काटे नहीं कट रहे थे। सुबला बऊ की चाल-चलन इन दिनों ठीक नहीं है। उसकी माँ ने एक दिन अचानक यह खोज की। पश्चिम टोले का रहने वाला एक आदमी बाँस से बनी गुलेल पर मिट्टी की गोलियाँ चढ़ा वन-वन पक्षी मारता फिरता था। सिर पर घुंघराले बाल थे। नाम था -मैना। घूरे के पास छिटकी के पेड़ों का एक जंगल था। वहीं मैना एक पक्षी पर ताक लगाए बैठा था, लेकिन उसका निशाना चूक गया। अब वहीं बैठा गुनगुना रहा था-

‘तोता पाला, मैना पाली और पाला सालिक रे
सोनामुखी दहियल पाली, जो मेरी बात नहीं दोहराती।’¹¹²

सुबला बऊ घूरे पर कूड़ा फेंकने आई थी। मैना को देख उससे हँसते हुए बतियाने लगी। बस उसकी माँ ने यही देख लिया था क्रोध से बड़बड़ाती हुई वह बूढ़े के पास पहुँची और नमक-मिर्च लगाकर सारी बात कह दी।

दोनों के झगड़े, डाँट-फटकार आदि के बाद सुबला बऊ का मुँह खुल गया था। ‘मैं मैना से बतियाऊंगी, उसके साथ गाँव छोड़कर चली जाऊँगी। तुम क्या कर लोगे मेरा। खाना नहीं दोगे, नहीं खाऊँगी। कपड़े नहीं दोगे, नहीं पहनूँगी, लेकिन घर से निकल जाऊँगी। तुम्हारे चेहरे पर कालिख पुते, मेरा क्या ! मुझे अपने कुल-खानदान की कोई चिन्ता नहीं। मैं अपनी अकेली देह लुटा दूंगी, बरबाद कर दूंगी। जो मन में आएगा, वही करूँगी, तुम मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकोगे। सोचकर देखो, कितनी छोटी सी उमर में मुझे ब्याह दिया था। वह तो मर गया, मैंने तो न कुछ जाना, न समझा। उस अबोध अवस्था में धर्म की कैंची ने मुझे रांड बनाकर छोड़ दिया। कब से अपनी फूटी किस्मत लिए वन-वन रोती फिरती हूँ। तुम तो चैन से हो। मेरे दुख की नदी कितनी गहरी है, तुम नहीं समझोगे ! क्या मेरी कोई इच्छा-आकांक्षा नहीं होती। मुझे क्या किसी चीज की जरूरत नहीं।’

112. टिया पाललाम शालिक पाललाम आर पाललाम मैना रे/सोना मुखि दोयल पाललाम आमार कोथा कय ना रे

‘हरामजादी, मुँहजली, फ़िर से तो बोल !’ चिल्लाते हुए दीननाथ ने खड़ाऊँ उठा ली थी। पर बूढ़ी ने उसे रोक दिया। बोली- ‘तुम अभी बाहर जाओ, मैं समझाती हूँ अपनी बेटी को।’

माँ ने सांत्वना के सुर में बेटी को समझाया- ‘करमजली, तू क्या भरी पंचायत में अपने बाप के चेहरे पर कालिख पोतना चाहती है? क्या उसकी कोई इज्जत नहीं !’

‘है तो है, उससे कौन सा मेरी सात पुश्तों का उद्धार होने वाला है। सोचा था, अपने जैसी ही दुखियारी अनन्त की माँ-सी साथिन और अनन्त जैसे बच्चे को गले लगाकर अपने मन की जलन को शान्त कर लूंगी। तुम मुझे वहाँ भी नहीं जाने देते। अगर वहाँ नहीं जाने दोगे तो मैं अब किसी मर्द को पकड़ लूंगी। देखती हूँ, कितने दिन मुझे पकड़कर घर में बन्द रख पाते हो !’

‘अरे करमजली, जाना है तो अभी निकल जा, तुरन्त। लेकिन किसी मर्द की ओर अपने मन को मत भरमा।’

‘माँ, तुम्हें क्या मालूम नहीं, दो दिन से अनन्त की माँ के पेट में अन्न का एक दाना भी नहीं गया।’

‘अरे ले जा, दो टूरी चावल ले जा, एक झाँगुर लेजा और जो जो तेरा मन हो लेजा। निकल यहाँ से !’

‘माँ ! अनन्त की माँ की साड़ी तार-तार हो चली है, मेरे पास तो तीन साड़ियाँ हैं। एक दे दूँ उसे।’

‘तेरे बाप से पूछकर बाद में बताऊंगी। अभी जा... अच्छा सुन, बाप को बताने की जरूरत नहीं है। तू अपनी साड़ियों में से एक अनन्त की माँ को दे दे।’

सुबला बऊ मर्द के जिस अभाव को हठात खटकता दिखा रही थी, वह उसी क्षण समाप्त हो गया था।

भादों आ गया था। मछलियों का बाजार गर्म हो चला था। इस समय कते हुए सूत की माँग बढ़ जाती थी। बड़ी मछलियों के धक्के से नए जाल कट-फट जाया करते। उस समय मछेरे कीमत की परवाह किए बिना मोटे-बारीक और मँझोले हर तरह के सूत को खरीद लेते थे। अनन्त की माँ के पास पहले से कता जो सूत पड़ा था, वह पूरा बिक गया था। इन दिनों उसे बात तक करने की फुरसत नहीं थी। उसकी तकली हरदम चलती रहती थी। एक दिन उसने गौर किया कि तकली को बार-बार पैरों से छुआते-छुआते उसकी गोरी पिण्डलियों पर काले चकत्ते बन गए थे। उसने इतना सूत कात डाला था कि उसका खुद का जाल बुना जा सकता था, जिससे रात भर मछलियाँ पकड़ने के बाद सुबह-सुबह उसके घर भी टोकरे भर-भर मछलियाँ आतीं।

रुपए-पैसे से सन्दूक भर जाते। टोले-मुहल्ले के घरों में कितनी तरह के समारोह थे। घर के मर्द बता देते थे कि किस तरह का सूत कातना है। औरतें उसी के अनुसार सूत काता करतीं। सूत अच्छा कता हो तो मर्द उनकी कितनी तारीफें किया करते। जबकि सूत के उलझ या टूट जाने पर मीठी-मीठी गालियाँ भी सुनाते थे। उनकी पत्नियाँ मुँह लटका लेती। ताने दिया करती हैं- 'अच्छा सूत कातने वाली को घर ले आओ।' दाम्पत्य-कलह के बाद मान-मनुहार और उफनते प्रेम से घर मधुमय हो उठता था। उन सब घरों में हजार तरह के काम होते, लेकिन उसके घर में बस एक ही काम था-सूत कातना।

सुबला बऊ को अकेले में पा अनन्त की माँ ने अपने मन का सारा आवेग दुलका दिया। 'बहिनी, तुम एक दिन कह रही थी न कि मुझे एक मर्द की जरूरत है। हाँ जरूरत तो है ही, मर्द के बिना औरत के जीवन की कीमत कानी कौड़ी से भी कम होती है।'

'पकड़ लो किसी मर्द को!'

'कहाँ खोजूँ?'

'उस पागल को ही पकड़ लो ना!'

'गई तो थी, पकड़ में ही नहीं आया वह!'

'मुझसे मसखरी मत करो दीदी!'

'बहिनी, मैं मसखरी नहीं कर रही! सच्ची बात बता रही हूँ। पगला यदि मेरा हाथ पकड़कर एक बार खींच ले तो मैं जाकर उसकी घरनी बन जाऊँ। अब अकेले अच्छा नहीं लगता।'

सुबला बऊ अवाक हो गई थी।

'दुनिया में इतने लोगों के रहते तुम्हारी नजर पड़ी भी कहाँ! उस पागल पर.. अगर मन इतना ही उचाट हो गया है तो घाट पर पानी भरते समय जो पसन्द आए, उसी पर नैनों के बाण चला दो।'

'क्या बहिनी, मर्द क्या इसीलिए होते हैं? दूसरों के घरों की ओर देखो। गृहस्थी तो वही चलाते हैं। औरतें तो उनकी संगिनी हैं। सारी विडम्बना मेरे ही भाग्य में क्यों?'

'अरे दीदी, तुम तो सचमुच पागल के लिए पगली हो गई। यह पागल एक दिन तुम्हारे जी का जंजाल बन जाएगा। अच्छा दीदी, सच-सच बताना, पागल ने जिसे खो दिया था, क्या तुम वही हो?'

'पागल ने कब किसको खोया, इसके बारे में मैं क्या जानूँ? मैं तो बस इतना जानती हूँ, अकेले जीवन नहीं कटता। पागल को पाकर उसके साथ जीवन काट लूंगी।'

सुबला बऊ ने एक सर्द आह भरी और कहा- 'सच कहूँ तो दीदी, कभी-कभी मेरा मन भी चंचल हो जाता है, लेकिन मैंने तो प्रतिज्ञा कर ली है, जैसे हूँ वैसे ही जीवन चलाऊँगी।'

अनन्त की माँ और उसमें यही तो फर्क है। जितने दिन वह भवानीपुर में थी, उसके कलेजे में एक ओर अनन्त बसा था तो दूसरी ओर अबोध शिशुओं जैसे दो सरल बूढ़े। क्षण-भर के लिए भी कभी अनन्त की माँ का मन विचलित नहीं हुआ था। आज भी विचलित नहीं हुआ है, लेकिन वह खुद को अत्यन्त थकित महसूस कर रही थी। जिस आलोक-स्तम्भ के सहारे वह इतने दिन तक चलती रही थी, आज मानो वह बुझ गया था और वह अंधेरे में खड़ी महसूस कर रही थी कि उसके पैरों की चलने की ताकत एकदम चुक गई है। पागल खुद आए और उसका दायित्व संभाले, नहीं तो उसे अपने घर बुलाए और मारकर फेंक दे। सुबला बऊ के भीतर एक क्रान्तिकारी नारी छिपी थी, पर अनन्त की माँ का मन एक दूसरी दुनिया बसाने की कोशिश कर रहा था। उसमें एक सत्यानाशी सांसारिक कामना जाग गई थी। वह घर-बार चाहने लगी थी। वह आए और उसके साथ घर बसाए, लेकिन पागल क्या कभी किसी दिन दूसरे के मन की बात समझ सकेगा !

एक दिन सुबला की बऊ ने बताया था कि तीन साल पहले दो परदेशी स्त्री-पुरुष इधर आए थे, नाले के पास उसके बाप को पाकर उन्होंने पूछा था कि रामकेशव के बेटे किशोर का घर कौनसा है? हमें वहाँ ले चलो। लेकिन वहाँ पहुँचकर उन्होंने पाया कि घर में एक काला-कलूटा यमराज जैसा बूढ़ा है। एक सूखी पिचकी बुढ़िया और एक पागल, जो बरामदे में बैठा प्रेत-कीर्तन (प्रलाप) कर रहा था। जिसे वे खोजने आए थे, वह कहाँ थी? वे पागल को पहचान गए थे और उसके दोनों हाथ पकड़कर झकझोरते हुए बोले थे- 'अरे किशोर, बेटा हमारी बच्ची को कहाँ छिपा रखा है, बताओ तो। उस समय पागल ने एक दिमागदार आदमी की तरह कहा था- नई नदी के मुहाने पर उसे डकैत उठा ले गए।'

यह सुनकर वे एक पल के लिए भी वहाँ नहीं रुके, तत्क्षण स्टेशन जाकर गाड़ी पकड़ ली थी। उसके माँ-बाप जो जानकर गए थे, उसके बाद फिर कभी इधर नहीं आए।

एक बूढ़ा था, जिसे बाप कहकर पुकारने पर शायद वह उसे अपनी बेटी मान ले और कहे, मेरे घर की लक्ष्मी घर लौट आई। पूरी कहानी सुनने के बाद कहेगा, डकैतों ने तुम्हें पतित कर दिया। मेरे घर में अब तुम्हारे लिए जगह नहीं। और पागल, यदि किसी दिन ठीक हो गया तो वह भी जरूर कहेगा कि डकैतों ने तुम्हारा सतीत्व नष्ट कर

दिया। तुम पवित्र हो, इसका तुम्हारे पास क्या प्रमाण है। तब तो मेरा अनन्त दोनों तरफ़ से जाएगा। जबकि भगवान साक्षी है कि जब डकैतों ने उसे नाव से निकाला तब एक बार बस उसे छुआ भर था। उसे नाव में बैठाकर वे आगे बढ़े ही थे कि उसने पानी में छलांग लगा दी थी। मछरे की बेटी थी, नदी-तीर की वासिनी। जन्मते ही तैरना सीख लिया था। साँस बन्द करके एक ही डुबकी में मीलों जा सकती थी। डकैत भी उसे नहीं खोज पाए थे। कोसों दूर तैरने के बाद नदी के एक तट पर वह बेहोश हो गई थी। यह उसका सौभाग्य था कि वह और किसी के हाथ न पड़ उन दो बूढ़ों गौरांग और नित्यानंद को मिली। वे दोनों भाई थे। अपनी छोटी-सी नाव में बैठकर बड़ी नदी से मछलियाँ खरीदने जा रहे थे। उन्होंने सुबह-सुबह किनारे पर अचेत पड़ी एक लड़की को देखा। होश में आने पर उन्होंने पूछा- 'बेटी, तुम क्या किसी बामन, कायथ की बेटी हो?'

उसने बताया था- 'नहीं! मैं मछरे की बेटी हूँ।'

उन्होंने फिर पूछा था- 'तुम्हारे पिता का घर कहाँ है? तुम्हें वहाँ कैसे पहुँचाएँ?'

उसने ही नकार दिया था। उनके यहाँ भेजने की जरूरत नहीं है। मुझे अपने साथ ले चलो। यही था उसका इतिहास।

सब-कुछ रहते हुए क्या वह और उसका जीवन इस अपरिचय के बीच ही खत्म हो जाएगा। लेकिन अनन्त, उसने तो अपने बाप को नहीं देखा, न पहचाना। और बाप ने ही उसे कहाँ पहचाना था! कितना दुखद है यह? सुबला बऊ सिक्के के केवल एक पहलू को देखकर उसे छेड़ती थी। वह भी नहीं समझ पाती थी कि अनन्त की माँ को कितना-कुछ सोचकर देखना पड़ता है।

न जाने क्यों अनन्त की माँ के दिमाग में यह बात मजबूती से पैठ गई थी कि पागल एक दिन जरूर ठीक हो जाएगा। रोज-रोज उसको देखते-देखते उसका दिमाग काम करने लगेगा। उसे देखकर मुग्ध होगा और परोक्ष रूप में ही सही, उसकी सेवा पाकर उसके प्रति हमदर्द हो उठेगा। उसने उसे ठीक से कभी देखा ही नहीं। उस दिन नाव में उसने खुद कहा था कि बाहर कहीं देखने पर शायद वह उसे पहचान भी न पाए। जब तक कि कोई उसका परिचय न कराए और जो परिचय कराने वाले थे, यानी तिलक और सुबल, वे तो अब स्वर्ग के वासी हो चुके हैं। कितने अच्छे थे दोनों। गाँव से नाव तक कितनी मदद की थी उन्होंने। उसे कितनी इज्जत दी थी दोनों ने। अब वे स्वर्ग से आशीर्वाद दें कि पागल बिना पहचाने उससे प्यार करने लगे और उस प्यार के सहारे वह पागल की घरनी बन जाए। यह एक नई शुरुआत होगी। लोकनिंदा तो जरूर होगी, लेकिन इससे उसे कोई फर्क नहीं पड़ता। बल्कि आज तो देश-देश में यह बात उठ रही है कि विधवाओं का विवाह कराया जाना चाहिए। पत्नी के मरने पर यदि पुरुष

को पुनर्विवाह का अधिकार है तो उसके मरने पर महिलाएँ क्यों वैधव्य का दुःख सहती रहें। पर क्या उसका पति भी मर गया था? हाँ, स्मृति और मन की बात करें तो इन दोनों दृष्टियों से वह मृत हो चुका था। उसका पुनर्जन्म उसी दिन होगा, जिस दिन उसकी याददाश्त लौटेगी। वह खुद भी सब-कुछ जानते-सुनते जड़भरत¹¹³ बनी हुई थी। वह स्वयं भी कहाँ जीवित थी। एक जिन्दा लाश बनकर रह गई थी। उस दिन उसे भी नया जन्म मिलेगा। और अनन्त! उसका क्या होगा? वह किसके परिचय से दुनिया को अपना मुँह दिखाएगा! वह इस समस्या का समाधान भी खोजेगी। उसे एक परीकथा सुनाएगी अर्थात् वास्तविक कहानी को, जो कुछ घटित हुआ था, उसी सच को वह उसे कहानी बनाकर सुनाएगी। इस कहानी से वह केवल खुश ही नहीं होगा वरन अपनी माँ की साहसिक जीवन-कथा, उसके कष्ट सहने की क्षमता के बारे में सुनकर विस्मयविमूढ़ हो जाएगा। उसे अपनी माँ पर गर्व होगा। वह पागल को भी दुनिया की ऐसी भूली-बिसरी कहानियाँ सुनाएगी, जो उसकी यादों को पुनर्जीवित कर देंगी और वह मन की गहराई में इस विश्वास को जगह दिए बिना नहीं रह पाएगा कि यही उसकी मालाबदल पत्नी है। सेवा-सुश्रूषा से मोहित कर, हँसी-खुशी से उसके मन को विभोर कर, उसके जीवन में अपनी अनिवार्यता को कायम कर, एक दिन वह सत्य को मूर्त रूप में अभिव्यक्त करते हुए यह बता ही देगी कि डकैत उसके केशाग्र भी नहीं छू पाए थे। उसी रात नदी में कूद उसने अपना सब-कुछ बचा लिया था। उसे पूरा विश्वास था कि उसका पागल जरूर ठीक होगा।

ठण्ड के समय पागल की हालत काफ़ी बिगड़ गई थी। उसे बाँधकर रखना भी मुश्किल हो चला था। घर का माल-असबाब तो वह पहले ही तोड़ चुका था, अब पास-पड़ोस के लोगों की चीजें भी तोड़नी शुरू कर दी थीं। राह चलते लोगों को बुला-बुलाकर मारने लगता था। पागलपन का यह दौरा बड़ा भयानक था।

उसका बाप गला फाड़-फाड़कर रोया करता। जब उसकी सहनशीलता सीमा पार कर जाती तो उसे पकड़कर पीटने लगता। मार की वजह से पागल के पूरे शरीर पर जख्म बन गए थे।

तभी एक दिन न जाने कहाँ से एक और पागल आ जुटा। दोनों ने मिलकर तमाखू पी और बड़ी देर तक हँस-हँसकर लोट-पोट होते रहे। जाते समय उस पागल ने किशोर के साथ मारपीट कर ली। जिससे उसके जख्म और बढ़ गए। तब से किशोर के दिमाग में एक और खुराफ़ात पैदा हो गई। वह अपने शरीर को खुद ही जख्मी करने

113. मौनव्रती।

लगा। उसकी देह पर इतने जख्म हो गए थे कि देखे नहीं जाते थे। अनन्त की माँ कुल-खानदान की लाज छोड़कर अपने नए काम में जुट गई थी। उसने इधर-उधर से एक कविराज का ठिकाना खोज निकाला और कुछ जड़ी-बूटियाँ आदि ले आईं। उन्हें कूट-पीस, मिलाकर एक मरहम तैयार किया, फिर साबुन और गर्म पानी से उसके घावों को साफ़कर उन पर मरहम लगाने लगी। शुरू में किशोर उसके साथ भी मारपीट किया करता था पर बाद में उसने समर्पण कर दिया। गाँव के लोगों ने देखा कि एक सुन्दरी ने एक पालतू जानवर को अपनी सेवा-सुश्रूषा और आवेग-संवेग से स्वस्थ कर डाला था। मुँह से तो कोई कुछ नहीं बोलता था, पर देखते सब थे। वे बस यह टिप्पणी दे चुप हो गए कि अनन्त की माँ भारी दयालु स्त्री है। इस औरत ने पराई होते हुए भी मानवता की खातिर एक मरते हुए आदमी की अपनों की तरह सेवा की और उसकी जान बचा दी। यह कोई अपराध नहीं है। इससे तो ईश्वर खुश ही होंगे। यह तो धर्म की बात है। पुण्य की बात है। एक व्यक्ति के पुण्य कर्मों से हमारे सारे गाँव का कल्याण होगा।’ सुबला बऊ ने यह बात परिचित-अपरिचित सबके कानों में पूरे विश्वास के साथ बैठा दी थी, इसलिए किसी में उसके खिलाफ़ बोलने का साहस नहीं होता था। ठण्ड बीतते-बीतते पागल का रूप बदल गया था। अनन्त की माँ का हृदय भी आशा से भर उठा। सुबला बऊ के मुँह से कुछ व्यंग्य-बाण भी निकले जो अनन्त की माँ को भीतर तक बेध गए। पर उसने तय किया था कि वह इस दुर्जेय रहस्य को जीतकर रहेगी।

फ़िर बसन्त आया। अनन्त की माँ ने एक दिन पागल की माँ की मदद से किशोर को नदी में नहलाने की सोची। दोनों ने मिलकर उसे घाट पर पहुँचा दिया, फिर पूरी देह में साबुन लगा उसे डुबकी मार-मारकर नहलाया। यह काम दिन-दहाड़े किया गया। सबने देखा। अनन्त की माँ को इसमें कोई लाज नहीं लगी। पर उसने सोचा, काश ये बुढ़िया एक बार सोच पाती कि कहीं यह उसके बेटे की खोई हुई पत्नी तो नहीं! और मुझसे पूछ-भर लेती।

एक पराई औरत के सेवा-यत्न से किशोर जैसे-जैसे अपने मन के आनंद को जाहिर करने लगा, वैसे-वैसे अनन्त की माँ के हृदय की धड़कने तेज से तेजतर होती गईं। किशोर अपने साथ की गई ज्यादतियों को चुपचाप सह रहा था लेकिन जैसे ही उसने सुना कि उसके बालों और दाढ़ी की सफ़ाई के लिए नाई बुलाया जा रहा है, वह उठकर एक कोने में जा बैठा। खींचतान से कहीं उसका पागलपन और न बढ़ जाए, इसलिए अनन्त की माँ ने नाई को वापिस भेज दिया।

इसके बाद होली आई। अनन्त की माँ के लिए यह एक शुभ-संकेत का दिन था। उसके जीवन के पन्नों पर इस दिन ने सुखद यादों की बड़ी गहरी रेखाएँ खींच रखी थीं।

होली के दिन मालो लोग सुबह-सुबह जाल समेटकर लौट आए और महफ़िल जमाकर बैठ गए। ढोलक पर थाप दी जाने लगी। तान छेड़ी जाने लगी-

‘बसन्त तू तो आया

अरे मेरा लाल तो नहीं आया।’¹¹⁴

इस गीत के बाद एक मालो ने गर्दन झुकाकर अपने गालों पर हाथ रख लिए और उस्तादजी की मुद्रा बनाकर गाने लगा, जिसका मुखड़ा था-

‘ताले लाले लाले लाले लाले लाले लाले लाले लाले लाले..’¹¹⁵

ऐसा लगा अनन्त की माँ के धरती-आकाश दोनों एक साथ लाल हो गए हों। लेकिन ये तो बस एक गीत के बोल थे। गीत चलता रहा-

‘बसन्त की ज्वाला से मेरा मन धीरज खो बैठा..’¹¹⁶

मूल गीत के बोलों को अंतिम पंक्ति ताल देती थी- ‘ताले लाले लाले लाले लाले लाले लाले लाले..’ आदि।

आज अनन्त की माँ की झोंपड़ी भी लाले-लाल हो गई थी। उसके यहाँ ढेर-सारा अबीर आया था। सुबला बरु बड़े सलीके से अबीर की थाली सजा लाई थी। अनन्त को आज वह सिर से पैर तक लाल कर देगी। उसे कुछ बोलने का भी मौका नहीं देगी। लेकिन यह क्या, अबीर लगाते समय वह काँप सी गई, उसे लगा अनन्त हठात बड़ा हो गया था। उसके चेहरे पर अबीर मलकर उसने उसकी आँखों की ओर देखा, जैसे वे बदल गई थीं और पहले जैसी सहज नहीं लग रही थीं। सुबला बरु कम दुरन्त (दबंग) नहीं थी। उसने दबना तो सीखा ही न था। सारे बाधा-व्यवधान तोड़ते चलना ही उसकी फितरत थी। इस बार उसने अनन्त को खींचकर छाती से लगा लिया, उसका मुख चूमा पर वह अब एक साल पहले वाला लड्डू-गोपाल नहीं लग रहा था। उसमें पहले-सी सरलता नहीं थी। उसने अपनी आँखें बन्द कर लीं और पीछे हटने लगी। लेकिन अनन्त के दोनों हाथ किसी फूलमाला की तरह मौसी के गले में झूल गए थे।

अनन्त की माँ इस समय कहीं और ही खोई थी। उसे अपने प्रथम प्रेमाभिषेक का दिन बार-बार याद आ रहा था। जिसने उसके जीवन को सार्थकता दी थी। आज वह पागल को ऐसे रंग में रँग देगी कि उसे भी अपने उस दिन की स्मृति झकझोर उठेगी। वह अपना पागलपन बिल्कुल भूल जाएगा और एक परिपूर्ण प्रेम-दृष्टि से अपनी प्रेयसी की ओर देखने लगेगा। वह क्षण कितना आनन्दकर होगा। क्या अनन्त की माँ उस

114. बसन्त तुरै एलि रे/ ओरे आमार लाल तो एलो ना

115. ताले लाले लाले लाले लाले लाले लाले लाले लाले लाले

116. बसन्ते री ज्वालाय आमार प्राणे धैर्य माने ना

आनन्द को सह पाएगी। क्या उस दिन की तरह आज भी उसके पाँव काँप उठेंगे और दिल धक-धक करने लगेगा।

सुबला बऊ और अनन्त की नजर बचाकर वह घर से निकल आई थी। सारा गाँव होली के रंग में मतवाला था। घर-घर में गीत गाए जा रहे थे। कहीं ताल तो कहीं बेताल।

रंग देखकर किशोर पहले तो बहुत खुश हुआ। अनन्त की माँ की नजर में आज वह बहुत खूबसूरत दिख रहा था। काश आज उस पुराने मधुर दिन की छाया उसी का प्रतिरूप बनकर लौट आती। अनन्त की माँ ने ऐसी हजारों कहानियाँ सुन रखी थीं, जिसमें अपने प्रियजनों के खोने पर लोग शोक से पागल हो गए थे, लेकिन उन्हें पाकर बहुतों का पागलपन दूर हो गया। उसने यह भी सुन रखा था कि मधुर दिनों की यादों को जगाकर भी पागलपन दूर किया जा सकता है। यह कोई शारीरिक बीमारी तो है नहीं जिसके लिए डॉक्टर, वैद्य की दवा लगे। असल में, यह तो कोई बीमारी ही नहीं, मन की एक हालत भर है। इस हालत की प्रकृति को बदल दिया जाए या उसे पुरानी हालत में ला दिया जाए तो पागलपन ठीक हो सकता है। अनन्त की माँ ने एक और तर्क ढूँढ़ निकाला, अगर पागल को ठीक होना हुआ तो इसी तरह होगा। केवल उसका पागल ही नहीं, दुनिया के सारे पागलों को इस रूप में ठीक किया जा सकता है। इसके अलावा पागलों के उपचार का कोई और रास्ता नहीं। अगर होता तो दुनिया के सारे पागल ठीक हो गए होते। पर क्या वे हुए?

वह भी तो मुझे दो मुट्ठी अबीर लगा सकता था। क्यों नहीं रँगा! क्या वह पत्थर है? क्या वह यह भी नहीं समझ पाता कि सामने वाले का मन क्या चाहता है? लेकिन पागल कुछ तो समझ ही गया था। उसने थाली से एक चुटकी अबीर उठा अनन्त की माँ के गाल और माथे पर लगा दिया था। आस-पास कोई नहीं था। बुढ़िया हमेशा की तरह बाँस के झुरमुट के पास बैठी ऊँघ रही थी और बूढ़ा यानी अनन्त की माँ का ससुर होली गाने निकला था। घर में कोई नहीं था। किवाड़ भिड़े हुए थे। वहाँ बस वे दोनों ही थे। अनन्त की माँ ने अपनी सारी ताकत बटोरकर खुद को मजबूत बनाए रखा था।

लेकिन किशोर तो अचानक बिल्कुल बदल गया। शायद उस पर पागलपन का दौरा पड़ गया था। उसने एक सत्यानाशी कदम उठा लिया। अचानक वह तेजी से आगे आया और अपनी प्रेयसी को गोद में उठा लिया। इसके बाद आँधी की तरह दरवाजे पर जा पहुँचा और चिल्लाने लगा- 'लाठी लाओ, अरे जल्दी लाठी बाहर करो..सती के शरीर को हाथ लगाया। सती को छू दिया। आज नहीं छोड़ूंगा। मारो, काटो, खून कर

दो..कोई बच न पाए। अरे मेरी लाठी कहाँ है...।' उसने एक गहरी साँस ली और फिर से गला फाड़ने लगा- 'तेल लाओ, पानी लाओ, जल्दी..तुम्हारी लड़की बेहोश हो गई है।'

आवाज सुनकर होली की महफ़िल छोड़ लोग उस तरफ़ दौड़े। किशोर एक बार गाँववालों की ओर तो एक बार लड़की की ओर ताकता जा रहा था। उसकी दोनों आँखें विस्फ़ारित और बेहद लाल हो उठी थीं। लड़की का जूड़ा खुल गया था और उसके नागिन जैसे लम्बे बाल जमीन को छू रहे थे। उसकी छाती उठ गई थी। वह इतनी ऊँची हो गई थी कि किशोर की निश्वास तक से उसका आवरण सरक जा रहा था। वह बेहोश थी। उसके वक्ष से वस्त्र पूरी तरह सरक गया था। किशोर पागलों की तरह अपना चेहरा वहीं रगड़े जा रहा था। दाढ़ी-मूँछ के जंगल की गर्माहट से शायद उसके नर्म, कोमल मन में होश जागे।

'अरे, अरे रमाकन्त ! देख क्या रहे हो ! पकड़ो तो उसे गंगाचरण ! आज हम इस पागल का पागलपन उतार देंगे।'

होली के हुल्लड़ में गाँव के लोग पहले से ही उन्मत्त थे। इस दृश्य ने उनकी उत्तेजना और बढ़ा दी। सबने मिलकर किशोर पर हमला बोल दिया। चारों ओर से उस पर देर तक लात, थप्पड़, घूँसों की बारिश होती रही। कुछ लोग लाठी ले आए थे। उन्होंने उसके किसी जोड़ को तोड़े बिना नहीं छोड़ा था। किसी ने उसकी बाँहें पकड़कर दरवाजे के सामने की सख्त जमीन पर दे मारा। किसी ने सिर के बाल और दाढ़ी खींचे, तो किसी ने मरणासन्न देह को चारों ओर घुमाते हुए एक कोने में फेंक दिया। किशोर की निस्पन्द देह जहाँ की तहाँ पड़ी रह गई थी। औरत की इज्जत पर हाथ डालने की उसे उचित सजा दी गई, यह कहते हुए गाँववाले चले गए थे। इसके बाद कुछ लोग बेहोश लड़की को घेरकर खड़े हो गए। पहले हमले ने ही किशोर को चौंका दिया था। न जाने क्या समझकर उसने लड़की को जमीन पर लिटा दिया था। वह अभी तक बेहोश थी। कुछ औरतें उसके सिर पर तेल और पानी मलकर पंखा झल रही थीं। तभी उसकी आँखें खुली, उसने देखा, वह घर लोगों का जंगल बना हुआ था। कुछ उसे सीधाकर बैठाने की कोशिश कर रहे थे, पर वह फिर लुढ़क जाती थी। सुबला की बऊ न जाने अब तक कहाँ थी। खबर सुनते ही वह दौड़कर आई तथा मर्द-औरतों के इस महाजंगल को पार करती हुई सीधे अनन्त की माँ के पास पहुँच गई। उसने उसे कन्धे पर लादा और उसके घर ले आई। धीरे-धीरे सारे लोग चले गए थे। किशोर दरवाजे के एक कोने पर निस्तेज पड़ा था। किसी ने उसे होश में लाने की कोशिश भी नहीं की। फिर उसे खुद ही होश आ गया था। उसने उठने की कोशिश की, पर उठ नहीं सका।

सालों बाद पहली बार स्वाभाविक रूप में उसने कुछ कहा— ‘बाबा ! मुझे थोड़ा पानी पिला दो ।’ पानी पीकर फिर बोला—‘बाबा, मुझे घर के भीतर ले चलो, मुझसे उठा नहीं जा रहा ।’

किशोर की रात बहुत मुश्किल से बीती। दूसरे दिन सुबह होते-होते उसके प्राण निकल गए थे। उसकी बूढ़ी माँ, जो इतने दिन गूँगी बनी हुई थी, जिसकी आँखों का पानी और हृदय का रुदन जमकर बर्फ बन चुका था, वह फूटकर बह निकला था। वह बहुतों के नाम ले-लेकर विलाप कर रही थी। कह रही थी, ‘मरने के पहले उसने पानी पीना चाहा था, लेकिन पी कहाँ पाया मेरा लाल..कुछ कहना चाहता था, लेकिन कह कहाँ पाया मेरा लाल..!’

और इसके चार दिन बाद ही अनन्त की माँ ने भी संसार छोड़ दिया। होली की घटना के बाद उसी दिन उसे तेज बुखार हो गया था। उसे जो करारा आघात लगा था, उसे कोई नहीं जान पाया था। वह सारी रात छटपटाती रही और सुबह होते ही दम तोड़ दिया। जैसे वह जाल से छिटकी हुई एक मछली थी, जो रात भर छटपटाई और सुबह की धूप लगते ही मर गई। सुबला बऊ की गोद में सिर रखे वह सदा के लिए सो गई थी। आकाश में रोशनी फूट चुकी थी। मानो वह भी उसे निहार रही थी। यह रोशनी अनन्त के भोर के आकाश को कुछ और ही रंग दे रही थी।

मालो लोग जन्म, मरण और विवाह, इन तीनों पर ही सबसे ज्यादा खर्च करते हैं। इस बार भी किया। लकड़ी आई, बाँस आया, तेल-घी आया और मिट्टी की कलसी भी आई। पूरे रस्मो-रिवाज से नाव में शव को रखकर वे अनन्त की माँ को जलाने ले गए। चिता में आग देते हुए किसी ने कहा- ‘लगता है पागल ने इसको पहचान लिया था। चार दिन पहले ही मर गई होती तो दोनों को एक ही चिता पर सुला देते। परलोक में दोनों का मिलन फिर हो गया होता।’

कभी तीन लोग एक साथ प्रवास पर गए थे। लौटते समय उनके साथ एक स्त्री भी थी और उनकी संख्या चार हो गई थी। वे चारों आगे-पीछे ही मरे भी। प्रवास पर जाकर उन्होंने जो कुछ देखा-सुना, आमोद-प्रमोद किया, आपद-विपद झेली, वह सब तो किसी कहानी से भी अधिक विचित्र है। जो इस कहानी के रचयिता और पात्र, दोनों ही थे, उन्होंने इस संसार से सदा के लिए विदा ले ली थी। यह दुनिया अब कभी उन्हें नहीं देख पाएगी।

खंड- तीन

इन्द्रधनुष

तितास नदी यहाँ धनुष की तरह मुड़ गई थी। नाना ऋतुओं में इसके नाना रंग, नाना रूप दिखाई पड़ते थे। अभी वर्षा ऋतु चल रही थी। तितास का रंग-रूप इन्द्रधनुषी हो गया था। दोनों किनारों पर सब्ज-गाँव,¹¹⁷ बीच में धवल जल तो ऊपर मटमैले आकाश से धाराधार होती वर्षा, सब मिलकर एक अपूर्व दृश्य उपस्थित कर देते थे। यह जल खेत की गेरुआ मिट्टी से लिपटकर सैकड़ों-हजारों धाराओं में बँट तितास के जल में आ मिलता था। समग्रता में एक मायालोक का सृजन हो जाता था। एक मधुमय, हृदय-स्पर्शी इन्द्रधनुषी लोक का।

इस समय बारिश अपने शबाब पर थी।

आकाश ने टूटकर बरसना शुरू कर दिया था। बारिश रुकने का नाम नहीं ले रही थी। तितास का जल भी बढ़ता ही जा रहा था। ठण्डी हवा सन-सन करती बह रही थी। नदी के धुमैले जल में इस हवा से खूब लहरें उठा करती थीं जो मछेरों की नौकाओं को झूला-सा झुलाती थीं। आलू लदी नावें सबसे अधिक झूलती थीं।

एक नाव शकरकन्द और आलू बेचने की नीयत से रवाना हुई थी लेकिन रास्ते में उस पर विपद आ पड़ी। आध-सेर से लेकर एक सेर तक वजन वाले बड़े-बड़े आलुओं से पूरी तरह भरी हुई छोटी-सी नाव। उसका पिछला हिस्सा लगता था, अब डूबा कि तब। ऊपर से पानी बरस रहा था। अभी अगर लंगर नहीं डाला गया तो नाव किसी भी समय गुडुप से डूब सकती थी। पूरी तरह भरी नाव में लंगर कहाँ से डाला जाए,¹¹⁸ यह एक बड़ी दुविधा थी। कादिर मियाँ का दिमाग काम नहीं कर रहा। सूखे बाँस के पत्तों का जो टोपा उसने पहना था, वह मुश्किल से उसके सिर को बचा पा रहा

117. हरे-भरे गाँव।

118. छोटी नाव में बीच से लंगर डाला जात है।

था। बारिश की मोटी-मोटी बूँदें पूरे शरीर को बेध रही थीं। टोपी संभालते हुए सिर को टेढ़ा कर कादिर ने आकाश की ओर देखा, लेकिन उसका बेटा कहीं और न देख अपने बाप पर ही टकटकी बाँधे था। दूर-दूर तक शून्य ही नजर आ रहा था। उसके दिमाग ने सचमुच काम करना बन्द कर दिया था। बाप बोलता जा रहा था- इतनी मित्रों के बाद सागरगंज से आलू मिले हैं, पर लगता है आज सब बरबाद हो जाएँगे। बेटे ने कहा- ‘अब्बाजान, तुम तैरकर उस किनारे चले जाओ। गरीबुल्ला के पेड़ के नीचे जाकर किसी तरह जान बचाओ। मेरी तो जब तक साँस तब तक आस। जब लगेगा कि अब नाव नहीं बचेगी तो मैं खुद ही सारे आलू तितास को समर्पित कर नाव को पार लगवाने के लिए तुम्हें आवाज दे दूँगा।’

ठीक उसी समय एक परिचित-से मछरे की नाव काम से घर लौटती दिखाई पड़ी। वह तितास के फैले वक्ष पर साँप की तरह तैरती उनकी ओर ही चली आ रही थी। जल काटते, लहरें उठाते दोनों ओर से डाँड़ चलने की मच-मच झुप-झाप आवाजें सुनाई पड़ रही थीं। अगर इनके कारण उठती लहरों ने उनकी छोटी-सी नाव को धक्का दिया तो आलुओं से भरी हुई यह नाव निस्संदेह डूब जाएगी। कादिर ने हाँक दी- ‘किसकी नाव है भाई?’

नाव के सामने के हिस्से पर खड़े होते हुए धनंजय बोला- ‘अरे बनमाली, सेउत¹¹⁹ निकाल जल्दी, आलुओं से भरी एक नाव डूबने वाली है। चटपट दो डाँड़ उठते दिखाई पड़े और धनंजय ने नाव को उसी ओर मोड़ लिया। साँप के फन की तरह फुफकारती उनकी नाव बाँयी ओर बढ़ी और कादिर की नाव के बराबर में आकर रुक गई।

धनंजय की बुद्धि का जवाब नहीं। उसने ठीक समय पर ठीक काम किया। अगर जरा-सी देर हो गई होती, तो सर्वनाश तय था।

इसके बाद मछरे की नाव के तीन और आलू भरी नाव के दो यानी पाँच लोगों के हाथ सिलाई मशीन की सुई की तरह फर-फर चलने लगे। देखते ही देखते मछरे की बड़ी-सी नाव में एक बोझ आलू भर दिया गया। आलू वाली नाव हल्की होने के कारण डूबने से बच गई थी। कादिर के सिर पर लगा टोपा तब भी बड़ी मुश्किल से उसके सिर को भीगने से बचा पा रहा था। आफ़त टल जाने के बाद उभरी अवसन्नता ने उसे घेर लिया था। वह दम लेने के लिए मचान पर जाकर धम से बैठ गया और बोला- ‘मालो-पूतो, आज तुम्हारे कारण हमारी जान बची है।’

119. अंकुश

थोड़ी देर पहले जो रिमझिम छन्द मधुर लग रही थी। सहसा वह उन्मत्त हो गई थी। मार-मार काट-काट की ध्वनि करती हुई बारिश जैसे आकाश छेदकर बरस रही थी। साँ-साँ झम-झम, साँ-साँ झम-झम करती हुई हवा उसमें ताल दे रही थी और कान के पर्दे फाड़े दे रही थी। किनारे की जमीन, खुले खेत-मैदान, गाँव-गिरांव कहीं नजर नहीं आ रहे थे। वातावरण में व्याप्त धूसरता के कारण सब-कुछ धुंधला लग रहा था।

बनमाली ने सोचा था वे नाव को तीर पर लगाकर कुछ देर इन्तजार कर लेंगे लेकिन किनारा था ही कहाँ! शायद पास ही रहा हो। पर इस समय कुछ भी नजर नहीं आ रहा था। धनंजय पाल के पीछे से झाँककर बोला- 'भाई बनमाली, गहरी नदी में नाव ले जाने से कोई लाभ नहीं। यहीं रोक लेते हैं।'

भारी और मोटे से एक बाँस को पानी में उतारकर नदी के बीचों-बीच गाड़ दिया गया और उसके साथ एक मजबूत डोरी से नाव को बाँधते हुए धनंजय बोल उठा था- 'अब रहे यहीं नाव! हवा के साथ-साथ चक्कर लगाए।' मियाँ जनाब, 'तुम भी पाल के नीचे जाकर बैठ जाओ।' कादिर पाल के भीतर घुसते हुए बनमाली से बोला- 'भीतर तो कुछ है ही नहीं, नून-भात जो कुछ था, सब खा-पीकर पहले ही खत्म कर दिया गया।'

पाँचों लोग बुरी तरह भीग गए थे। उनके पास बदलने के लिए एक से अधिक कपड़े भी नहीं थे। छोटी सी पाल के भीतर वे एक दूसरे से सटे बैठे थे। कादिर के बाल भीगकर बिखर चुके थे। उसकी सफ़ेद दाढ़ी से बूँद-बूँदकर पानी बनमाली के कन्धों पर टपक रहा था। हठात कादिर को इसका अहसास हुआ, उसने हथेली से बूँदों को पोंछ दिया। बनमाली ने उलटकर उसके चेहरे की ओर देखा। उसे देखते रहना बनमाली को अच्छा लग रहा था। यात्राबाड़ी के रामप्रसाद से कादिर का चेहरा कितना मिलता था। उनके चेहरे पर भी ऐसी ही सफ़ेद सुनहली दाढ़ी थी। ऐसा ही शान्त, लेकिन दृढ़ भाव बना रहता था। रामायण और महाभारत में वाल्मीकि तथा अन्य ऋषि-मुनियों के बारे में जो कुछ पढ़ा था, रामप्रसाद जैसे उनके ही वारिस लगते थे। और ये कादिर मियाँ कैसे लगते हैं? उसे ठीक याद आ गया था। उस बार गोकनघाट के बाजार में मुहर्रम के अवसर पर लाठी भँजने का खेल हो रहा था। बनमाली उसे देखने गया था। लौटते समय उसकी मुलाकात अपने ही गाँव के एक मुसलमान से हुई थी। जिसके मुँह से कर्बला की मर्म-विदारक कहानी सुनते हुए बनमाली लगभग रो ही पड़ा था। उसी से बनमाली ने पैगम्बर की कहानी भी सुनी थी। उनकी वीरता जितनी लाजवाब थी, अपनों के लिए प्यार उतना ही गहरा था। कादिर ने मानो उस विराट व्यक्तित्व से थोड़ी रोशनी ले ली थी और आज वैसा ही कुछ महसूस करने के लिए

बनमाली के कन्धे पर दाढ़ी टिकाए चुपचाप बैठा था। उसे बड़ा अच्छा लग रहा था। वह सोच रहा था कि यात्राबाड़ी के रामप्रसाद और विरामपुर गाँव के ये कादिर मियाँ, कितने वत्सल लोग हैं। ठोकर खाकर गिरे हुए आदमी को अगर उनके हाथों का सहारा मिल जाए तो काँटों भरी राहें भी पार की जा सकती थीं। उनके विशाल हृदय पर सिर रख, दोनों हाथों से उनकी कमर पकड़ यदि कोई फूट-फूटकर रोना शुरू कर दे तो वे डाँटेंगे नहीं, बल्कि उसकी पीठ सहलाने लगेंगे। यह सोचकर बनमाली की आँखें सजल हो आई थीं। उसका बाप भी ऐसा ही था। लेकिन आज वह नहीं है। एक दिन रात को जब वह मछली पकड़ने के बाद भीगा हुआ जाल कन्धे पर रखे घर लौट रहा था तो रास्ते में भयंकर तूफान आ गया। एक पेड़ उखड़कर उसके ऊपर आ गिरा और वह जहाँ का तहाँ ढेर हो गया था।

बाँस के मचान आदि पर गिरती बारिश की बड़ी-बड़ी बूँदें लगता था पाल को तार-तार कर देंगी। नाव के बाहर जहाँ तक नजर जाती, बस तितास ही तितास दिखाई देती थी। उसके जल के ऊपर बारिश की अनगिनत बूँदें पत्थर के टुकड़ों जैसी चोट कर रही थीं, जिससे आस-पास की जल-राशि उछलती हुई प्रतीत हो रही थी। हवा शान्त थी, इस कारण जल में लहरें भी नहीं थीं। पर नदी में उद्वेलन बाकी था और चारों ओर लगातार, झाँ-झाँ झम-झम झाँ-झाँ झम-झम की ध्वनि गूँज रही थी। पाल का सामने का हिस्सा खुला था। उधर से हवा नहीं आ रही थी, इसलिए जल के छींटे भी नहीं पड़ रहे थे। जिस ओर पाल बन्द थी, हवा उधर से ही घुसने की कोशिश कर रही थी। कादिर की आँखें नाव के पिछले हिस्से पर टिकी थीं, जिस पर न जाने कहाँ, किस सुदूर प्रदेश से लहरें आ नाव को किनारे की ओर धकेल रही थीं। जल की बूँदें भी बढ़ती आ रही थीं और तितास के अन्तस्तल को भेद आलोड़न जगा रही थीं। बनमाली ने अपना गमछा बारिश के पानी से धोया और उसे निचोड़कर कादिर की ओर बढ़ाया। 'लो बैपारी, अपनी देह पोंछ लो।' कादिर ने बड़े स्नेह से उसके चेहरे की ओर देखा, उसे बनमाली एक छोटे-से बच्चे जैसा नजर आया लेकिन इस मालो-पुत्र की माँसपेशियाँ कितनी मजबूत थीं।

'बेटा हमारे खानदान में किसी ने बैपार नहीं किया, हम लोग किनारे की जमीन पर आलू की खेती करते हैं। हर शनिवार हाट में ले जाकर इन्हें बेच देते हैं। बैपारियों को नहीं देते, क्योंकि एक तो वे बड़ा मोल-भाव करते हैं, ऊपर से उधार लेते हैं और समय पर बाकी भी नहीं चुकाते।'

मछलियों के बैपारी भी ऐसे ही होते हैं। मछेरों के साथ मोल-भाव करते हैं और रुपए की जगह चवत्री हाथ पर रख देते हैं। शहर ले जाकर उस चवत्री में खरीदे माल

को एक रुपए में बेच देते हैं। कादिर की नजर लगातार सामने की ओर थी, जहाँ बारिश के जाल ने सारी चीजों को ढँक दिया था। थोड़ी देर रुककर उसने कहा- कैसी प्रलय की बारिश है। दूर-दूर तक गाँव-गिरांव नहीं दिख रहा। उनकी तमाखू पीने की इच्छा को बनमाली भाँप गया था। वह तमाखू की व्यवस्था करने चला गया। बाँस के चोंगे में एक तरफ़ टिकिया और दूसरी तरफ़ तमाखू रखने की जगह थी। यह सब देखकर कादिर का बेटा पुराने दिनों की यादों में खो गया था, उसे याद आया कि जब वह बहुत छोटा था, दूर-दूर के गाँवों में अपने बाप के साथ ब्राह्मणों और कायस्थों के घर दूध बेचने जाया करता था। वे लोग उसके बाप को ऐसी इज्जत से बैठाते थे। खुद तो कुर्सियों पर बैठे रहते थे, पर उन्हें एक मैला-कुचैला तख्ता पकड़ा देते और बोली में मिठास भर कहा करते- 'बैठो, बैठो कादिर ! बैठो, तमाखू पीयो।' उनका अपना हुक्का किसी धातु से निर्मित होता जो तेल की तरह चिकना तथा चमकीला हुआ करता था, जबकि कादिर के लिए जो हुक्का लाया जाता था, वह मिट्टी का बना हुआ पतला, लम्बा और बदरंग होता था। कादिर जैसे लोगों के आने पर ही उसे चौकी के नीचे से निकाला जाता था। चूँकि कादिर काफ़ी बतरसी आदमी थे। उन्हें बोलना जितना पसन्द था, उतना ही सुनना भी। बातों में मशगूल हो जाने पर उन्हें यह ध्यान ही नहीं रहता था कि वे कहाँ बिठाए गए और हाथ में क्या पकड़ाया गया है। फूँक से आग में जमी राख उड़ाते हुए हुक्के का कश खींचने में ही उन्हें आनन्द आता था। वैसे भी मेरा बाप तो मिट्टी से जुड़ा आदमी है, इसलिए उसे कुछ भी बुरा नहीं लगता। पर वे बड़े लोग थे, जैसे तेल और पानी कभी नहीं मिल सकते, उन दोनों के भी कभी एक होने की कोई संभावना नहीं थी। लेकिन ये जो हमारे सामने बैठे हैं, ये तो मछरे हैं। इनका जीवन भी हम किसानों जैसा ही है। ऊँच-नीच, मान-अभिमान जैसा आरोप इन पर नहीं लगाया जा सकता। बल्कि इनको बराबर का समझकर इनके गले लगना ही अच्छा लगता है। मछरों और किसानों का सम्बन्ध ऐसा प्रगाढ़ है कि इसे न काटा जा सकता है, न मिटाया जा सकता है। बनमाली चिलम में तमाखू सजाने का आयोजन करता जा रहा है। अपने हुक्के से स्वयं पहला कश लेने के बाद अगर उसने अपनी चिलम मेरे बाप की ओर बढ़ाई तब वे क्या इस बार अपमान महसूस करेंगे? शायद करें भी। बड़े लोगों का अपमान आहत करता है, पर बराबरी के लोगों द्वारा किए गए अपमान से व्यथित हो कलेजा कटने लगता है।

इस घनघोर बारिश के दिन, जबकि कादिर बेचारा अपने सिर को भीगने से बचाने में लगा था, बनमाली अगर पहले खुद चिलम पीने के बाद उसे पेश करता तो भी इस समय वह उसे खुशी-खुशी थाम लेता, लेकिन बनमाली ने जब मालसा की

आग को कुरेदा तो पता चला कि पानी की बूँदों से आग पहले ही बुझ चुकी थी।

नदी जैसे ही एक जगह मुड़ी, बाजार दिखाई पड़ने लगा। बारिश कुछ देर पहले ही होकर रुकी थी। अब मौसम साफ़ हो गया था, लेकिन धूप नहीं थी। आकाश के किसी-किसी कोने पर बादलों के टुकड़े अब भी बने हुए थे। मानो उस ओर कहीं अभी भी बारिश हो रही थी। बीच-बीच में हवा का झपट्टा देह को ठण्ड से कँपा जाता था। मेहनत करते समय यही हवा कितनी सुहानी लगती है। नाव किनारे से सटकर नहीं चल रही थी, फिर भी तीर पर उगे पेड़-पौधों की हरी-भरी छाया कादिर की नाव को छूते हुए तितास के जल में उतर गई थी और लहरों के साथ मानो ठण्ड भी काँप कर मरने लगी थी। नदी में उसका कम्पन साफ़ दिखाई पड़ रहा था। वह कादिर के बेटे की डाँड़ के आघात से टूटकर सैकड़ों टुकड़ों में बंटती जा रही थी।

यह नदी का बायाँ किनारा था। दक्षिणी किनारा बिल्कुल खाली था। उस ओर गाँव-गिराँव, घर-मकान, पेड़-पौधे कुछ भी नहीं दिख रहे थे। एक नितान्त खाली किनारे के बाद केवल खाली जमीन ही नजर आती थी। बहुत दूर जाने पर एक धूल-धूसरित गाँव की छाया नजर आई। खुले मैदानों से होकर हवा बेरोक-टोक बहते हुए नदी पार कर पेड़-पौधों के सिर सहलाती हुई गुजर रही थी।

आखिर छोटी-बड़ी दोनों नावें एक साथ हाट के किनारे जा रुकीं। पश्चिम से सीधे पूरब की ओर आती हुई नदी का एक कोना यहाँ से दक्षिण की ओर मुड़ गया था। इस कोने की जगह पर ही हाट लगा करती थी। हाट के पूरब से एक नाला किसी सीधी रेखा की तरह उत्तर की ओर चला गया था। यह नाला नदी के बाएँ मोड़ से निकलता था। ऐसा लग रहा था जैसे चलते-चलते नदी ने अपना चेहरा दक्षिण की ओर घुमा लिया था तथा उसके बालों की लम्बी चोटी उत्तर की ओर लहराते हुए कहीं अदृश्य हो गई थी।

नाले के उस पार आमिनपुर गाँव बसा हुआ था। उसमें एक तरफ़ जूट का ऑफ़िस था और दूसरी तरफ़ पेड़ों-पौधों के झुरमुटों के साथ बने हुए कुछ झोंपड़े और मकान थे। नदी के उस पार हाट लगी थी और इस पार पेड़-पौधों की फुनगियों को छूता हुआ आकाश में एक इन्द्रधनुष दिखाई दे रहा था। सूरज पश्चिम दिशा में ढुलक चुका था। पूरब के आकाश से अभी भी बूँदा-बाँदी का आभास शीतल छाया में लिपटा हुआ-सा दिख रहा था। पश्चिम के सूर्य के सात रंग पूर्व के आसमान की बदलियों के जाल में फँसे हुए थे, जिससे इस इन्द्रधनुष की सृष्टि हुई थी। कोई दो घण्टे पहले जैसी बारिश हुई, वैसी आजकल कम ही हुआ करती थी। नाव में उसके वेग का सही अनुमान नहीं लग पाया था। घर में होते तो देखते कैसे टीन की छत पर कानफाड़ू झम-झम ध्वनि

और लगातार बारिश के कारण ओरी ¹²⁰ से गिरती तेज धार जमीन पर गड्ढे बनाती है। शायद कोई नाला जाम हो गया हो तो दुआर पर पानी जम गया होगा। तुलसी-चौरे की ऊँची जमीन के अलावा चारों ओर पानी ही पानी होगा। दुआर के एक कोने में रखा पशुओं का चारा बारिश के जल में तैर रहा होगा। नाला तो सूखा पड़ा था पर आज की घनघोर बारिश ने जल-जंगल एक कर दिया। जुती हुई जमीन भी इस जल के कारण कीचड़ में बदल गई थी और उसका मटमैला जल भी नाले में आ मिला था। ऐसा लग रहा था जैसे सैकड़ों दिशाओं से सैकड़ों हाथ बढ़ खेतों को बरबादी के कगार पर धकेलने में लगे हुए थे। नाला अभी उठान पर था। कुछ दिन पहले तक यह नदी से जल खींचकर किसी तरह अपना सूखा गला भिगोया करता था। पर आज वह उल्लोलित-कल्लोलित, उत्तालित होकर अपने प्रवाह को मोड़ देता, लहरें उठाता छाती फुलाए आगे बढ़ रहा था और अपने उफनते हुए जल को उल्टे तितास को समर्पित कर रहा था। बारिश रुक गई थी, लेकिन उसका असर अब तक बाकी था। नाले की ओर से अब भी मटमैला जल नदी की ओर बढ़ा चला आ रहा था।

कादिर को बड़ी प्यास लगी थी, उसने अंजलि में जल लिया और पीने चला, लेकिन वह तो पूरा मटमैला हो चुका था। यह देख बनमाली को बड़ी दया आई। 'इसे फेंक दो। पीने लायक नहीं है। नदी और नाले का पानी मिल गया है। मालो टोले में मेरा एक रिश्तेदार है, जब आलू उठ जाएंगे तो तुम्हें वहाँ ले चलूँगा।'

'कैसा रिश्तेदार ! शादी-ब्याह किया है क्या ?'

'नहीं, बहन को ब्याहा है।'

बनमाली की मदद से कादिर के सारे आलू कुछ ही देर में हाट में पहुँच गए थे। उन्हें छितराने से बचाने के लिए कादिर के बेटे ने जंगली घास का बेड़ा बनाकर आलुओं की ढेरी के चारों ओर बाँध दिया था। दो-चार छोटे-छोटे आलू इस बेड़े के बावजूद इधर-उधर छिटक गए थे। वहाँ खड़े छोटे-छोटे बच्चे उन आलुओं पर ये सोचकर टूट पड़े कि अब ये अपने मालिक के अधिकार में नहीं। ये न तो भिखारी थे, न उनके बच्चे लेकिन अपनी देह की गठन, कपड़े-लत्तों के अभाव, गन्दगी तथा स्वभाव के कंगालपन से वे भिखारी जैसे लग रहे थे। ऐसे बच्चे कहीं भी देखे जा सकते हैं। किसी भी देश के किसी भी गाँव में, खासकर वहाँ के बाजारों में। कादिर जैसे जो लोग इन बाजारों में आलू बेचने आते हैं, वे दो-चार आलुओं के लिए न इन्हें डाँटते हैं, न धमकाते हैं। उनके पास कितने ही आलू हैं। दुखियारों के ये बच्चे दो-चार ले ही जाएँ

120. बारिश के दिनों में घर की छाजन पर जल के निकास हेतु बनाई गई नालियाँ

तो क्या फर्क पड़ता है। बेचारे पैसे देकर तो खरीद नहीं पाते। इन्हें धमकाने वाले तो बड़े व्यापारी हुआ करते हैं। अगर ये उनके आलुओं को छू-भर दें तो गाल पर तड़तड़ थप्पड़ पड़ने लगते हैं और इनसे अपने आलुओं के साथ वे आलू भी छीन लिए जाते हैं, जिन्हें इन्होंने पहले से बीना होता था। थप्पड़ खाकर भी ये चिल्लाते नहीं। मार के बावजूद चुप साधे वहाँ से सरक जाया करते। लेकिन जब कड़ी मेहनत के बाद इकट्ठा हुआ आलुओं का संचय उनसे छिन जाता, मित्रत का कोई फल नहीं होता, अनुरोध करने पर उनके माँ-बाप तक को गन्दी-गन्दी गालियाँ दी जातीं, तब वे गला फाड़-फाड़कर रोते हैं। कादिर इस हाट में काफ़ी दिनों से आलू बेचता आ रहा था। वह इन्हें भी तभी से देखता आ रहा था। बरसों से ये भी इसी तरह आलू बीनते आ रहे थे। इनमें से कितने ही ऐसा करते हुए मर भी चुके थे, कुछ बड़े होकर अपनी दुनिया बसा चुके थे, नहीं तो किसी पूंजीपति कारोबारी या भूस्वामी अथवा किसी बड़े किसान के यहाँ मजदूरी करते-करते कुर्बान हो गए थे। ये कादिर को नहीं पहचानते। वह भी इन्हें नाम और चेहरे से नहीं जानता। लेकिन उसे इतना याद है कि हाट की जमीन पर आलू गिराते हुए जान-बुझकर वह दस-बीस आलू इन अकिंचनों की ओर फेंकता रहा है। इस काम में वह कभी कंजूसी नहीं दिखता। हाट में नया-नया आलू आया था। इसकी खबर मिलते ही इन नन्हें डकैतों का दल एकजुट होकर वहाँ आ धमका था। किसी के हाथ में एक फटी हुई छोटी सी थैली थी तो किसी के हाथ में पुरानी साड़ी के किनारे को फाड़कर उसके सूते से किसी नौसिखिए द्वारा बनाया गया झोला। किसी के पास पिचका हुआ कटोरा था तो कोई केवल कूचड़े¹²¹ के सहारे पर था।

कादिर न जाने क्या सोचकर कल्पवृक्ष बन गया था। शायद वह जी-खोलकर इन पर आलू लुटाना चाहता था लेकिन जवान बेटा साथ में था। वह क्या सोचता! बाजार में अपना सामान बेचने आए हैं या खैरात लुटाने। पर उसकी इच्छा ऐसी प्रबल हो गई थी कि बेटे की नजर बचाकर उसने घास के बेड़े के उस पार कुछ आलू फेंक ही दिए। पर बेटे ने देख लिया था। भुनभुनाते हुए कहने लगा, 'क्या बाप! अभी न साइत'¹²² हुई न बोहनी!¹²³ आप भी ना...!'

कादिर के पास पहले से ही बहाना तैयार था। खरीददार कटे-फटे आलू नहीं लेते। चुन-चुनकर फेंकने लगते हैं। सो मैंने पहले ही फेंक दिए। बेटा बिड़बिड़ाने लगा-

121. पहने हुए कपड़े का झोली के रूप में उपयोग।

122. खुदा के नाम पर निकाला गया थोड़ा सामान।

123. सामान को पहले पहल ग्राहक को नगद बेचना।

‘लेकिन साइत तो कर लेते!’ कादिर दिल खोल के हँसा और बोला- ‘हो तो गई साइत, इन छोटे-छोटे लड़के-लड़कियों को देकर। खाकर दुआ करेंगे। अल्लाह ने हमें आज बड़ी मुसीबत से बचा दिया।’

कादिर का यह काम बनमाली को बहुत भला लगा। वह विस्मय से कादिर के चेहरे की ओर देखता रहा। बनमाली की ओर देखकर कादिर ने अपने बेटे को सुनाते हुए कहा- ‘बड़े अभागें हैं ये! किसी की माँ नहीं है तो किसी का बाप!, इधर उधर लात-जूते खाते फ़िरते हैं। अगर किसी की माँ है भी तो वह इन्हें पेट-भर नहीं खिला पाती। किसी का बाप है तो माँ नहीं है। एक कहावत है- माँ मरे बाप कसाई, भाई बन का पशु।’

बनमाली तमाखू सुलगा लाया था। वह टिकिया की आग को फूंक मारते हुए बोला- ‘इनमें से एक की माँ तो मेरी आँखों के आगे मरी है।’

कादिर की नजर एक बच्चे पर पड़ी। लम्बा, दुबला हड्डियों का ढाँचा शरीर। उसके बालमुख पर मलिनता की छाप साफ़ दिख रही थी। दल के बाहर खड़ा वह बड़ी-बड़ी आँखों से कादिर की ओर ही देख रहा था। बच्चे पूजा-पर्व आदि में लुटाए हुए बताशों की तरह धक्कम-धुक्की कर आलू की हरिलूट कर रहे थे और वह चुप खड़ा आशा भरी निगाहों से कादिर के मन में झाँक रहा था, जैसे कि उस पर नजर पड़ते ही बूढ़े के दिल की करुणाधारा उसके लिए अलग से बह उठेगी। यदि दुनिया भर में इस तरह किसी की निर्भरता पर नजर मात्र डाल उसकी इच्छाएँ पूरी कर दी जाएँ तो कितना अच्छा हो। अगर न की जाएँ, तो क्या किया जा सकता है। बच्चे ने हताश होकर एक ठण्डी साँस ली और वहाँ से जाने लगा।

कादिर ने दो मुट्ठी आलू उठाए और उसे इशारे से एक तरफ़ बुलाया, उसके चेहरे पर स्वच्छ आवेग की लेकिन बेहद म्लान हँसी खिल उठी थी। उसकी ‘मातृरिष्टि’¹²⁴ की पोशाक साफ़ बता रही थी कि हाल ही में उसने अपनी माँ का दाह-संस्कार किया था। चुप खड़े बच्चे में हरकत तो हुई लेकिन वह कादिर की आवाज पर दौड़कर उसके पास नहीं गया। दान लेने में भी इतना भव्य आत्मसम्मान! अपूर्व था।

‘अरे ले, आगे आकर पकड़! नहीं तो वे सब ले जाएंगे।’

इस प्यार भरे आग्रह से बच्चा विगलित हो उठा था, उसने गर्दन झुका ली, अर्थहीन भाव से इधर-उधर देखा और फ़िर सिर उठाकर नाले के उस पार बसे आमिनपुर गाँव के ऊपर तने पूर्वी आकाश की ओर ताका। कादिर के अयाचित दान

124. माँ का श्राद्ध

से मिली सम्पत्ति उसके पैरों के पास पड़ी थी पर वह था कि आकाश की ओर देखे जा रहा था। एकटक। उसने नीचे देखा ही नहीं। कादिर ने भी उस दिशा में देखकर उस चीज को खोजने की कोशिश की जिसे वह अपलक देखे जा रहा था, लेकिन उसकी समझ में कुछ नहीं आया। बनमाली ने जब उस ओर देखा तो पता चला कि आमिनपुर के पेड़-पौधों की शिखाओं को छूते हुए आकाश में इन्द्रधनुष उगा हुआ था। बच्चा उसी को देखे जा रहा था।

‘अरे इन्द्रधनुष उगा है। तभी ये उस ओर देखे जा रहा है।’ बनमाली ने कहा। उसने आगे जोड़ा था- मछेरा है ना! मछेरे और किसान तो खुले आकाश के नीचे मिट्टी और जल में ही मदमाते रहते हैं। सूर्योदय की मधुरिमा और सूर्यास्त की विधुरता कभी छिपी नहीं रहती। लेकिन क्या कभी ये इन्हें देखते भी हैं? देखते हैं तो बस दोपहर के जलते सूरज को, वह भी तब जब वह सिर पर सीधे आग बरसाने आ पहुँचता है। शीत और शरद की सुबहें और शामें बड़ी रंगीन होती हैं। आकाश की देह से कितने टुकड़े-टुकड़े रंग-बिरंगे मेघखण्ड लिपटे दिखाई पड़ते हैं। बारिश के बीच-बीच में फुरसत के लिए सूरज जब अपनी आँखें खोलता है तो उसकी विपरीत दिशा की ओर आकाश में कितनी बार इन्द्रधनुष उगा है, लेकिन उन्हें क्या उसे देखने की फुरसत मिली है कभी? शायद मिली भी हो, देखा भी हो पर उसे उसमें कोई नवीनता नहीं दिखी होगी। इन्द्रधनुष उगता है और विलीन हो जाता है। इसमें टकटकी लगाकर देखने की क्या बात है? माँ की गोद से बच्चे आकाश के चाँद को देखकर हँसा करते हैं, तालियाँ बजाया करते हैं लेकिन बनमालियों ने तो न कभी चाँद देखा, न हँसे और न ही तालियाँ बजाईं। कादिर मियाँओं में भी ईद का चाँद देखने का कितना उत्साह होता है। कितने आनन्द और पवित्रता की वाणी लेकर आकाश के एक कोने से रमजान का चाँद झाँकता है। एक टुकड़ा दुर्बल, निष्प्रभ चाँद। जिसे चाँद न कहकर चाँद का कण भी कह सकते हैं। कण कहने से भी चलेगा। इसे तब देखने का जितना आग्रह होता है। वही चाँद जब बढ़कर पूरे आकाश में तैरने लगता है, तब क्या उसे देखने का वही आग्रह होता है। इन्द्रधनुष देखना बच्चों का काम है। और कौन देखेगा। इस जैसा कोई मूर्ख, पिछड़ा भिखारी बच्चा ही ना। देखता रहे यह इन्द्रधनुष! इधर उसके पाँव के आस-पास छिटके आलू दूसरे बच्चे लूट ले जाएंगे। एक बार बनमाली की इच्छा हुई कि आलू वही उठा ले, पर नासमझ बच्चे की देखा-देखा वह भी वैसा ही बन गया और इन्द्रधनुष देखने लगा। सचमुच, इन्द्रधनुष देखना बहुत अच्छा लगता है। उसे याद आया, जब उसकी बहन छोटी थी, तो वह इसी तरह एक दिन आकाश में उगे इन्द्रधनुष को देखती रह गई थी, पर अब वह बच्ची नहीं रही। सब-कुछ भूलकर अब वह इन्द्रधनुष देखती नहीं रह

जाती। उस दिन तो वह काँच की नई चूड़ियाँ झनका-झनका कर ताली बजा रही थी और एक छड़ा¹²⁵ गा रही थी-

‘राम के हाथ का धनुष

लक्ष्मण के हाथ गया

और वहीं से कहीं बिला गया।’¹²⁶

लड़कियों की धारणा थी कि यह कहते ही रामधनु (इन्द्रधनुष) आकाश में विलीन हो जाता है। बरसों से बहन को नहीं देखा। इसी गाँव में तो उसका ब्याह हुआ है। इस हाट से थोड़ी ही दूर उसकी ससुराल है।

इन्द्रधनुष आकाश के विराट फलक को समेटते हुए उगा था। अपने इस आकार में उसने आकाश के दोनों कोनों को छू लिया था। ऐसा लगता था किसी मोटी तूलिका को सात रंगों में डुबोकर एक साथ सात अर्द्धचन्द्र आँके गए थे। सारे रंग कितने अलग लेकिन कितने स्पष्ट थे। मानो पीछे के आकाश से खिसक कर ये आगे की ओर आ गए थे। लगता था आकाश की स्पष्टता और उसका नीलापन कितना पीछे छूट गया है और इन्द्रधनुष अपने सौन्दर्य को फैलाता हुआ आगे बढ़ आया है। रंग कितने उज्ज्वल, उनकी परतें कितनी स्निग्ध और सामंजस्यपूर्ण। न जाने किस कारीगर ने रंगों की ये परतें आँकी थी। देखकर आँखें जुड़ा जाती हैं। कुछ देर पहले तक यह न जाने कहाँ छिपा था! पता नहीं इसका अस्तित्व था भी कि नहीं। अचानक कहाँ से उजागर हो गया। यह चाँद-सूरज का देश है। वे रोज उगते हैं और डूब जाते हैं। पश्चिम में डूबकर सोये रहते हैं और सुबह पूर्व से उग जाते हैं। लेकिन ये इन्द्रधनुष कहाँ रहता है। रोज-रोज दिखाई भी नहीं पड़ता। हठात एक दिन कहीं से प्रकट होकर चौंका देता है। कितने दिन सोता रहता है, कुम्भकर्ण की तरह। इसके उठने का कोई समय-वमय नहीं। इच्छा हुई तो एक दिन उठ बैठा। अपने आकार में यह कितना बड़ा है। बहन ने अपने छड़े में ठीक ही गाया था कि यह राम के हाथ का धनुष है। ऐसा धनुष जो दस सिर और बीस हाथों वाले राक्षस ने उठा तो लिया था लेकिन उसे भी एड़ी-चोटी का जोर लगाना पड़ा था। सीता के विवाह के जात्रागान¹²⁷ में कीर्तनिया के मुख से बनमाली ने रामायण की जो कहानी सुनी थी, उसमें यही कहा गया था। बाद में राम ने सहज ही इस धनुष को अपने हाथ से उठा दिया था। उस समय हरधनु (शिव के धनुष) ने ही कह दिया था कि आज से यह राम के हाथ का धनुष है। लेकिन सीता तो उस धनुष को रोज बाएँ हाथ

125. तुकबन्दी वाले बंगाली शिशुगीत।

126. रामरे हातेर धेनु/ लक्षमणेर हाते छीला/ सेई खाने धेनु सेई खाने गिया मिला

127. नौटंकी

में उठाकर उस जगह को लीप-पोतकर शुद्ध किया करती थी, जहाँ यह रखा रहता था। इसके बाद सीता का विवाह हो गया। राम उसे लेकर अयोध्या चले गए। सीता अपने मायके कभी नहीं लौटी। उसे बहन की याद आई। वह भी तो बहुत दिनों से मायके नहीं आई। उसे देखने जाना ही होगा। मायके भी बुलाना होगा।

कुछ देर बाद इन्द्रधनुष विलीन हो गया लेकिन वह अनन्त के मन पर एक स्थाई छाप छोड़ गया। उसने इससे पहले कभी इन्द्रधनुष नहीं देखा था। माँ से एक कहानी जरूर सुनी थी। एक बियाबान रेतीले द्वीप पर एक जहाज ने लंगर डाला था। उस समय सब लोग खा-पीकर सो रहे थे। एकाएक चारों ओर के वातावरण को कँपाती हुई धपास-धपास की आवाज गूँजने लगी। आकाश से ढेर सारे देव-दैत्य आ गिरे थे। उनके साथ और भी बहुत जीव थे, जो मनुष्य नहीं थे। मनुष्यों के घरों के आस-पास, यहाँ तक कि उनकी दुनिया में ही वे कभी नहीं दिखते। देव-दैत्य तो डर की चीज हैं। लेकिन उनमें कुछ अच्छी बातें भी होती हैं। सारे देव-दैत्य आकाश में रहते हैं जैसे सूरज, चाँद और सितारे। ये आकाश में रहते हैं। रोज उगते हैं रोज डूबते हैं। रोज दिखने के कारण हमें ये पुराने लगने लगते हैं लेकिन आज भी मनुष्य उनका रहस्य नहीं जान पाया है। अनन्त के मन की आकाशी दुनिया कितने अलौकिक रहस्यों से भरी हुई थी। उनमें से एक अनदेखे रहस्य की वस्तु सुदूर आकाश से उसकी आँखों के सामने उद्घाटित हो गई थी। अनदेखे जगत की गोद से बिल्कुल उसके नजदीक आमिनपुर के जामुन के पेड़ की फुनगी पर उतर आई थी। पर बनमाली के मन से कल्पना का इन्द्रधनुष पँछ गया था और वह वस्तुजगत में उतर आया था। उसने देखा लड़के का रंग गोरा है लेकिन शरीर पर मैल जमने से उसका लालित्य खत्म हो गया है। एक टुकड़ा सफ़ेद कोरा कपड़ा कमर में लपेटे हुए था और दूसरे को कन्धे पर डाले था। दाहिने हाथ की मुट्ठी में एक लपेटा हुआ बड़ा सा कुशासन (कुश की चटाई) पकड़े था। नौका बनाते समय तख्तों को जोड़ने के लिए जो पतला चपटा लोहा (पतरा) काम में लाया जाता है, उसमें से ही एक को कपास की डोरी से बाँध गले में लटकाए हुए था। माँ-बाप के मरने पर उनके दाह-संस्कार के बाद उनकी संतान को महीने भर तक यही पोशाक धारण करनी पड़ती थी।

बनमाली के मन में करुणा भर आई थी। उसने पूछा- नाम क्या है रे ?

अनन्त !

अनन्त क्या ? यूगी ! पाटनी ! साव या पोद्दार क्या !

अनन्त इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दे पाया।

तेरी माँ मरी है कि बाप !

माँ।

घर किधर है?

अनन्त ने उंगली से मालोपाड़ा की ओर संकेत कर दिया।

अच्छा तो तेरी जात मालो है। चल, मेरा ही जातभाई है।

अनन्त इस बात का मर्म नहीं समझ सका। जो हल्की-फुल्की बात उसकी समझ में आई, वह ये थी कि उसकी मौसी जैसा यह भी कोई अपना होगा। ऐसा नहीं होता तो वह इतना सब कुछ क्यों पूछता?

‘अपने घर ले चलेगा मुझे?’

गले में लटकी डोरी को दाँत से कुतरते हुए अनन्त ने सिर हिलाया और बोला-
‘हाँ, ले चलूँगा।’

‘हाट जम गई है। चल, तुझे एक बार पूरा बाजार दिखा लाऊँ।’

बाजार में उस समय तक काफ़ी रौनक हो गई थी। कादिर की दूकान के आस-पास आलू की इतनी दूकानें लग गई थीं कि अब उन्हें गिनना मुश्किल था। खरीददारों की भी कमी नहीं थी। हाथों में खाली बस्ते¹²⁸ लिए वे दर-मोलाई (मोल-भाव) कर आलुओं को उनमें भर रहे थे और भीड़ को धकियाते हुए बाजार के बाहर निकल रहे थे। एक अनवरत शोरगुल का वातावरण था। पास खड़े आदमी को कुछ कहना हो तो जोर से चिल्लाकर या सुनने वाले के कान के पास मुँह ले जाकर बोलना पड़ रहा था।

तभी कादिर को एक बड़ा पैकार¹²⁹ मिल गया। खुदरा बेचने में अनेक झमेले थे। वैसे फायदा उसी में ज्यादा था। प्रति मन¹³⁰ दो-चार पैसे अधिक कमाए जा सकते थे लेकिन एक साथ बेचने में सुविधा थी। जल्दी-जल्दी सारा माल बेचकर निश्चिन्त हुआ जा सकता था। वयस्कों की भीड़-भाड़ में अपनी घात न लगते देख अनन्त के संगी-साथी हाट जमने के पहले ही सरक लिए थे। उसने चारों ओर नजर दौड़ाई तो देखा कि एक उद्वेलित और चंचल जनसमुद्र के बीच वह एकाकी खड़ा था। बालक अनन्त का मन चाह रहा था कि वह बनमाली का एक हाथ पकड़ ले।

कादिर ने मजबूत हाथों से तराजू थामा और उसके एक पल्ले पर दस सेरी बटखरा रखकर आलू तौलने लगा तथा व्यवसायियों द्वारा प्रयोग में लाए जाने वाले हिसाब को दोहराने भी लगा। ‘एक लाभ, लाभ लाभ लाभ, दो, दो दो दो दो, तीन..रे .रे

128. पाट/बोरे का बड़ा थैला।

129. थोक में खरीदने वाला ग्राहक।

130. चालीस किलो की इकाई।

रे रे....'

आलू बेचने का काम निपटाकर कादिर ने कहा—‘बेटा बनमाली एक बार बिरामपुर जाओ ना ! कादिर मियाँ का नाम पूछने पर खेती के बैल को घर पहचनवा देना। जाओ।’

रस्सी से बंधी नाव की तरह बनमाली अनन्त का हाथ पकड़कर खींचता हुआ चल रहा था। इस बाजार के भीतर से होकर अनन्त रोज अक्सर गुजरा करता, लेकिन भरी हाट के समय वह कभी यहाँ नहीं आया। आज इसे देख वह मुग्ध हो गया था। एक जगह पान की दूकानें थी। एक के बाद एक। बड़े-बड़े पान, बड़े-बड़े टोकरीयों में सजाए हुए गुच्छे के गुच्छे। पास ही एक बड़ी हण्डी में पानी रखा था। दूकानदार उसमें बार-बार हाथ डुबोकर पान पर जल छिड़क रहा था और उन्हें बेचकर मिले हुए पैसे उसी हण्डी के पानी में डाल दे रहा था। बनमाली ने एक बड़ा-सा पान का बीड़ा खरीदकर अनन्त को दे दिया। बीड़ा हाथ में लेते ही अनन्त की आँखें छलछला उठीं। वह बनमाली को दिल खोलकर बताना चाहता था कि हाट के दिन दोपहर के पहले ही ये दूकानदार नावों से पान उतारकर दूकान सजाने लगते हैं। एक चौकी पर बैठकर वे पान के गुच्छे हाथों में लेते हैं और उनमें से सड़े-गले, कटे-फटे पत्ते निकालकर फेंक देते हैं। वह अपने साथी-संगियों के साथ इन फेंके हुए पत्तों को बीनकर ले जाया करता। माँ के पास कभी इतने पैसे नहीं रहे कि पान खरीदकर खा सके। ये फेंके हुए पान पाकर भी माँ कितनी खुश होती थी। एक दिन अनन्त ने एक दूकानदार को तितास से एक हण्डी जल ला दिया था। उसने खुश होकर सड़े-गले ही नहीं कुछ साधारण दागी पान भी उसे पकड़ा दिए थे। अगर उनका दाग वाला हिस्सा निकालकर अच्छे पानों के साथ मिला दिया जाता तो किसी को पता नहीं चलता। उसने आज ऐसा ही किया यानी दागदार हिस्सा फेंककर अच्छे पान के पत्तों को एक साथ कर लिया। लेकिन आज तो उसकी माँ है ही नहीं। अब कौन खुश होगा। ऐसा अच्छा पान खाने से पहले ही माँ मर गई। मौसी पान की शौकीन नहीं। मिलने पर खुश नहीं होती और न मिलने पर गुस्सा भी नहीं होती। मौसी की माँ पान खाया करती है। देने पर खुश तो नहीं होती पर न देने पर उसे पीटती थी। लेकिन ये सारी बातें क्या इस नए आदमी को बतानी ठीक होंगी। एक दिन का ही तो परिचय है। दूकानदार ने जरूर मुझे याद रखा होगा। अधसड़े पान के लिए मैंने कितने चक्कर लगाए हैं, क्या वह भूला होगा? उसने गौर नहीं किया होगा कि मैं फेंके हुए पान नहीं लेता। केवल दागदार पान, वह भी हाथ में देने पर लिया करता हूँ। इसे लगता है मैं कभी पैसे देकर खरीद नहीं सकूँगा, लेकिन आज इसे देखना चाहिए था कि उसके टोकरे के सबसे मँहगे पान का एक बड़ा सा बीड़ा मेरे हाथ में है।

वह भी खरीदा हुआ।

सुपारी की गली से बनमाली ने कुछ कटी हुई सुपारियाँ भी खरीदीं।

एक जगह गंजियाँ बिक रही थी। गत्ते के बक्से खोलकर जमीन पर बोरा बिछा उन्हें सजाया गया था। उनपर फूलों की कढ़ाई की हुई थी। बनमाली ने एक गंजी भी खरीदी। उस पर गले से छाती तक जहाँ से बटन लगाये जाते हैं, एक लम्बी-सी हरी लता छपी हुई थी, उसमें फूल खिले थे। अब तक वह खाली बदन था। नई गंजी पहनने पर बनमाली अनन्त को राजकुमार जैसा दिखाई पड़ा। लता और उस पर खिले फूल बहुत सुन्दर लग रहे थे।

बाजार का एक और हिस्सा पूरे ताम-झाम से सजा दिखाई दे रहा था। बीच में पैदल चलने की खाली जगह छोड़ कर दोनों ओर दूकानें सजी थीं। बोलचाल की भाषा में इन्हें सँपेरे कहते हैं पर असल में ये वह नहीं होते। इनकी दूकानों में बड़ी लोभनीय चीजें मिला करती हैं, जैसे कमर में बाँधने का काला तागा (पालतू साँप की तरह इन तागों को लिटाकर रखा हुआ था), साथ ही, कुछ लाल-पीले धागे भी सजे हुए थे। सबके सिर पर एक चमकता मुकुट था। एक तरफ़ छोटे-बड़े आइने सजे थे तो एक तरफ़ कई रंग और आकार के साबुन। नकली मोतियों की माला, रेशमी¹³¹ और काँच चूड़ी और भी बहुत कुछ। बनमाली ने एक दूकान के पास बैठकर दो-तीन साबुन सँघे और पूछा- 'कोई हल्का वाला साबुन है?'

दूकानदार के हाँ कहने पर उसने एक बार फिर उन्हें सँघा और वापस रख दिया। इसके बाद उसने काँच की चूड़ियों में तीन उंगलियाँ घुसाकर नाप का अंदाज किया, फिर उन्हें भी रख दिया। केवल एक वंशी खरीदी। एक कोने में कुछ बाल-शिक्षा और प्रारम्भिक शिक्षा की किताबें रखी थीं। कौतुक से भरा अनन्त उन्हें देख वहीं बैठ गया और उनके पन्ने उलटने लगा। हल-बैल लिए, खेत जोतते एक किसान के चित्र ने उसे ऐसा आकर्षित किया कि वह मन्त्र-मुग्ध होकर देर तक उसे देखता रहा। जब दूकानदार ने डपटा तो उसका ध्यान टूटा। बेचारा अनन्त और कुछ नहीं देख पाया।

बनमाली ने उसके बाद अनन्त का हाथ पकड़कर खींचते-खींचते धनंजय से कहा- 'गाँव के नाइयों को बाल काटना नहीं आता। सब के सब मूरख हैं। और ये हाट के नाई बाल काटते नहीं रन्दे¹³² से पालिश कर देते हैं। नाव में ही रहना, मैं बाल कटाकर आ रहा हूँ।'

131. पतले काँच की बनी चूड़ियाँ, जो पहले बंगाल में विलायत से आया करती थीं।

132. बाल काटने-छाँटने की मशीन के बारे में।

एक नाई ऊँची सी एक जगह पर बैठा दिखा। उसके आस-पास और भी कई नाई थे। सबके हाथ में कैंचियाँ थीं, वे कंघी से बाल सँवार-सँवार कर कचुम-कचुम की ध्वनि करते हुए बाल काट रहे थे। कुछ नाई उस्तरे, कैंची, कंघी और नहन्नी ¹³³ लिए चुपचाप बैठे थे। सिर पर अस्त-व्यस्त लम्बे बालों का घोंसला देख वे बनमाली का इरादा भाँप गए थे और उसे अपनी ओर आने के लिए पुकारने लगे। बाल तो अनन्त के भी बढ़ गए थे किन्तु उसके गले में लटकते धड़े ¹³⁴ को देखकर किसी ने उसे नहीं बुलाया। बाल कटाते-कटाते शाम हो गई थी। नाई ने बनमाली को एक छोटा-सा आइना पकड़ाया था पर शाम के धुंधलके में उसे कुछ नहीं दिख पाया। बुझे मन से बनमाली उठ खड़ा हुआ था। फिर अनन्त का हाथ पकड़कर बाजार रूपी समुद्र को पार करते हुए घाट के किनारे ले आया। तब तक हाट उठने लगी थी। धनंजय एक टोकरी गाव, ¹³⁵ दो बाँस, हफ़्ते भर के लिए हल्दी, मिर्च, नमक, जीरा आदि खरीदकर जाने के लिए तैयार खड़ा था।

बनमाली ने मन ही मन सोचा- आज अब और कहीं नहीं जाऊँगा। रात हो गई है। फिर कभी देखूँगा। फिर उसने अनन्त को लक्ष्य कर कहा- 'ऐ बच्चे, तू हमारी नाव में चलेगा ! मैं जाल लेकर नदी-नालों में चक्कर लगाता रहता हूँ। मछलियाँ पकड़ता हूँ, उन्हें बेचता हूँ। नाव में ही पकाता हूँ, वहीं खाता हूँ। सात दिन में एक बार घर जाता हूँ। चलेगा तू मेरी नाव में !'

अनन्त ने सिर झुकाकर हामी भरी।

तब चल मेरे साथ ! बनमाली बोला।

नाव में चढ़ने के लिए अनन्त पानी में उतर गया था।

'अरे नहीं नहीं, अभी नहीं ! तेरे घरवालों से बिना पूछे ले गया तो वे मारपीट करने लगेंगे।'

अनन्त ने कन्धे उचकाकर कहना चाहा कि कोई ऐसा नहीं करेगा। लेकिन बनमाली ने उसे साफ़ कह दिया- 'नहीं नहीं, अभी तू घर जा।'

अनन्त ने नौका के सामने वाले हिस्से को जकड़कर थाम लिया था। धनंजय से डाँट खाकर बनमाली नाव में बैठ तो गया पर इस बच्चे के लिए उसके मन में गहरी

133. नाखून काटने का औजार।

134. मालो संस्कृति में माँ-बाप के मर जाने पर गले में एक महीने दिन तक धारण किया जाने वाला लोहे का एक छोटा टुकड़ा।

135. एक पेड़ का फल, जिससे गोंद निकाला जाता है, इससे जाल पर लगाने से जाल को मजबूती मिलती है।

करुणा जाग गई थी। उसने सोचा, इतनी देर बाजार में अपने साथ घुमाता रहा। उसे घर तक छोड़ देना चाहिए था।

धनंजय ने पानी में लगगी फेंककर एक झटका दिया। अनन्त के छोटे से हाथों के बंधन से नाव मुक्त हो गई और दाहिनी ओर मुड़ती हुई देखते-देखते अंधकार में ओझल हो गई। एक दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए अनन्त किनारे पर आ खड़ा हुआ। उसने दूर तक नजर डाली पर नाव कहीं नहीं दिखी। चारों ओर अंधेरा छाया था। कुछ भी नहीं दिख रहा था। पर वह घर का रास्ता पहचानता था। डर-भय की कोई बात नहीं थी। लेकिन उसका शरीर और मन दोनों हताश थे। उसके पाँव घर की ओर उठना नहीं चाह रहे थे। बार-बार बनमाली के अंतिम शब्द कानों में गूँज रहे थे- 'अभी तू घर जा। मैं तेरे टोले को पहचानता हूँ। मेरी बहन उसी टोले में ब्याही गई है। तू चिन्ता मत करना। मैं जरूर आऊँगा।'

तुमने कह तो दिया, फिर आओगे, लेकिन कब! मेरे तो पैर घर लौटना ही नहीं चाहते। आखिर तुम कब आओगे। यह सोचते सोचते अनन्त ने घर के दरवाजे पर कदम रखे। उसे पहले से ही एक परिचित आवाज सुनने की आशंका थी और उसे वही सुनाई पड़ी- 'तेलमरी बत्ती की तरह निमज्जिम करता रहता है, मरता भी नहीं। आज इतनी देर तक कहाँ लापता रहा। सोचा था, किसी भूत-प्रेत ने पकड़ लिया होगा। अब देखती हूँ चाँद की रोशनी की तरह हाजिर है। मन करता है जलती लकड़ी सिर पर मारकर भगा दूँ तुझे, मुँहजली बेटी ने मेरी जिन्दगी नरक बना डाली है।'

बसन्ती (सुबला बऊ) कुछ देर पहले अनन्त को नदी के किनारे खोज निराश होकर लौट आई थी और बुझे मन से घर के कामकाज में लग गई थी। माँ को इस तरह अंट-शंट बकते सुनकर वह दौड़कर आई और बोली- 'चुप रहो। अभी-अभी उसकी माँ मरी है। उसके हाथ में अग्नि है और मुँह में श्राद्ध का भोजन। तुम यह सब क्यों कह रही हो। ऐसा तो दुश्मनों को भी नहीं कहा जाता।'

'दुश्मन! यही तो मेरा सबसे बड़ा दुश्मन है। अभी मर जाए तो सुबचनी¹³⁶ की पूजा दूँगी।'

यह सुनकर सुबला बऊ का आपा होश में नहीं रहा। 'ये भला क्यों मरे, उसके पहले मैं ही मर जाऊँगी। मैं ही निकल जाती हूँ।'

'माँ इस पर नरम पड़ गई। ठीक है, अभी कुछ नहीं करती, लेकिन एक दिन इसकी पीठ पर जलती लकड़ी मार इसे भगाकर दम लूँगी।'

136. एक मालो देवी।

मौसी ने लेटे-लेटे आज अनन्त को ढेर सारी नई बातें बताई, जैसे मर जाने के बाद माँ, माँ नहीं रह जाती, दुश्मन हो जाती है। मरने के बाद जहाँ चली जाती है, वहीं अपने बेटे को ले जाने की घात में लगी रहती है। एक महीने जब तक श्राद्ध-शांति न हो जाए, तब तक बड़ा डर रहता है।

आत्मा सदा बेटे के चारों ओर चक्कर लगाती रहती है। उसे अंधेरे में, बरगद या हिजल पेड़ के नीचे अथवा नदी के किनारे खड़े देख वह उसे पकड़ ले जाती है और मारकर फेंक देती है।

उस रात अनन्त ने माँ को सपने में देखा। फटी-पुरानी गुदड़ी लपेटे वह कहीं से आई और नाले के किनारे ठोकर खाकर गिर पड़ी। इस बात में कोई सन्देह नहीं कि वह अनन्त को लेने ही आई थी। लेकिन उसके चेहरे पर तो ऐसा कोई भाव नहीं दिख रहा था। क्रोध, घृणा आदि कुछ भी नहीं, जिससे यह साबित हो कि वह उसे पकड़कर मार डालने के लिए ही आई थी। अनन्त को याद आया कि सपने में उसने जिस माँ को देखा था, उसकी आँखों में करुणा थी और चेहरे पर दुख की मलिन छाया। उसने सोचा माँ उसे लेने जरूर आई होगी, लेकिन मारकर फेंकने के लिए नहीं, अपने पास रखने के लिए। जरूर अनन्त के लिए माँ के मन में ममता जागी होगी..

हवन की सामग्री सजाते-सजाते बड़ी देर हो गई थी। बेचारा छोटा बच्चा भूख से बेहाल था। सुबला बऊ समझ तो सब रही थी पर वह भला करती भी क्या। एक तो विधवा, ऊपर से माँ-बाप पर बोझ। और उसके भी ऊपर, जिससे उसका दूर-दूर तक खून का रिश्ता नहीं, ऐसे मातृहारा बच्चे के लिए उसकी माँ के श्राद्ध-संस्कार का झंझट मोल लेना, जो उसके परिवार के लिए असह्य था। वह खुद तो भोग ही रही थी। माँ-बाप को भी भोगा रही थी। बेचारा बाप रातभर मछलियाँ पकड़ता था और सुबह टोकरी भर मछलियों के साथ घर लौटता था। काट-कूटकर कुछ को सूखने के लिए धूप में फैलाना और कुछ को धोकर चूल्हे पर चढ़ाना पड़ता था। माँ का काम तो बस हुक्म चलाना था। घर के छोटे-बड़े सभी काम करते हुए वह किसी तरह बाप को कुछ खिलवाती, तब कहीं जाकर उसका दिमाग ठण्डा होता था। आज उसी के पैसे लेकर उसी को बाजार भेजकर थोड़ा अरवा चावल तथा एक-दो केले मंगाने थे। एक महीने तक ये क्रिया रोज करनी थी। उस चावल से सुबला बऊ रोज मालसा में जाऊ पकाती। केले के खम्भे काटकर सात डोंगे बनाती। उसमें जाऊ¹³⁷ और केला रखकर तुलसीचौरा के पास क्रम से सजा देती। अनन्त नहाकर आता और उनमें पानी

137. बिना दूध की खीर।

डालता। फिर वह दूर खड़े होकर कौओं को उसे खाते देखता रहता। कभी-कभी कौए नहीं भी आते। तब वह बेचारा डोंगा हाथ में लिए उन्हें बुलाता, 'आ आ' करता घूमता। गाँव के लोग कहते कि उसकी माँ कौए का रूप धारण कर अनन्त का दिया जाऊँ और केला खाती है। अनन्त जो कुछ सुनता उस पर अविश्वास नहीं कर पाता। जो कौए खाने आते, वह उनपर गौर से नजर डालता और पहचानने की कोशिश करता कि उनमें से उसकी माँ कौन हो सकती है? अब वह मनुष्य तो थी नहीं कि अनन्त से बात कर पाती। लेकिन खाते-खाते गर्दन ऊँची कर अनन्त को देख तो सकती थी। फिर उसे अचानक लगता यही कौआ उसकी माँ है, लेकिन वह तो बिना पूरा अन्न खाए ही उड़ गया।

घाट पर अनन्त जब ये बातें नदी में नहाती औरतों को बता रहा था तो कुछ हँस रही थीं कुछ दुख जता रही थीं। वह केले के खम्भे के डोंगों को धोने गया था। उन्हें लिए-लिए ही उसने नदी में डुबकी लगा ली, फिर मिट्टी के एक छोटे-से घड़े में जल भरते हुए घर लौटने को तत्पर हुआ। इसी बीच एक औरत ने उससे पूछा- 'अच्छा तो तेरी माँ कौआ बनकर आया करती है?'

'हाँ।'

'बिना पूरा अन्न खाए उड़ जाती है!'

'हाँ'

'पूरा क्यों नहीं खाती?'

'कहीं मैं उससे बात न करने लगूँ, इसी से जल्दी उड़ जाती है। जो मर जाते हैं वे जिन्दा लोगों से बात नहीं कर सकते ना! इसलिए वे जिन्दा लोगों की बात ही नहीं सुनना चाहते। मन ही मन सब समझ-बूझ कर चले जाते हैं।'

अनन्त का मन विगलित होने लगा था।

माँ जब जिन्दा थीं, अनन्त हरदम उसके लिए गर्व का अनुभव करता था। माँ की तुलना में वह कितना अकिंचन था। लेकिन माँ ने मरकर लोगों के सामने उसका सिर नीचा कर दिया। माँ की छत्रछाया में शायद वह कठिन से कठिन काम भी कर जाता। अब माँ नहीं रही तो लगता है उसके पास कुछ नहीं है। लोगों की नजर में उसके जीवन की कीमत फूटी कौड़ी के बराबर भी नहीं। वह मर भी जाए तो किसी का कुछ नहीं बिगड़ेगा। कोई उसके बारे में सोचेगा तक नहीं, लेकिन उसकी माँ! उसे मरे तो महीना गुजरने वाला था पर उसे कोई नहीं भूला था। घाट पर इकट्ठी हुई महिलाएँ अक्सर उसकी माँ के बारे में बातें करती थीं, शोक प्रकट करती थीं। ठण्डी साँसें भरती थीं खासकर अनन्त को देखते ही वे उसकी माँ की चर्चा शुरू कर देतीं। माँ के प्रति

कृतज्ञता से अनन्त का मन भर आया।

घाट पर एक वधू नहाने-धोने में सबसे अधिक देर लगाती थी, सबसे ज्यादा बक-बक भी वही करती थी। वह बात-बात पर छड़ा काटती थी। दुनिया में उसका परिचय दो ही रूपों में था। पहला परिचय उसका सादकपुर के बनमाली की बहन के रूप में था और दूसरा लबचन्द्र की घरवाली के रूप में। इसमें से पहला अब खत्म हो चुका था। मालो टोले में आजकल वह अपने दूसरे परिचय से जानी जाती। वह बातों-बातों में तुकबन्दी (छड़ा) गढ़ लेती थी, इसलिए औरतों में उसकी खास जगह थी। दस-बीस औरतों में वह अलग से पहचानी जाती थी। श्राद्ध-कर्म देखने आई बहुत सी औरतों में वह भी थी। नाई ने आकर सबसे पहले अनन्त का मुंडन किया। अनन्त के कन्धे तथा कमर के कोरे कपड़े, पूरे महीने सोने के लिए बिचाली (सूखी घास) और उसका अधफटा कुशासन इसी औरत ने इकट्ठे किए थे और परम्परा के अनुसार नदी किनारे घाट से थोड़ी दूर स्थित कीचड़-वाली जगह पर उन्हें गाड़कर नदी में नहा भी आई थी। पुरोहित ने पाँच मिट्टी के पात्रों में चावल भरे और अनन्त के मातृ-श्राद्ध का समापन किया। उसने दक्षिणा में मिली चवत्री अपनी अंटी में खोंसी और विदा ली। इसके बाद उसी औरत ने जल्दी से भोजन परोसने को कहा। बोली- 'भात परोसने में अभी कितनी देर है? बेचारा बच्चा भूख से बिलबिला रहा है।'

सुबला बऊ ने अकेले ही इतने सारे काम अपने जिम्मे ले रखे थे इसलिए देर तो होनी ही थी। फिर भी उसने बड़े कायदे से पाँच व्यंजन पकाए थे। अनन्त एक जगह चुप बैठा था। इधर मौसी की माँ खौंखियाने लगी थी- 'निकम्मा! आवारा! ओ रे मेरे निकम्मे ठाकुर! तुझसे एक केले का खम्भा भी काटकर नहीं लाया गया।' उस औरत ने बीच में ही उसे टोका- 'रोज तो गाली देती ही हो माँ! आज तो बग़्खा दो। लाओ, दाव मुझे दो। मैं थोर ¹³⁸ काट लाती हूँ।'

एक लम्बे खोल ¹³⁹ में भात तथा अन्य व्यंजन सजाकर सुबला बऊ बोली- 'ले राँड़, तेरा यह अन्तिम भोजन है। खा ले। और तो कभी खिलाऊँगी नहीं।' खोल के एक कोने में पान, सुपारी और थोड़ी सी तमाकू की टिकिया भी रख दी गई। उसी औरत ने सुबला बऊ से कहा था- 'तुमसे तो उसकी बड़ी पिरीत थी। तुम मत जाओ। मैं जा रही हूँ इसको लेकर।' अनन्त को साथ लेकर वही खोलों को नदी के किनारे रखने गई थी। अनन्त को उसी ने निर्देश दिया कि, 'इन्हें ऐसी जगह पर रखना, जो न

138. केले का खम्भा।

139. केले के खम्भे को काटकर बनाया गया दोना।

गीली हो, न सूखी। और खबरदार, सीधे वापस आना, मुड़कर पीछे मत देखना।’

अनन्त इस तरह अपनी माँ को इस जन्म का अन्तिम भोजन देकर औरत के पीछे-पीछे घर आ गया। लोग चौराहे पर रोगी को नहलाते हैं और फूल फेंक देते हैं (यह एक टोटका है), इस पर पाँव रखने वाला मर जाता है। ये मुसीबत क्यों नहीं उसी पर पाँव रखकर यहाँ से टलती! एक महीने तक तो केवल एक बार खाता था। अब तीन बार ठूसता है। जाने कहाँ समा जाता है सब खाना! बुढ़िया दिन रात यही सोचती रहती। अकेला एक खटने वाला तीन-तीन पेट पालता था। ऊपर से यह अनचाहा बोझ। क्या करे, समझ में नहीं आता।

एक दिन उसने प्रस्ताव रखा- ‘छराह (श्राद्ध) तो हो गया, अब इसका कान पकड़कर किसी मछरे की नाव में फेंक दो।’ बूढ़े ने आग में घी डाला- ‘ठीक बोली तुम। जगता नदी के गहरे जल में एक दिन इसका कान पकड़कर फेंक दूँगा। मुसीबत टल जाएगी।’

नदी पर तैरती नाव में बैठ मछली पकड़ने के आनन्द की कल्पना मात्र से अनन्त के मन में मतवाली हवा का एक झोंका सा लगा था लेकिन बूढ़े बुढ़िया की बात सुनकर वह डर गया था। इसके बावजूद एक दिन शाम को बूढ़े ने जाल को कन्धे पर डाला और उसे हुक्म दिया- ‘अरे अनन्त, हुक्का-चिलम उठा ले, आज तुझे मछली पकड़ने ले चलूँगा।’ बिजली की गति से अनन्त उन सारी चीजों को उठा लाया, जिन्हें मंगाया गया था और मजबूर-सा उसके पीछे-पीछे हो लिया। तभी मौसी दौड़कर आई और उसे रोक लिया। उसका बाप भयंकर गुस्सैल था। गुस्से में अगर बीच नदी में अनन्त को मारना शुरू कर दिया तो कौन बचाएगा उसे।

‘अभी तो उसके हाथ से हवन की आग भी ठण्डी नहीं हुई है और तुम उसे मछली पकड़ने ले चले। छोटा बच्चा है, पानी में डूबकर मर सकता है। साँप काटने से मर सकता है, कौन बचाएगा उसे। अभी वह बहुत छोटा है। कुछ दिन रहने दो, फिर अपने साथ ले जाना।’ मौसी की बातों से अनन्त का उदास चेहरा और बुझ गया। उससे अधिक बूढ़े और बुढ़िया बुझ गए थे। अनन्त को अपने सामने भविष्य में आने वाले एक भयंकर तूफान का आभास मिलने लगा था।

बीच-बीच में सचमुच भयंकर तूफान आता था। कभी दिन को कभी रात को। दिन के तूफान को लेकर तो कोई चिन्ता नहीं। लेकिन रात के तूफान की आशंका से दिल धक-धक करने लगता। दिन में बाँस की खूंटियों के सहारे खड़े झोंपड़े थर-थर काँपते दिखते। वे तुड़-मुड़कर जमीन पर गिर भी पड़ते। लेकिन इससे भी डर नहीं लगता, जितना रात में आए तूफान से लगता था। एक बार उठा तो थमने का नाम नहीं

लेता। रात भर इसके थपेड़े लगते रहते। कभी-कभी तो हर रात तूफ़ान आता। लोग दिन भर काम करते, खाते-पीते और शाम होते ही आने वाले तूफ़ान का सामना करने के लिए कमर कस लेते। ईशान कोण पर उमड़ते काले बादल एकाएक सारे आकाश पर धुँ की तरह फैल जाते थे और हू हू करती हुई हवा बहने लगती थी। इसके बाद तूफ़ान उठता। पूरी रात काँपते हुए इस डर में बीतती कि घर अब पड़ा कि तब। एक रात अगर नहीं भी गिरा तो वह इन्तजार की अन्तिम रात तो नहीं होती थी। आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों। डरते सभी थे लेकिन सुबला बऊ तूफ़ान से अधिक अपने बूढ़े बाप से डरती। पता नहीं किस तूफ़ानी रात वह अनन्त को उसकी गोद से खींच अपनी नाव में बैठा लेगा। वह ठहरी बेचारी औरत-जात। बूढ़ा बाप उसके रोके नहीं रुकेगा। तब वह क्या करेगी? एक अबला औरत की सारी संचित पूंजी नष्ट हो जाएगी। तूफ़ानी रात में बूढ़े की नाव न जाने कहाँ पलट जाएगी। वह खुद तो मरेगा ही, इसे भी ले डूबेगा।

अनन्त को दिन में आने वाला तूफ़ान बहुत अच्छा लगता था। एक दिन जब वह यूँ ही टोले में घूम रहा था तो तूफ़ान आ गया। दरवाजे पर खेलते बच्चों को बड़ों ने तुरन्त घरों के भीतर खींच लिया। अनन्त को न किसी ने पुकारा था, न खींचा। बेचारा सोच ही रहा था कि वह कहाँ जाए, तब तक उसने देखा, वही औरत जो उसकी माँ के श्राद्ध के दिन उसके साथ नदी किनारे गई थी, उसका हाथ पकड़कर खींच रही थी। आँधी और बारिश एक-साथ आए और ओले भी पड़ने लगे। अनन्त के मुँड़े हुए सिर पर ओलों ने गहरी चोट पहुँचाई थी। तेज हवा के साथ गिरती बड़ी-बड़ी बूँदों ने उसके शरीर के सूखे चमड़े पर तीर की तरह वार किए थे। तभी तेज हवा आई और उसका घूँघट खुल गया। बड़े शौक से लगाई सिन्दूर की बिन्दी भी बिगड़ गई थी। बड़े-बड़े ओलों ने उसके यत्न से बाँधे हुए जूड़े को बिखरा दिया था। सिन्दूर के निशान को भी धूमिल कर दिया था। परन्तु अपनी चिन्ता छोड़ उसने आँचल से अनन्त के नंगे सिर को ढँक लिया था।

और किसी के घर न ले जाकर वह सीधे उसे अपने घर ले गई और बरामदे में बैठाया। तब तक तूफ़ान का उन्माद और बढ़ गया था। उसका ऐसा मदमाता रूप अनन्त ने अब तक कभी नहीं देखा था। घर की छाजन बुरी तरह काँप रही थी। पौधे पछाड़ खा-खाकर जमीन पर उठ-गिर रहे थे। लता-पत्र टूटकर मिट्टी में लोट-पोट हो रहे थे। तभी न जाने कहाँ से आकर हवा उन्हें दूर बुहार ले जाती थी। तूफ़ान ताकतवर था, इसमें कोई शक नहीं, लेकिन क्या वह औरत उससे कम ताकत वाली थी। तूफ़ान से होड़ लगाकर वह लगातार चिल्ला रही थी— ‘दोहाई राम की, दोहाई लक्ष्मण की,

दोहाई बाण राजा की, दोहाई तीस कोटि देवी-देवताओं की..’ लेकिन तूफान पर इसका कोई असर नहीं हुआ था। घमण्ड में भरा तूफान तीस कोटि देवी-देवताओं को अंगूठा दिखाते हुए बहता चला गया था। अब उस औरत ने दूसरा हथियार प्रयोग किया- ‘हे तूफान, इस घर में तेरे भांजे की बहू है। छूना मत, छूना मत।’ लेकिन तूफान ने इस मन्त्र को भी नहीं माना। अपनी पाशविक शक्ति का पराक्रम दिखाते हुए उसने एक बार घर को झकझोर कर रख दिया था। लेकिन क्या इस नारी को झकझोर पाया। अब वह सातवें सुर में चिल्लाई- ‘जा बेटा जा, पहाड़ पर जा, पर्वत पर जा, बड़े-बड़े बिरिच्छों से जाकर लड़।’ लगता था यह मंत्र काम कर गया। तूफान इस आदेश को अमान्य नहीं कर पाया और कुछ शिथिल पड़ गया। फिर धीरे-धीरे ऊंधा और आखिर में पूरी तरह सो गया। अनन्त भौंचक्का होकर उसके मुँह की ओर ताक रहा है। कैसा सख्त हुक्म दिया। इतना भयंकर तूफान भी इसके आदेश पर सिर झुकाकर चला गया। तूफान जब भी आता है मालो टोले को सांघातिक क्षति पहुँचा जाता है। मछेरों की आधी सम्पत्ति घर में रहती है तो आधी नदी में। अगर किसी का घर-द्वार बच गया तो पाते हैं कि तितास में उनकी नाव टूटकर बह रही है। और जो नाव में रात-रात भर तूफान से जूझ किसी तरह अपनी जान बचाते थे, घर आकर देखते थे कि वहाँ सब-कुछ नदारद था। आज के इतने भयंकर तूफान से मालो टोले के लोगों को अधिक नुकसान नहीं हुआ था। बस दो परिवारों का नुकसान हुआ। कालोबरन बड़ी नाव लेकर मछली पकड़ने गहरी नदी में गया था। उसकी नाव बुरी तरह टूट गई थी। लोग पैदल चलकर दूसरे दिन घर आए तो परिवार वालों को खबर मिली कि नाव का कुछ नहीं बचा। वह एकदम चूरमार हो गई।

और घर टूटा अनन्त की मौसी के बाप का। वही घर टूटा, जिसमें मौसी अनन्त को साथ लेकर सोया करती थी।

घर की मरम्मत में कितने पैसे खर्च होंगे, हिसाब करने पर पाया गया कि जो कुछ पास में है, सब खत्म हो जाएगा और वाकई वह खत्म हो भी गया। अब उनकी हालत दिन कमाओ, दिन खाओ वाली थी।¹⁴⁰ जिस दिन मछली न मिले उस दिन उपवास करना पड़ता। घोर दुर्दिन की इस हालत में एक बाहरी जीव को पालना और भी मुश्किल था। बूढ़े ने इस बात की रट लगा रखी थी। अगर वह मुँह से कुछ नहीं भी कहता था तो भी मौसी उसके मन की बात समझ जाती थी। अपनी माँ के हाव-भाव से तो उसे साफ़ शंका होने लगी थी कि वह किसी दिन बच्चे की पीठ पर जलती

140. रोज कुआँ खोदना था रोज पानी पीना

लकड़ी मार ही देगी।

बहुत दिनों से वह कालो की माँ के बारे में सोच रही थी। एक दिन उसके पास जा पहुँची और बोली- 'आप तो उसकी माँ को बहुत प्यार करती थीं। मेरे पास तो उसे कष्ट ही कष्ट है। आप उसे अपने पास रख लें। दो मुट्ठी खाकर वह मरने से तो बच जाएगा।'

पर कालो की माँ इन दिनों खुद परेशान थी। उसकी इतनी बड़ी नाव जो टूट गई थी। ऐसी मुसीबत में मन तो दुखी होगा ही। ऐसे समय आदमी दूसरे का दुख सुनने के बजाय अपना सुनाना अधिक पसन्द करता है। फिर भी कालो की माँ ने उसे एकदम निराश नहीं किया, बोली- 'बारिश बीतने दो, अच्छे दिन फिरेंगे, कालोबरन उत्तर से काठ लाएगा और नई नाव बनाएगा। उस नाव में जब मछरे मछली पकड़ने जाएंगे, तब कालो अनन्त को साथ ले जाना नहीं भूलेगा।' यह बात सुनकर सुबला बऊ के भीतर कहीं एक टीस उठी। लेकिन वह बात तो अब पुरानी पड़ गई थी। और एक दिन जोर की बारिश हुई। बारिश के समय पान तेजी से सड़ते हैं इसलिए दूकानदार कटे-फटे रद्दी पानों को बीड़ों में सजाकर बेच दिया करते। अनन्त के हमउम्र ऐसे पान बीन लाते। मौसी की माँ ने अपनी आँख से यह दृश्य देखा। वे ढेर सारे पान ले आए थे और उनकी माँओं ने डलियों में सजाकर उन्हें धोया और खा-खाकर अपने मुँह रचा लिए। 'ये अनन्तवा क्या कर रहा था? जाता तो ये भी पान ले आता।' बुढ़िया ने कहा। अनन्त को गलियों-बाजारों में घूमना बड़ा भाता। बुढ़िया के बोलने पर वह खुशी से बाजार की ओर दौड़ा। बारिश थोड़ी देर पहले ही बन्द हुई थी, उससे कहीं-कहीं गट्टे उफ़रने लगे थे। बाजार के रास्तों पर इन्हीं गट्टों का पानी बह रहा था। इस पानी के साथ छोटी-छोटी मछलियाँ भी चली आई थीं। अनन्त के कुछ हमउम्र अपने बाप-दादों की देखा-देखी रास्ते में एक जाल फैलाकर बैठ गए थे और उसे ऊपर-नीचे कर रहे थे। ऐसा लग रहा था जैसे उन्हें ढेरों मछलियाँ मिल चुकी हों। खिलन्दड़े लड़कों ने अनन्त का ध्यान खींचा। वह दौड़कर उनके पास पहुँचा और बोला- 'मछलियाँ पकड़ में आ रही हैं! कौन-कौनसी हैं?'

'यही तो, चाँदा, बैचा, तितपुँटी। ढेरों मछलियाँ हैं आज तो पानी में।'

उन बच्चों की टोली में मिलकर अनन्त भी मछली पकड़ने के खेल में खो गया था। बड़ी देर तक यह खेल चला। सिर्फ़ खेल। जैसे लड़कियाँ रेत-मिट्टी से भात पकाकर रसोई-रसोई खेलती हैं, वैसा ही था यह मछली पकड़ने का खेल।

सहसा उनमें से एक ने आविष्कार किया कि एक छोटी 'कै' माछ उधर के तालाब में उछलती दिख रही है। सभी बच्चे हो-हल्ला करते हुए उधर दौड़े और जिसने

भी पाया, उसे लूट लिया। फिर तो एक के बाद छोटी-बड़ी कई मछलियाँ दीख पड़ीं। अनन्त के दल में तो महाजोश आ गया था। जिसने जो पहना था उसे खोल लिया और उसका कोंचड़ ¹⁴¹ बनाकर जी भर मछलियाँ पकड़ीं। इस काम में शाम हो गई थी। रास्ते पर उफ़नता हुआ जल भी तालाबों, पोखरों और नालों में समा गया था और 'कै' माछ का आना भी रुक गया था। तब तक अनन्त के मन से पान की बात एकदम उड़ चुकी थी। एक कोंचड़ जीवित मछलियाँ लेकर वह खुशी-खुशी घर में घुसा। घर के मालिक का मन दुःखी था। आज नाले में जाल डालकर ढेर सारी पंटी मछलियाँ पकड़ी थीं, लेकिन उनमें से एक भी नहीं बिकी। तेज बारिश के कारण न तो व्यापारी आए, न हाट लगी। धूप निकलने का नाम नहीं ले रही थी कि उन्हें सुखाकर रखा जा सके। 'अब इतनी मछलियों का वह क्या करे? मैंने माँगा पान, तू ले आया माछ, क्या करूंगी भला मैं इन मछलियों का।' बूढ़ी गजगजाने लगी थी।

दूसरे दिन दोपहर बूढ़ी को याद आया कि अब तक उसने अनन्त को जलती लकड़ी से नहीं मारा। चूल्हे के पास जाकर देखा तो जलने लायक लकड़ी ही नहीं थी। चूल्हे की ओर मुँह किए उसकी बेटी घास जलाकर खाना बना रही थी। पास बैठा अनन्त कुछ भकोस रहा था। बूढ़ी ने झपाक से एक मुट्ठी जलती घास उठाई लेकिन इससे तो पीठ पर मारा नहीं जा सकता था। इसलिए वह उसका चेहरा जलाने आगे बढ़ी। उसने एक हाथ से अनन्त का हाथ पकड़ा और दूसरे से जलती हुई घास लेकर उसके मुँह में ठूसनी चाही। लेकिन लड़की ने एक झटके से बूढ़ी के हाथ से सुलगती घास छीनकर दूर फेंक दी थी। इस छीना-झपटी में बूढ़ी का ही हाथ थोड़ा-सा जल गया था। क्रोध से काँपते हुए उसने बेटी का गला धर दबाया। फिर माँ, बेटी में गुत्थम-गुत्थी शुरू हो गई। लड़की ने माँ को जमीन पर गिरा दिया और उसकी छाती पर चढ़ बैठी। फिर बाल पकड़कर उसके सिर को जमीन पर तीन-चार बार दे मारा। बेटी के हाथों से मुक्ति पा बुढ़िया घर के भीतर घुस गई। भात की हण्डी बड़े घर में खींच लाई और अन्दर से दरवाजा बन्द कर लिया।

इस मारामारी के बीच अनन्त बाहर चला गया था। जिसके आदेश पर भयंकर तूफ़ान रुक गया था, उसी को बुलाने निकला था। उसके बिना यह युद्ध कौन रोक सकता था। लेकिन वह घर में नहीं मिली। उसने लौटकर मौसी को उदास बैठे पाया। उसके बाल इधर-उधर बिखरे हुए थे। साड़ी अस्त-व्यस्त हो गई थी। युद्ध-विजय की थकान से जैसे मौसी टूट गई थी। डरते-डरते वह मौसी के पास जा खड़ा हुआ। सहसा

141. झोली।

उसकी ओर देख मौसी की आँखें सुलग उठीं। वज्र की तरह गरजते हुए वह बोली- 'शत्रु (शत्रु) तू अभी मेरे घर से निकल। अगर तूने इस घर का एक दाना भी खाया तो तुझे अपनी पुशतों का माँस खाने का पाप लगे। तेरे लिए मैंने अपनी माँ को मारा। तू मेरा लगता क्या है? तू तो मुसीबत है मेरी! पाँवों की बेड़ी है। जा अभी चला जा, यमराज के मुँह में जा, डाकिनी, योगिनी के मुँह में जा, काली के मुँह में जा..धर्मराज भी तुझे मौत के मुँह से न लौटा पाएँ। यमराज तुझे आँख से, नाक से, सिर से, माथे से, जहाँ से खाना चाहे, खाए। तुझे जहाँ यम बुलाए, वहीं जा। मुझे लौटकर मुँह मत दिखाना। तेरी माँ जहाँ गई, वहीं जा।'

लेकिन यह क्या! अनन्त का स्नेह भीगा म्लान मुख क्षण भर में दृढ़ और कठोर हो उठा था। उसकी बड़ी-बड़ी आँखों से बालसूर्य की लालिमा का तेज फूटने लगा। यह क्या! सुबला बरु कोई सपना तो नहीं देख रही थी! जैसे कोई युद्धजयी वीर पलक भर में सबकुछ पीछे छोड़ आगे बढ़ जाता है, वैसे ही अपने दो छोटे-छोटे पाँवों को पटकते हुए, भूमि को कँपाते हुए अनन्त चला जा रहा था। वह दौड़ नहीं रहा था। धीरे-धीरे कदम बढ़ा रहा था। लेकिन उसका हर कदम जैसे सुबला बरु के मन पर हथौड़े मार रहा था। वह बरामदे से दुआर पर आ गया था। उसे ऐसा लगा उसके स्नेहिल हृदय की सीमा-रेखा को तोड़ अनन्त जैसे अभी तुरत एक अनजाने जगत में कूद पड़ेगा। सुबला बरु से अब बैठे नहीं रहा गया। उठकर हाथ बढ़ाते हुए उसने थके हुए कण्ठ से आवाज दी- 'अनन्त!' पर वह रुका नहीं। अनन्त ने देखा और फिर चल पड़ा। सुबला बरु लड़खड़ा गई थी वह गिरने ही वाली थी कि उसकी माँ ने दौड़कर उसे पकड़ लिया और दोनों नीचे बैठ गईं। उसने माँ के सीने में सिर छिपा लिया और उसकी दोनों आँखें मुँद गईं।

आज इस अन्तहीन आकाश के नीचे अनन्त की परम मुक्ति का दिन था। पीछे से कोई भी बुलाए, अब वह जवाब नहीं देगा। और वह तितास के किनारे जा खड़ा हुआ। उसने दिल खोलकर नदी को देखा। लहरों पर लहरें उठ रही थीं। चंचल स्वप्नों की तरह। उदात्त संगीत की तरह। नदी में जल बढ़ रहा था। नावें तैर रही थीं। न कोई बंधन, न बाधा। वह जो भी देख रहा था, सबमें एक जीवन्त व्यस्तता थी। काश, आज इसी समय वह आ जाता! आने को तो कहकर गया था, कितने दिन तो बीत गए, वह कहाँ आया? बाजार के घाट पर जिस जगह उसने अपनी नाव ठहराई थी, वह वहीं जा खड़ा हुआ। उसने तय किया कि वह दिन पर दिन यहीं बैठा रहेगा। उसकी प्रतीक्षा करेगा। किसी हाट के दिन वह जरूर आएगा।

नाले के मुहाने पर एक बहुत बड़ी टूटी हुई नाव मरम्मत के लिए रखी हुई थी।

अनन्त उस पर जा चढ़ा। काई आदि जमी होने से उस पर बहुत फ़िसलन थी। बाटे ¹⁴² को पकड़कर वह भीतर घुस गया। आधी नाव पानी से भरी थी। झाँककर देखने पर अनन्त को डर लगा। नाव के तख्तों पर जमी काई से यदि एक बार उसका पैर फ़िसला और वह पानी में जा गिरा तो डूबकर मर ही जाएगा। नाव के पीछे की ओर कुछ सूखे पटरे थे और भीतर एक ऐसी जगह थी, जहाँ न धूप घुस सकती थी न बारिश। यहाँ तो उसे कोई देख भी नहीं पाएगा। भारी सुंदर जगह मिली। वह तो यहाँ सारा जीवन बिता सकता था। जब तक वह नहीं आ जाए, अनन्त यहीं इन्तजार करता रहेगा।

यहाँ से नदी सीधे दक्षिण की ओर चली जाती थी। नाव के ऊपर खड़े होकर दूर तक देखा जा सकता था। अनन्त को ऐसा लगा, सुदूर दक्षिण में एक राज्य होगा, जहाँ से कोई लहरों को धक्का देता होगा, जिससे वे आकर अनन्त की इस नाव से टकराएँ। वह उसी दिशा में टकटकी लगाए था। लेकिन उसे जिसका इन्तजार था, वह उधर से नहीं पश्चिम की ओर से आने वाला था।

बीच-बीच में वह पश्चिम की ओर भी उझक लेता था। पर अभी तक उसका कोई अता-पता नहीं था। उसका मन व्यर्थता-बोध से भर गया। फिर दक्षिण की ओर देखने पर उसे नदी का विराट फैलाव नजर आया। जिससे उसके मन में आशा जगी। वहाँ बैठे-बैठे शाम को जब उसे बड़ी भूख महसूस हुई तो धीरे-धीरे नीचे उतरा और पान-वाले के आगे जा खड़ा हुआ। आज हाटवार नहीं था। पानवाले वैसे ही अच्छे और खराब पान चुनने में लगे थे। एक के इशारे पर अनन्त एक गागर पानी भर लाया। उसने बदले में एक गुच्छा पान उसकी ओर फेंक दिया। पर अनन्त ने पान नहीं उठाए। न जाने क्या सोच पनवाड़ी ने उसे एक पैसा दे दिया। अनन्त ने उससे ढेर सारे भुने चने खरीद लिए, भरपेट खाया। रात होते ही घना-काला अंधकार घिर आया था। नाव के पटरे पर सोते हुए उसे काफ़ी डर लग रहा था लेकिन न जाने कब उसे नींद आ गई थी। सुबह उठने पर उसने महसूस किया कि सारी रात माँ उसके पास सोई थी। माँ की देह की गर्माहट अभी भी पटरे पर मौजूद थी। सब झूठ बोलते हैं। माँ क्या कभी उसका अनिष्ट कर सकती है? मर गई है, इसलिए दिन में नहीं दिखती। परन्तु हर रात वह ठीक उसके पास मौजूद होगी। अब वह कभी किसी से नहीं डरेगा?

अनन्त ने अच्छा करतब दिखाया और आवेश में घर छोड़कर चला गया। जहाँ भी रहेगा यह तय है मरेगा नहीं। एक समूचे मनुष्य का यों ही मर जाना क्या आसान है। यदि उसे कोई रास्ते में मिल गया, जो अपने साथ ले जाकर उसका पालन-पोषण करने

142. नाव के बीच में लगी मोटी लकड़ी।

लगा तो वह यहाँ लौटकर कभी नहीं आएगा। और आएगा भी क्या मुँह लेकर ! भगवान करे वह लौटकर कभी न आए। जिसकी माँ नहीं उसके लिए तो दुनिया के बाकी सब लोग बराबर हैं। वह चाहे किसी के भी घर रहे। उसके जाने के चार दिन बाद एक दोपहर गाँव की सारी औरतें मजलिस सजाकर बैठी थीं। उनके बीच सुबला बऊ चुप बैठी सोच में डूबी थी। तभी अनन्त की बात चली और वह बोल पड़ी- 'अच्छा हुआ, चला गया। मुसीबत टली। बोज़ किसी का और संभाले कोई। तुम्हीं बोलो दीदी ! न मेरे पेट का न पीठ का। मैं क्यों इतनी मगज़मारी कर रही हूँ। माँ के मरने के बाद खाली घर में पड़ा मर रहा था, कोई बात भी नहीं पूछ रहा था। उसकी दशा देखकर मैं उसे अपने यहाँ ले आई थी। अब श्राद्ध-शांति हो गई। उसका मन जहाँ करे, वहाँ जाकर मरे। मेरी जिम्मेदारी खत्म।'

उसने इतनी सारी बातें कहीं, जिससे लोग अनन्त के बारे में और कुछ न पूछें, सारा प्रसंग ही दब जाए। फिर भी एक ने कह ही डाला- 'मेरे बिन्दाबन ने उसे गमछा बिछाकर हाट में खलसे मछलियाँ बेचते देखा।'

और एक पान चबाते हुए बोली- 'मेरे नन्दलाल ने उसे पान की दूकान के पास चुपचाप खड़े देखा। पनवाड़ी कितने सड़े-गले पान उसकी ओर फेंक रहा था, पर वह उन्हें बिना छुए चुप खड़ा था। सुबला बऊ को कुछ और सुनने की इच्छा नहीं थी, लेकिन तीसरी ने भी अपनी बात कह ही डाली, कल रात के अंधेरे में वह पान-सुपारी लिए लबचन्द्र की घरवाली के साथ उसके घर जा रहा था। लबचन्द्र बऊ ने उसे भात खिलाया और बिस्तर लगा दिया था। लेकिन वह उस पर लेटा तक नहीं, बल्कि उठकर बाहर निकल गया और भूत की तरह गहरे अंधकार में विलीन हो गया।'

दिन निकलने पर बेचारी लबचन्द्र की बऊ ने अपने घरवाले को कहकर उसे आस-पास खोजने की जो जहमत मोल ली, उसे शब्दों में नहीं बताया जा सकता। किसी ने कहा जंगल में होगा, किसी ने कहा सियार की माँद में होगा, कोई बोला यात्राबाड़ी के श्मशान में बने मठ के भीतर दिखाई पड़ा था।

'लड़का पागल हो गया था, नहीं तो तुम्हीं बोलो दीदी, क्या वह ऐसा करता !'

लबचन्द्र की बऊ के मन में उसके लिए कितना दर्द था। उसके घरवाले ने दर-बदर खोजा। मैं कहती हूँ, परिचय ही कितने दिन का था। कितनी-सी मेल-मुलाकात थी। जब उसकी माँ मरी तब लबचन्द्र बऊ कहाँ थी ! और फिर जब उसे इसी गाँव में मरने आना था, तो मेरे घर के रास्ते पर क्या काँटे बिछे थे। अगर भीख माँग के ही खाना था तो लबचन्द्र का ही घर क्यों ? ऐसी भीख तो मैं भी दे सकती थी। सुबला बऊ ने मन ही मन सोचा लेकिन मुँह से कुछ नहीं कहा।

रात को पेट भर खाने के बाद सोने जा ही रही थी कि बिन्दा की माँ ने बुलाया।
'अरी सुबला बऊ, बाहर आ तो, देख तमाशा!'

हड़बड़ाकर उठते हुए वह बाहर आई, देखा कूड़े के ढेर के पास बैठा अनन्त मुँह-हाथ धो रहा था और लबचन्द्र बऊ हाथ में एक ढिबरी लिए उसके पास खड़ी थी। सुबला बऊ का मन उसके नजदीक जाने का नहीं हुआ। वह हकबका गई थी। अनन्त ने बिना किसी प्रतिक्रिया के हाथ की लुटिया नीचे रख दी और गट-गट करता भीतर चला गया। कोई उसे कुछ नहीं कह सका। लौटते समय सुबला बऊ ने कहा— 'बिन्दा की माँ, कहो तो एक दिन उसको पकड़कर इतना मारूँ कि जन्म-भर का बदला चुक जाए।'

बिन्दा की माँ चुप रही। भीतर-भीतर क्या साजिश चल रही थी, सुबला बऊ को किसी ने जानने भी नहीं दिया। एक दिन देखा कि लबचन्द्र बऊ का भाई आया हुआ है। कहते हैं उसका नाम बनमाली है। जिस रहस्य को अब तक सबने छिपाया था, वह सहसा प्रकट हो गया था। असल में, नाले के मुहाने पर जो टूटी नाव पड़ी थी, उसी के भीतर से अनन्त को खोजकर बाहर निकाला गया। उसके ठीक दूसरे दिन वे तीनों नाव में सवार हो गए थे। ये बातें सुनकर सुबला बऊ के मन में उससे मिलने की तनिक भी ललक नहीं रह गई।

लेकिन बिन्दा की माँ उसकी दुखती रग को समझ गई थी। बोली— 'इतने दिन पाला-पोसा, खिलाया-पिलाया है और आज उसको पराए लोग लिए चले जा रहे हैं। पता नहीं फिर कभी मुलाकात हो सकेगी कि नहीं। आखिरी बार मिल तो ले उससे।' सुबला बऊ उठ खड़ी हुई और बोली— 'हाँ, आखिरी बार तो मिल ही लूँ।'

घाट पर बहुत सारी औरतें भीड़ लगाए खड़ी थीं। साहा टोले की एक औरत ने कलसी से पानी को हिलाया और उसे भरकर कमर पर रखते-रखते मालो टोले की एक औरत से पूछा— 'कौन किसको ले जा रहा है दीदी?'

'लबचंद बऊ उदयतारा को उसका भाई बनमाली लेने आया है। वही जा रही है। मेरा और उसका मायका एक ही गाँव में है। हमारे घर भी पास-पास हैं।'

'समझ गई।'

औरतों की भीड़ में सुबला बऊ भी जा खड़ी हुई। देखा, दोनों परम प्रसन्न थे। उदयतारा बीच-बीच में छड़ा सुनाकर रंग जमा रही थी और वह कृतघ्न कुत्ता राजी-खुशी इधर-उधर देख रहा था। इस समय उदयतारा लबचन्द्र की बऊ न होकर बनमाली की बहन हो गई थी। उसने बड़े गर्व से घाट पर खड़ी औरतों की ओर देखा। एक बऊ ने उदास चेहरे से उदयतारा पर नजर डालते हुए आह भरी। उसके भी बाप का घर

नवीनागर गाँव में था। उसे खुश करने के लिए उदयतारा चिल्लाकर बोली- 'तुम तो नवीनागर की छबि हो ना ! बहुत दिनों से नहीं देखा था।' जो उदयतारा के मजाकिया स्वभाव से परिचित थीं, वे हँस पड़ीं। छबि भी फ़िक्क से हँस दी थी। फिर बोली- 'रुक री, दामाद ठगनी ! कुछ बातें तो करती जा !'

इसी तरह की हँसी-ठिठोली के बीच बनमाली की नाव ने तितास के जल पर संतरण करता शुरू किया।

आकाश काफ़ी भारी था। चारों ओर बादल छाए हुए थे। दिन-भर सूरज के दर्शन नहीं हुए थे। लगता था आकाश जल भरे बादलों की वजह से नीचे की ओर झुक आया था और सिर पर बोझ की तरह लटक रहा था। ऐसा लग रहा था जैसे किसी मैली-कुचैली कथरी ने गाँववालों की साँसों को अवरुद्ध करने के लिए मालो टोले को ढँक लिया हो। हू-हू करती हवा उठी। सुबला बऊ ने आँचल की कई परतें कर छाती और पीठ को ढँक लिया, फिर एक मिट्टी की कलसी ली और नदी की ओर चल दी।

नदी के किनारे का विशाल मैदान इतने दिनों तक बेकार पड़ा था। मछरे जाल फैलाते थे, उनके बच्चे वहाँ सूत सुखाते थे। बच्चे, बूढ़े, विधवाएँ वहाँ सुबह की धूप सेंका करते थे तो टोले के छोकरे शाम को खेला-कूदा करते थे। एकाध गाय या बकरी वहाँ घास चरने आ जातीं। लेकिन डायन तितास ने धीरे-धीरे अपना मुँह फैलाया और ढेर सारी खाली जमीन निगल ली। अब किसी के लिए यहाँ आसानी से घूमने-फ़िरने की गुंजाइश नहीं बची थी। सूखे के दिनों में कलसी लेकर पानी भरने कितनी दूर जाना पड़ता था। रास्ता खत्म होने का नाम ही नहीं लेता था। और अब इतने ज्यादा पास है कि घर से निकलकर टोले के बाहर पाँव रखते ही पानी। जो थोड़ी सी खाली जगह दिख रही थी, वह भी दो-चार दिनों में पानी से भर जाएगी। पहले वह जहाँ उतरकर नहाया करती थी, अब वहाँ गहरी नदी थी। बड़े जाल के लम्बे बाँस को डुबोकर भी उस जगह के तल की मिट्टी नहीं छुई जा सकती। सिर पर काला आकाश लटका हुआ था। टोले के बाहर तितास का काला पानी साँय साँय करता आगे बढ़ता आ रहा था। उसका मकसद चारों ओर से टोले को धर दबोचना था।

दक्षिण की ओर देखें तो भरोसे की हल्की सी भी किरण न पा दिल धड़क उठता था। आषाढ़ का महीना बीच चुका था। खेत-मैदान जो अब तक सूखे थे, बारिश के जल ने उन्हें धो-पोंछकर वहाँ की गेरुआ मिट्टी को नदी की सफ़ेद धारा के साथ मिला दिया था। सारे सूखे खेत-मैदान जल के अन्तराल में समा गए थे। वहाँ अब तैरने लायक जल फैल गया था। सारी दोमट मिट्टी उसके नीचे बैठ गई थी। ऊपर स्वच्छ निर्मल जल चमचमा रहा था। वैसे तितास का जल धवल नहीं, गेरुआ भी नहीं,

बिल्कुल स्वच्छ, पारदर्शी लेकिन श्यामल था। उस श्यामल जल के ऊपर उठती-गिरती लहरें यहाँ आकर सिर पटकती थीं। हरेक लहर अपने साथ जल का भण्डार लिए आती थी। इससे मछेरों की झकमारी बढ़ गई थी। उन्हें बार-बार नाव बाँधने का खूँटा बदलना पड़ रहा था। कभी जहाँ घुटने भर जल होता था, नाव बाँधने का खूँटा गड़ा होता था, आज वहाँ छाती-भर पानी था। तीन दिनों से नाव कमर भर जल में डूबी थी। चढ़ो तो सारे कपड़े भीग जाते थे। बार-बार खूँटे उखाड़ो, सूखी जमीन पर गाड़ो और नावों को ठेलकर उससे बाँधो, इस तरह ठेलते-ठूलते नावें टोले के सिवान पर पहुँच गई थीं।

बढ़ते हुए जल ने मालो टोले को धक्का देते हुए अपनी पूर्णता की घोषणा कर दी थी। झोंपड़ों के आस-पास बाँस-बेंत और छिटपुट वृक्षों को उसने कमर तक डुबो लिया था। झुरमुट, जिनमें लहरें नहीं घुस पातीं, जलधारा प्रवेश कर जाती और उसमें बड़े ही मुक्त भाव से छोटी-छोटी मछलियाँ तैरती रहतीं। पूंटी, चाँदा और खलसे मछलियों ने अण्डे दिए थे, जिनसे बच्चे निकल आए थे। मछलियाँ दल बाँध कर अपने बच्चों को धारा को धकेलते हुए तैरना सिखा रही थीं। बर्तन धोने जाओ तो वे सब इतने पास से गुजरती दिखतीं कि उन्हें आँचल बढ़ाकर पकड़ा जा सकता था। अनन्त होता तो यहाँ छोटा जाल फेंककर उन्हें पकड़ सकता था। हाट में ले जाकर बेच भी देता। इस समय मछलियाँ मँहगी हो जाया करतीं। ज्वार के समय बड़े जालों से इन्हें पकड़ना मुश्किल होता था किन्तु भाटे के समय जब पानी ढलान पर होता था तब बड़ी-बड़ी मछलियाँ मर जाती थीं। इससे उनकी कीमत गिर जाती थी। अभी तो वे काफ़ी मँहगी हैं।

इस समय घाट पर लोग नहीं थे। एकान्त पाकर दल की दल मछलियाँ किनारे तक चली आईं। न जाने उन्होंने ऐसे कितने किनारे पार किए होंगे और कितने अभी भी पार करने बाकी थे। बाधाओं, विघ्नों के अनेक पहाड़ पार करते हुए कहाँ पहुँचने पर उनकी यात्रा खत्म होगी। कौन जाने इनकी मंजिल कहाँ होगी! लेकिन वे तैरती रहेंगी। किसी बर्तन से जल को छेड़ दें तो उसके आलोड़न से डरकर वे कुछ पीछे जरूर हट जाएंगी। पर जल के स्थिर होने पर फिर सामने आ जाएँगी। हाथ बढ़ाकर पकड़ने जाओ तो वे भाग जाएँगी। जब घाट पर लोगों की भीड़ होती है तो वे लता-पत्रों और झुरमुटों में छिप जाती हैं। गहरे पानी में ये नहीं जा पातीं। छोटी मछलियाँ अगाध जल से बहुत डरती हैं। नदी के ठीक किनारे वे दल बाँधकर घूमती हैं। भीड़ खत्म हो जाने पर फिर अपनी यात्रा शुरू कर देती हैं। उन्हें कोई नहीं रोक पाता।

इस समय घाट पर कोई नहीं था। सुबला बऊ ने आँचल फैलाकर कुछ

मछलियाँ पकड़ लीं। वे पूंटी माछ के शिशु थे। आँचल के बन्धन में फँसकर वे फड़फड़ाने लगे थे। उन्हें जल से दूर करने की उसकी इच्छा नहीं हो रही थी। उसने आँचल फैलाया और उन्हें फिर से पानी में छोड़ दिया। खलसे बालिकाएँ जैसे साड़ी पहने चल रही थीं और चाँदा-बालक कितने स्वच्छ और पारदर्शी थे। उनका शरीर कितना चिकना था। पकड़ें तो हाथ चिपचिपे हो जाएँगे। एक घना छोटा जाल फैलाकर अनन्त इन सबको पकड़ सकता था। कुछ दिनों के बाद जब पानी गले तक आ पहुँचा तथा उमड़-धुमड़ कर और सघन हो गया तो नदी मछलियों के दुर्ग में परिवर्तित हो गई। ऐसे में मालो युवकों को चैन से बैठने का अवकाश नहीं था। बड़े मछरे नाव लेकर बीच नदी में पहुँच जाते थे और भारी-भरकम जाल डालकर मछलियाँ इकट्ठी करते थे। कम उम्र वाले अपने तिकोने ठेला-जाल लेकर इस जल-दुर्ग में लगातार प्रवेश करते चलते थे। कई बार के धक्के के बाद जब वे जाल को अपनी ओर खींचते तो उसमें असंख्य चिंगड़ी संतानें सूँड़ उठाए कूदती नजर आतीं। दस-बारह खेपों में ही मछलियों से नाव भर जाती थी। अनन्त के लिए छोटा सा जाल बुनकर तीन मोटे बाँस की कंचियों में बाँध दिया जाता तो वह ऐसे कितने चिंगड़ी-शिशु मारकर हाट में बेच आता। अगर सुबला बऊ खुद सूत कातकर जाल बुनती और अनन्त छोटी-छोटी चिंगड़ियाँ पकड़कर हाट-बाजार में बेच देता तो दोनों का परिवार कितने प्रेम से चल जाता। माँ-बाप की खिच-खिच से सुबला बऊ बच जाती।

मेघाच्छन्न आकाश कभी-कभी निरभ्र हो जाता। आकाश के काले अयालों रूपी घने जंगल को भेदकर सूर्य हंसता हुआ उगता। शाम को ढलती धूप पेड़-पौधों की शिखाओं पर पीला रंग बिखरा देती। इस समय मालो टोले के अधिकांश मर्द प्रायः नदी में होते और उनकी औरतें सूत सुखाने के लिए घरों से निकला करतीं। चाँगे की शक्ति की एक खूंटी स्थाई तौर पर मिट्टी में गड़ी रहती थी, जिसके ऊपर सूत से भरी हुई चरखी बैठा दी जाती। तकली में बाँधकर दरवाजे के एक किनारे से दूसरे किनारे तक सूत फैला दिया जाता। साड़ी घुटनों तक ऊंची कर टांगों पर सूत को हथेली से धिसा जाता। एक बार रगड़ने पर तकली कोई हजार बार घूमती। दस बार घुमाकर एक बेड़ा¹⁴³ सूत तैयार होता। इसके बाद महिलाएँ छाती का वस्त्र हटाकर तकली को सामने घुमातीं। एक स्त्री लटाई लेकर आगे-आगे चलती हुई चक्कर काटती, जिससे सूत की लच्छियाँ बन जातीं। वैसे तो यह पुरुषों का काम है, लेकिन मालो औरतें किसी काम को औरत और मर्द के लिए अलग-अलग नहीं छोड़तीं। छोड़ने से इनका

143. बंडल या गुच्छा

काम भी नहीं चल पाएगा। मर्द तो बेचारे नदी में पसीना बहाते रहते हैं। सूत की लच्छियाँ कब बनाएंगे। इसलिए जब घर के मर्द नदी की लहरों पर काम में डूबे रहते, तब सभी घरों की महिलाएँ काते हुए सूत की लच्छियाँ बनाने में मशगूल हो जाया करती थीं।

तेली टोले का एक आदमी उसी समय मालो टोले के भीतर से कहीं जा रहा था। जवान मालो बहुओं को ऐसी अर्द्धनग्न अवस्था में पाकर वह ललचाई नजरों से उनकी ओर ताकने लगा। इसके बाद से ठीक इसी समय वह किसी न किसी बहाने इस टोले का चक्कर लगाकर निकल जाता था। किसी के पूछने पर बहाना बना देता था- अमुक के घर जा रहा हूँ। अगर उस अमुक के यहाँ किसी ने पूछा तो किसी और अमुक का नाम ले लेता। पहले-पहल तो औरतों ने उसके इस व्यवहार पर गौर नहीं किया, लेकिन जब उसने अश्लील इशारे करने शुरू किये, तब सबके कान खड़े हुए। सुबला बऊ ने दल के पण्डे¹⁴⁴ का काम किया और एक दिन रात को उसे अपने घर बुला लाई, टोले के कुछ युवा मालो लड़कों ने उसका गला घोटकर मार डाला था, फिर उसकी देह को उठाकर नाव में रखा और किसी गहरी नदी में फेंक आए। धारा के बहाव में वह कहाँ गया, किसी को पता नहीं चल पाया।

मालो टोले में केवल तामसी के बाप ही बामुन, कायतों से मेल-जोल रखते थे, उनका घर बाजार के पास था। बामुन, कायतों के लड़के उसके घर आकर तबला बजाया करते थे। तामसी के बाप को वे अपने जात्रा-दल (नौटंकी) में राजा का पार्ट दिया करते थे, इसलिए वह इस विषय को जानकर भी अनजान बना रहता था। टोले के सारे मालो उससे बहुत चिढ़ते थे और वह भी मालो लोगों को बहुत सहन नहीं कर पाता था। ब्राह्मण और कायस्थों की ओर देखते-देखते वह अपनी नजरों में खुद को भी ऊँचा समझने लगा था।

एक धनी-मानी आदमी तेली टोले से हठात गायब हो गया था, लेकिन किसी गवाह और सबूत के अभाव में उसका कोई सुराग नहीं मिला। न मामला मुकदमा हुआ, न पंचायत बैठी। लेकिन तामसी के बाप के जरिए तेलियों को यह बात पता चल गई कि, यह काम हो न हो मालो लोगों का है। लेकिन केवल अफ़वाहों के आधार पर मामला दर्ज नहीं किया जा सकता था। तेली यह तय नहीं कर पा रहे थे कि उन्हें क्या करना चाहिए। अन्त में सभी जातियों अर्थात् बामुन, साहा, तेली, नापित आदि ने मिलकर एक गुप्त बैठक की। किसी ने प्रस्ताव दिया कि मालो लोगों की नावें एक रात

144. नेत्री/नेता

ठाँव से खोलकर उनमें नीचे से छेद कर दिया जाए और उन्हें गहरे पाने में डुबो दिया जाए। किसी ने कहा, पैसे देकर कोई आदमी ठीक करो, जो उनके सारे जाल चुराकर आग में झोंक दे।

लेकिन यह प्रस्ताव सबको नहीं रुचा। इतने बड़े अपराध के लिए इतनी सी सजा।

इसके बाद एक और प्रस्ताव आया। तेली टोले का रजनी पाल भारी कूटनीतिज्ञ था। उसका दिमाग खूब चलता था। ऐसे भोंथरे प्रस्तावों की व्यर्थता समझते उसे देर नहीं लगती। उसने सुझाया। विष्णुपुर के विदुरभूषण पाल मेरे मामा हैं। वे समवाय¹⁴⁵ ऋणदान समिति की फिशरी शाखा के मैनेजर हैं। मालो लोगों ने फिशरी का बहुत सारा पैसा निगल रखा है। जैसे मछलियाँ टोप¹⁴⁶ निगल लेती हैं, फिर उगल नहीं सकतीं, वैसे ही कम सूद के लोभ में फिशरी से लिया गया कर्ज वे समय पर नहीं चुका पा रहे हैं। अब वह चक्रवृद्धि दर से बढ़ रहा है। तुम सभी जानते होगे कि सहकारी समितियाँ अपने रूप की वसूली किसी भी तरह कर ही लेती हैं। मैं जाकर मामा को यह खबर दे आता हूँ। वह एक-एक मालो को पकड़कर उसे मेंढक-नाच नचाकर ही छोड़ेगा।

यह प्रस्ताव भी नहीं रुचा। मामा कब आएगा, कौन जाने। बड़ा दूरगामी प्रस्ताव था। तुरन्त कुछ नरम-गरम करने की जरूरत थी। अन्त में रजनी पाल के भाई ने एक प्रस्ताव दिया-उसी मागी¹⁴⁷ (छिनाल) को पकड़ लाओ, जिसने रात को उसे अपने घर बुलाया था। दारू के कुछ अद्धे मंगाओ, फिर उसे कालीबाड़े के नाट मंदिर के खण्डहर में ले चलो, लेकिन इस काम में किसी ने उत्साह नहीं दिखाया। इस तरह तेली टोले की बैठक के सभी प्रस्ताव बस प्रस्ताव ही बनकर रह गए थे। लेकिन उस दिन मालो पाड़ा और अन्य सभी पाड़ों के लोगों के बीच विरोध की जो बुनियाद रखी गई, वह फिर कभी नहीं उखड़ी।

रास्ते में रात हो गई थी। बारिश से बढ़ी हुई नदी के ऊपर मेघिल आकाश की छाया दैत्य की तरह उतर पड़ी थी। अनन्त बैठे-बैठे यह दृश्य देख रहा था। धीरे-धीरे चारों ओर फैलते घोर अंधेरे ने हर चीज को ढँक लिया था। उदयतारा ने दोनों ओर की खुली पालों के भीतर से अनन्त को आवाज दी- 'आजा अनन्त, भीतर आजा।' बनमाली पीछे से पूरी ताकत लगाकर डाँड़ खे रहा था। जिनके आघात से नाव में बँधी रस्सियाँ और बेड़े कच-कच की आवाज करते हुए मानो रो रहे थे। पूरी नाव लहरों पर

145. सहकारी।

146. मछली फँसने के लिए अंकुश में लगाया गया खाद्य-पदार्थ

147. रण्डी/ छिनाल

उछल रही थी। इस झूलती नाव के बीच बँधे बाँस पर सावधानी से पाँव रखते हुए अनन्त पाल के भीतर घुसा। उदयतारा नजर नहीं आई। वह नाव के तले में बिछी चटाई पर लेटी थी। वह भी वहीं जा बैठा। चुपचाप। उसे नींद आ रही थी। थोड़ी देर में ही वह लुढ़ककर सो गया। नाव के झूले और मच्छरों के दंश से बीच-बीच में उसकी नींद टूट जाती थी। तभी उसे महसूस हुआ कि उसका सिर किसी नर्म वस्तु पर टिका है। रुई की तरह नर्म और चाँद की तरह शीतल। राशि-राशि फुलझड़ियों से भरे एक टुकड़ा आकाश ने अनन्त की पूरी देह को ढँक रखा है। उसे आकाश के एक कोने से दूसरे कोने तक एक उज्ज्वल साँको ¹⁴⁸ (आकाशगंगा) नजर आया। कुछ दिन पहले उसने जो इन्द्रधनुष देखा था, वह भी कुछ ऐसा ही था। जैसे वह सतरंगी धनुष ही अपना आकार बदल अनन्त की ओर बढ़ आया था। इसके सामने तो उज्ज्वल सोने का रंग भी फीका लगेगा। उसके चारों ओर लाखों तारे भीड़ लगाए बैठे थे। मानो हाथ बढ़ाते ही वे पकड़ में आ जाएंगे और उन्हें पकड़ झूलते हुए अनन्त आकाश के एक ऐसे रहस्य-लोक की यात्रा करेगा जहाँ उसे केवल अनजानी, अनचीन्ही चीजें ही देखने को मिलेंगी और उन्हें देखने का समय कभी खत्म नहीं होगा।

उदयतारा ने अनन्त के पूरे शरीर को आँचल से ढँक दिया था ताकि उसे मच्छर न काटें। उसे सख्त पटरे पर तकलीफ़ हो रही होगी, यह सोचकर उसके सिर को अपनी गोद (कोल) में रख लिया था। साड़ी के एक छोर को उसने पटरे के नीचे दबा दिया था और अपना एक हाथ अनन्त की छाती पर रख लिया था ताकि हिलने-डुलने पर साड़ी उघड़े न। लेकिन अनन्त उसके हाथ को बार-बार ठेल देता था, जिससे साड़ी उघड़ जाती थी। उसने अनन्त के सिर को गोद से उतारा और उसे आवाज देते हुए कहा- 'अनन्त उठो!' अनन्त तुरत उठ बैठा था। चारों ओर फ़ैली दुनिया का एक और रूप अब उसके सामने था। तारों से भरे आकाश के नीचे बीच नदी में नाव एक जगह खड़ी थी। सुदूर आकाश में तारों ने जैसे सड़क बना ली थी। यह सड़क कितनी सुन्दर लग रही थी। इस पर चलने में कितना आनन्द आएगा। पाँव के नीचे न जाने कितने तारों रूपी फूल कुचले जाएंगे। सिर के आस-पास जिधर देखो, बस तारों के फूल ही फूल दिख रहे थे। यह सड़क कितनी ऊपर होगी। अनन्त की पहुँच में शायद ही कभी आ पाए, लेकिन आकाश के देवता खुश थे। इस तितास के शान्त जल में उन्होंने अपना ही एक प्रतिरूप फेंक रखा था। जो बिल्कुल पास ही था। बनमाली अगर नाव को और गहरी नदी में ले जाए तो शायद अनन्त इसी नाव से उस पथ पर यात्रा शुरू

148. पानी के ऊपर बाँस से बंधा पुल जो चलने पर हिलता है।

कर सके, पर जल के भीतर पथ कहाँ होगा! अगर होगा भी तो उस पर केवल मछलियाँ ही चल-फिर सकेंगी। अनन्त तो मछली था नहीं। तारों के मद्धिम प्रकाश में नदी का वक्ष धुंधला-सफ़ेद दिख रहा था। कुछ मछलियाँ बुलबुले छोड़ती दिख रही थीं, जिनसे जल में तारे काँप-काँप उठ रहे थे। अनन्त विस्मय-विमूढ़ था। ऊपर तो ये एक जगह चिपककर बैठे प्रतीत होते थे। जल में दिखने वाले तारे क्या वही नहीं थे। ये तो हिल रहे थे। मछलियाँ इन्हें कँपा रही थीं, नचा रही थीं। भाई-बहनों की तरह इन्हें साथ लेकर खेल-कूद रही थीं। कितना मजा आ रहा होगा। अनन्त का मन मछली बन जल के भीतर डुबकी लगा रहा था।

बनमाली की नाव अब गाँव से सटकर चल रही थी। बरसात का फालतू जल केवल गाँवों को छूकर ही नहीं निकला, बल्कि चुपके-चुपके उन्हें भर भी दिया था। गाँव के किनारे पहरेदारों की तरह खड़े बड़े-बड़े पेड़ों के पैरों को स्पर्श करके ही यह जल नहीं थमा, बल्कि इसने उन्हें कमर तक डुबो दिया था। आगे कुछ पेड़-पौधे अपने डाल-पत्तों सहित इस जल में झुक आए थे, बनमाली की नाव अभी उन्हीं की ओर बढ़ रही थी। आगे उनकी ही छाया में चलेगी। अभी तारों भरा आकाश दूर था और उतना ही दूर था आकाश की आरसी जैसा नदी का वक्ष भी।

अनन्त इतने मन से क्या देख रहा था? अरे ये तो आकाश के तारे देख रहा है! उदयतारा को एक छड़ा याद आ गया था। इतनी देर से जो चुभती हुई चुम्पी छाई थी। वह उसे अच्छी नहीं लग रही थी और इस एक फोटे ¹⁴⁹ बच्चे के साथ बात भी क्या करे? जमेगी नहीं। जिसकी बातों से पूरा टोला गुलजार हो जाता था, इस निर्जन नदी के प्रवाह पर वह किसे लेकर वातावरण गुलजार करे। न यहाँ श्रोता हैं, न कोई समझदार। लेकिन अपनी उम्र के अन्य बच्चों की तरह अनन्त निपट मूरख नहीं। उसके हमउम्र जब आँखें मूढ़े चैन से सो रहे थे, तब अनन्त एक अजाने रहस्य को जानने के लिए आकाश के तारों की तरह ही अपनी दोनों आँखें खोले जाग रहा था। और उदयतारा का छड़ा तो तारों पर ही था-

‘सुन्दर फूल बिखरे हुए हैं, चुनने वाला कोई नहीं,

सुन्दर सेज पड़ी हुई है, सोने वाला कोई नहीं’¹⁵⁰

-अरे अनन्त, देखूँ तो तू ये पहली बूझ पाता है कि नहीं!

अनन्त इस पहली का उत्तर नहीं जानता था लेकिन उसकी आँखें जानने के लिए

149. बूढ़ भर/ बहुत छोटा

150. सुफूल छिट्या रोईछे तूलबार लोक नाई/ सुशैया पोइड़ा रोइछे सुइबार लोक नाई

चमक उठी थीं। सुन्दर फूल बिखरे हुए हैं, यानी आसमान के तारे। अर्थात आसमान में तारे छिटके हुए हैं, उन्हें उठाने वाला कोई नहीं है।

अनन्त सोच रहा था, तारे छिटके तो हुए हैं, पर आदमी के हाथ की पहुँच के बाहर हैं। फिर वह सोचने लगा, स्वर्ग में जो देवता रहते हैं, राम, लक्ष्मण, कृष्ण, दुर्गा, काली और शिव-ठाकुर क्या वे भी तारों को नहीं चुन सकते? अगर वे चाहें तो चुन ही सकते हैं। लेकिन वे चुनते नहीं। वे ही बिखराएँगे और वे ही चुनेंगे! रोज रात को वे तारे बिखरा देते हैं और धरती के लोगों को बुलाकर कहते हैं, ये तारे हमने तुम्हारे लिए बिखरा दिए, यदि चुन सको तो चुन लो। पर इन्हें चुनने वाला कोई नहीं। धरती पर देवताओं की पूजा किससे होगी, इसलिए बचे-खुचे तारे धरती पर नकली फूल खिला देते हैं। फूल जो रोज खिलते हैं, रोज लोगों द्वारा तोड़े जाते हैं और रोज जिनसे देवताओं की पूजा की जाती है। जो फूल चुने नहीं जाते, वे डालों पर ही मुरझाकर झड़ जाते हैं। बासी होने के लिए बचे नहीं रहते।

देवता बुलाते तो जरूर होंगे लेकिन हमें उनकी पुकार सुनाई नहीं पड़ती।

असल में, देवताओं की पुकार सबकी समझ में नहीं आती। साधु-महात्मा ही जान पाते हैं। वे तपस्या करते हैं, ध्यान करते हैं, पूजा करते हैं। वे देवताओं की बातें समझते हैं। वे उन्हें नहला-धुला, खिला-पिला सकते हैं। वे देवताओं की बातें सुनते हैं और देवता उनकी।

देवता मेरी माँ की बात भी सुनते थे। एक दिन कालीपूजा के अवसर पर देवता के बिल्कुल नजदीक जाकर माँ ने उनसे कुछ कहा था। मुझे लोगों ने माँ के पास नहीं जाने दिया था। दूर खड़े देखा, पर यह नहीं सुन पाया कि माँ देवता से क्या कह रही थी?

अरे ऐसी पूजा तो हम लोग भी करते हैं। मैं यह बात नहीं कह रहा। मैं साधु-महात्माओं की बात कर रहा हूँ। वे देवताओं की बात कैसे समझते होंगे। जब उनकी मूर्ति आँखों के आगे रहती है। देवता तो चुप साधे रहते हैं। जब वे आँखों के सामने नहीं होते तब साधु-महात्माओं और उनके बीच बातचीत चलती है। मैं इसकी बात कर रहा हूँ। आँखों के सामने देखकर तो आदमी एक-दूसरे से बात किया करते हैं। सामने न देख भी जिसकी बातें सुनी जा सकती हैं, वे देवताओं की बातें होती हैं। जिन्हें केवल साधु-महात्मा सुन पाते हैं, उन्हें ही सुफल मिलता है।

लेकिन इस जन्म में नहीं। मिट्टी का शरीर मिट्टी में मिल जाने के बाद जब वे देवताओं के राज्य में पहुँच जाते हैं तब वह सुफल मिलता है। स्वर्ग में रोज कांसी-घण्टे बजते हैं और केवल एक फूल तोड़कर वे पूजा करते हैं। आकाश में उसी फूल

की पंखुड़ियाँ तारे बनकर छिटक जाती हैं।

अनन्त के मन में फिर एक प्रश्न जागा। पेड़ नहीं दिखता, पत्ते नहीं दिखते, केवल फूल खिले हैं, ये सारे फूल क्या वृक्षों के बिना ही खिल जाते हैं।

शीतलपाटी¹⁵¹ की तरह स्थिर निश्चल तितास की धारा पर एक नजर डालते हुए उदयतारा ने अपनी व्याख्या आगे बढ़ाई- और सुसेज पड़ी है, सोने वाला कोई नहीं। अब इसका अर्थ सुन, सुसेज यानी यह नदी। कितना सुन्दर बिछौना है। न धूल, न गन्दगी, न ऊबड़-खाबड़ जगह। चटाई की तरह ठण्डी। लेटो तो पूरे शरीर को शीतलता मिले। लेकिन इस पर लेटने वाला कोई नहीं।

है, जरूर है। एक मनुष्य है-अनन्त। जल के ऊपर जरा-सा ठोस आवरण मिल जाए तो वह हाथ-पाँव फैला, चित्त होकर, पट होकर, इस करवट, उस करवट लेट कर दिखा देगा। नदी की धारा उसे देश-देशान्तर तैराती रहेगी। लहरें उसे झुलाती रहेंगी। चारों ओर फैले अंधेरे में जब सब सो रहे होंगे तो केवल अनन्त और उसके चतुर्दिक फैले अंधकार के ठीक ऊपर आकाश के तारे जाग रहे होंगे। और जागती होंगी नदी की मछलियाँ। उसे सोया देख तारे भी सदल-बल टुलक पड़ेंगे। जागते-जागते थककर उन्हें भी नींद आ ही जाएगी। रात बीत जाएगी पर उनकी नींद नहीं टूटेगी। सुबह सूरज उगेगा, नदी के दोनों किनारे कतारों में खड़े बूढ़े, बच्चे, औरत, मर्द जब देखेंगे तो कहेंगे, अनन्त शायद पानी में गिर गया है। हाय, हाय, अब क्या होगा, अनन्त तो पानी में गिर गया है। तब जाकर मेरी नींद टूटेगी। उनकी ओर देखते हुए मैं आँखें मलते-मलते मन्द-मन्द मुस्कुराऊँगा और जल के ऊपर उठ बैठूँगा। फिर धीरे-धीरे लहरों पर पैर बढ़ाते हुए उनके बगल से निकलता हुआ अपने रोजमर्रा के कामों में जुट जाऊँगा।

अनन्त की कल्पना की दौड़ देख उदयतारा हँस पड़ी थी। बोली- 'शरीर में प्राण रहते कोई नदी की धारा पर नहीं सोता। जब पखेरू उड़ जाते हैं और शरीर का पिंजरा खाली हो जाता है तब जो इस शरीर को जला नहीं पाते वे उसे जल-समाधि देते हैं। पानी में तैरा देते हैं। जल के इस बिछौने पर सोने वाले मृतक होते हैं। तुझे क्या परेशानी है जो पानी पर सोने जाएगा। तू क्या लखाई पंडित¹⁵² है?'

'हम्म, मैं और लखाई पण्डित ! न एक अक्षर पढ़ा न लिखा और पण्डित।'

अरे मैं पढ़ने-लिखने वाले पण्डित की बात नहीं कर रही। मैं तो सौदागर के बेटे की बात कर रही हूँ। लखाई चाँद सौदागर का बेटा था। काल-नाग के डँसने से मारा गया था। तब उसकी पत्नी बेहुला ने एक कदली-स्तम्भ से डेंगी (छोटी नाव) बनाई

151. ठण्डी घास/कुश से बनी चटाई।

152. बंगाल की एक लोककथा का पात्र

और उसमें पति का शव लिटाकर पानी में तैरा दिया तथा खुद डेंगी-सुन्दरी¹⁵³ हाथ में धनुष लिए डेंगी के साथ-साथ नदी के किनारे-किनारे चल पड़ी।

‘लखाई पण्डित तो मुर्दा था। डेंगी सुन्दरी अकेले चल पड़ी? सौदागर की इतनी बड़ी नाव उन्हें लेकर क्यों नहीं गई?’

‘धना गोदा और उसके भाई मना गोदा ने उन्हें नाव में बैठाना चाहा था लेकिन सुन्दरी ने उन्हें मामा-ससुर कहकर संबोधित कर दिया था। भांजे की बहू को छूना वर्जित है इसलिए उन लोगों ने रास्ता छोड़ दिया।’

‘ओ..समझ गया। डूबते-उतराते वे गए कहाँ?’

‘सीधे स्वर्ग!’

वहाँ देवताओं की सभा में डेंगी-सुन्दरी ने नृत्य किया और महादेव तथा चण्डी को प्रसन्न कर लिया। उनके आदेश पर मनसा को लखाई पण्डित को जिला देना पड़ा।

‘मुर्दे को जिला दिया?’

‘हाँ, जिला तो दिया, लेकिन जिन्दा होने पर देखा गया कि उसके पाँव की एड़ियाँ गायब थीं। लखिंदर को मुर्दा जान मछलियाँ खा गई थीं। जिन्दा होता तो वही मछलियों को पकड़ लेता और बाजार में बेच आता। पर नदी की नहरों को ठेलते-ठेलते क्या एकदम स्वर्ग जाया जा सकता था? स्वर्ग, जहाँ देवता रहते थे।’

हाँ नदी का सिरजन (सृजन) हिमालय राजा के देश में हुआ है। इसी देश में स्वर्ग और संसार का मिलन होता है।¹⁵⁴ दूधिष्ठिर (युधिष्ठिर) महाराज पहले इसी देश पहुँचे थे, फिर पैदल-पैदल स्वर्ग गए थे।

चाँद के देश, तारों के देश, इन्द्रधनुष के देश.. तब तो पैदल चलते हुए जाया जा सकता है। थोड़ा बड़ा होकर जब वह कुछ कमाने लगेगा और हाथ में पैसे आने लगेंगे तब एक बार जरूर नदी का किनारा पकड़ सीधे चलते-चलते हिमालय राजा के देश पहुँच जाएगा और उस देश से पैदल स्वर्ग जा पहुँचेगा। अनन्त की सारी श्रद्धा झुककर उदयतारा के कदमों में लोट जाना चाहती थी। तुम इतना सब जानती हो! तुम्हें नमस्कार!

नौका हठात किसी वस्तु से टकराकर रुक गई थी। कमर तक खड़े मोटे-मोटे पेड़ों से अनेक डालियाँ टूटी थीं। लाखों पत्ते झड़े थे। उन डाल-पत्तों से निर्मित गहन जंगल से टकराते हुए नाव ने घाट की मिट्टी का स्पर्श कर लिया था। उदयतारा की तन्द्रा टूटी। वह उठ बैठी। बनमाली पीछे की ओर खूंटती गाड़ रहा था। नाव में लगी टक्कर से

153. बेहुला स्वयं

154. इहलोक और परलोक मिलते हैं।

उदयतारा को याद आया कि उसका ब्याह और बिदाई, दोनों सूखे के दिनों में हुए थे। उस समय यहाँ रेत ही रेत थी। पानी बस नदी के तल में बचा हुआ था। इसके बाद उदयतारा ने न जाने कितनी बरसातें अपनी ससुराल में ही बिताईं। विवाह के बाद उसने पहली बार यहाँ के वर्षाकालीन चेहरे को देखा था। लेकिन वह यहाँ के पेड़-पौधों से खूब परिचित थी। उन सबकी यादें उसके मन में सुगबुगा उठीं। कभी यहाँ की मिट्टी बिल्कुल सूखी थी, जिस पर चाँद की हाट लगा करती थी। बच्चे गोल्लाछूट¹⁵⁵ खेला करते थे और लड़कियाँ गुड़ियों की गृहस्थी सजाया करतीं। शीतल हवा बहा करती थी। आज यहाँ ठण्डा जल थई थई कर रहा है। उदयतारा की हम उम्र सखियाँ ब्याह-ब्याह कर दूसरों का घर बसाने चली गई थीं। बच्चे अब बड़े होकर पानी में खुद से डुबकियाँ लगाने लगे थे। पान-सुपारी की एक तिकोनी थैली, एक साड़ी और छोटी-मोटी कुछ चीजों की पोटली संभालते हुए उदयतारा ने अनन्त का हाथ पकड़ा और जमीन पर कदम रखे।

संभलकर आगे बढ़ना अनन्त, बड़ी फ्रिसलन है, कहीं गिर न जाना !

कदम-कदम पर अनन्त के गिरने का खतरा था। उसने कसकर उदयतारा का हाथ पकड़ लिया, फिर बोला- 'मैं गिर जाऊंगा, तुम नहीं गिरोगी !'

'यह मेरे बाप-भाई का देश है। सब जाना-पहचाना है। बारिश में कितनी तरह के खेल खेले हैं और सूखे के दिनों में गुड़ियों का ब्याह रचाया है यहाँ।'

'लगता है खेलने का तुम्हें बड़ा नशा था।'

मुझे क्या नशा था ! नशा तो था मेरी बहन नयनतारा को। छोटी आसमानतारा भी कम नहीं थी। अपने खेल को लेकर माँ-बाबा से कितनी गालियाँ खाते थे। मोहल्ले के लोग भी खरी-खोटी सुना देते। पर हम तीनों बहनें किसी की परवाह नहीं करतीं। एक-साथ खेलतीं और इधर-उधर चक्कर मारती थीं। फिर हम तीनों का ब्याह तीन अलग-अलग देशों में हो गया।

'ब्याह के बाद तुम लोग कभी नहीं मिली !'

नहीं। नदियों में हमारे मर्द जरूर एकाध बार मिले हैं, लेकिन हम बहनों ने एक-दूसरे का मुँह तक नहीं देखा। मेरी बड़ी बहन नयनतारा और छोटी आसमानतारा दोनों बड़ी अच्छी हैं।

अनन्त ने सारे नाम मन ही मन दोहराए। ये तो नाम नहीं तारों का मेला था।

अब तक बनमाली ने घर नहीं बसाया था। दूर देश जाने के पहले वह दरवाजा

155. एक तरह का फुटबॉल जैसा देशी खेल।

बाहर से बन्द करके गया था। पर लौटकर आया तो देखा कि इतनी रात को घर के भीतर से रोशनी आ रही थी। यह बहुत अचरज की बात थी। आशंका में आकर बिना किसी आहट के उदयतारा ने घुटनों की मदद से दरवाजे पर हल्का-सा धक्का दिया। वह खुल गया। उदयतारा भीतर झाँककर चकित हो गई। वहाँ नयनतारा और आसमानतारा बैठीं मंझली बहन उदयतारा के बारे में बातें कर रही थीं। इतने दिनों के बाद दो बहनों को एक साथ पाकर उदयतारा को समझ में नहीं आ रहा था कि क्या बोले! बस खुशी के मारे उसकी आँखें भर आईं। इस भयंकर बारिश में वे यहाँ कैसे पहुँचीं। उनके आने का छोटा-सा इतिहास था। दरअसल, परदेश में मछली पकड़ने गए दोनों के पतियों की एक जगह मुलाकात हो गई थी। उन्होंने तय किया था कि अमुक महीने की अमुक तारीख को वे सपरिवार यहाँ मिलेंगे। और किसी ने वादाखिलाफी नहीं की।

‘वे दोनों कहाँ है?’

‘टोले में घूमने गए हैं।’

‘तुम लोग नहीं गए?’

‘हम रात को टोले-मोहल्ले में नहीं निकलते। जिनसे मिलना होता है, मिल-जुलकर शाम तक घर आ जाते हैं और भीतर से दरवाजा बन्द कर लेते हैं। तुम्हारे गोकन गाँव की औरतें शायद रात को मोहल्ला घूमने निकलती होंगी।’

बड़ी बहन की ओर आँखें नचाकर देखते हुए उदयतारा गुंजार कर उठी। ‘अरे मैं नयानपुर की औरतों को खूब पहचानती हूँ, मुझे मत सिखा। ज्यादा ठिठोली न कर।’

ठीक उसी समय वे दोनों आ पहुँचे। छोटी बहन का पति साथ था इसलिए नयनतारा और उदयतारा ने सिर पर घूँघट खींच लिया। आसमानतारा ने भी अपना सिर ढँका और अपनी बड़ी बहनों की दुर्दशा देखकर मन्द-मन्द मुस्कराने लगी। मालो जब दूर-दराज के लोगों से मिलते, तो सबसे पहले मछलियों की बातें शुरू होतीं। कुशल-मंगल की बातें तो बहुत बाद में होतीं। नयनतारा के घरवाले के सामने के कुछ दौंत गिर चुके थे। गुच्छे-गुच्छे बाल पकने लगे थे। दाढ़ी-मूँछ भी काली-सफ़ेद खिचड़ी नजर आ रही थी। यौवन उन्हें छोड़कर विदा हो रहा था, लेकिन देह में ताकत बनी हुई थी। मंझली साली के हाथ से हुक्का लेते हुए उन्होंने एक कश लेकर उससे पूछा, ‘इन दिनों तितास में मछलियों की क्या स्थिति है?’

‘घर की बहू हूँ, घर में रहती हूँ, मछलियों की खोज-खबर नहीं रखती। मुझसे क्यों, चाहो तो उनसे पूछ लो।’

‘मैंने तो तुम्हारे उनको कभी देखा नहीं। कैसे हैं? साथ क्यों नहीं लाई?’

‘वे क्या मेरे सिर की गठरी हैं कि जहाँ इच्छा हो उन्हें उठा लाऊँ।’

‘माथे की गठरी क्यों होंगे? होंगे तो हाथ के कंगन, गले की पंचलड़ी। साथ लाओ तो शरीर की शोभा, न लाओ तो देह खाली।’

मुँहदेखी न बतियाओ भगत! हाथ का कंगन हाथ में रह जाता है। गले का हार गले में। और मेरे वे तितास में मछलियाँ पकड़ने निकल जाते हैं। घर लौटने पर यदि मैं कहूँ कि दादा को बरसों से नहीं देखा, चलो ना एक दिन मुलाकात कर आएँ तो उत्तर देते हैं- ‘दादा के साथ ही क्यों नहीं गृहस्थी बसाई? मुझे तुम्हारी जरूरत नहीं! सुन ली बात।’ नयनतारा ने कहा था।

‘यह तुम्हारी भूल है दीदी। तुम्हें प्राणों से अधिक चाहता है। इसीलिए तो कहता है— मुझे तुम्हारी जरूरत नहीं।’

उनके गले की मोटी तुलसी-माला की ओर देख उदयतारा के मन में भगत के प्रति बड़ी श्रद्धा जागी। इससे भी अधिक श्रद्धा तब हुई, जब उन्होंने गम्भीर सुर में गाना शुरू किया-

‘ओ मेरे प्यारे गौर, मेरी शंख साड़ी।

हे चाँद जैसे प्रिय मेरी मांग में सिन्दूर,

मेरे बालों से बंधी रेशमी डोरी।

मैं प्रेम का भाव नहीं जानती, पाँव बढ़ाती हूँ धीरे-धीरे।¹⁵⁶

गीत को ताल देते हुए उनका सिर धीरे-धीरे झूम रहा था। वातावरण का आध्यात्मिक भाव फीका करते हुए उदयतारा बोल पड़ी- ‘देखो भाई, मेरी बात पर ध्यान दो। दादा के लिए हम कुछ नहीं कर पाए। वह क्या कार्तिक (अविवाहित) बना दिन काटेगा। दादा के सिर पर क्या कभी मुकुट नहीं शोभेगा?’

‘बनमाली की बात कर रही हो! तुम तो समझती हो दीदी, जिसके न माँ-बाप हैं ना भाई बिरादर न खेत-खलिहान हैं न जगह जमीन। न रुपए पैसे हैं, न गहने-गाँठी। ऐसे आदमी को कौन बेटी देगा। वैसे लड़कियों की कमी नहीं, लेकिन फ़िलहाल कम से कम तीन सौ रुपए होते तो देखता।’

तीन सौ रुपए! बाबा के जिन्दा रहते उसने तीन-तीन बहनों का ब्याह किया। तीन सौ रुपए दहेज लिए और उनसे जात-बिरादरी को भोज दिया। अब किसी बेटी का बाप बनमाली से तीन सौ रुपए दहेज लेकर अपनी जात-बिरादरी को खिलाएगा।¹⁵⁷

156. ओ चाँद गौर आमार शंख साड़ी/ओ चाँद गौर आमार शिथिर सिन्दूर चूल बांधा दोड़ी/ आमि गौर प्रेमेर भाव जानी ना/ धीरे धीरे पाँव फेली।

157. मालो लोगों में बेटी के बाप को दहेज देने की प्रथा थी।

बड़ी भयंकर समस्या थी। उदयतारा कुछ देर चुप रही फिर बोली- 'तुम्हारी ही कोई बहिन-वहिन हो तो ब्याह दो।'

मेरी अपनी तो कोई बहन नहीं, एक ममेरी बहन जरूर है लेकिन उसका ब्याह मेरे हाथ में नहीं है। ठीक ऐसे समय बनमाली तूफ़ान की गति से घर में घुसा। उसके हाथ, कन्धे और कमर पर ढेर सारा सामान लदा था। अरवा चावल, गुड़, तेल यानी कि पीठा बनाने की पूरी तैयारी।

बिछौने के एक कोने में बैठा अनन्त इतनी देर चुपचाप इन लोगों की बातें सुन रहा था। अब बड़ी बहन नयनतारा की नजर उस पर पड़ी। बच्चे में इतना कौतूहल था जैसे वह उनकी हर बात को घूँट-घूँट पी रहा हो। मानो हर व्यक्ति की शिराओं के भीतर तक झाँक ले रहा हो।

'अरे, ये बच्चा कौन है? तुमने कहाँ पाया?'

'रास्ते में मिल गया मुझे। न माँ है न बाप। राँड़ सुबला बऊ पाल रही थी। कोई दूसरे का दुःख थोड़े ही समझता है। एक दिन खदेड़ कर भगा दिया। मुझे इस पर बड़ी दया आई। बस साथ ले आई। क्या पता कभी हमारे किसी काम आ जाए!' उदयतारा ने स्पष्ट किया।

क्या कह रही हो? किसी का बच्चा है। मिट्टी और काठ का खिलौना थोड़े ही है। एक बच्चा ऐसे ही तुम्हें मिल गया! यह बात देश-दुनिया में कोई मानेगा भला। न पेट में रखा न पाला-पोसा। रास्ते में मिला कोई अपना कैसे हो सकता है। ऐसे ही अगर पराए बच्चे अपने हो जाते तो कोई अपनों के लिए क्यों रोता! ऐसा नहीं होता। पराया बच्चा बड़ा बेईमान होता है।

बनमाली और दोनों दामाद पहले ही दूसरे कमरे में जा चुके थे। किस नदी, किस नाले, किस झील में किस साल कितनी मछलियाँ मिलीं, इस विषय पर उनके बीच ऊँचे स्वर में वाद-विवाद साफ़ सुना जा सकता था। आसमानतारा के पति की आवाज सबसे तेज थी। वह एक नामी मछरे के रूप में आस-पास के दस-बारह गाँवों के मालो लोगों में काफ़ी चर्चित था।

इसी गर्व से आसमानतारा ने कहा- 'इसे मुझे दे दो दीदी! मैं खिला-पिलाकर इसे इन्सान बना दूंगी। बाद में एक दिन बेईमान पक्षी की तरह उड़ भी गया तो मुझे कोई फर्क नहीं पड़ेगा।'

'तुम्हारी तो अभी उम्र है बहन! ईश्वर तुम्हें दे देगा। लेकिन मेरी गोद तो अब कभी नहीं भरेगी। इसे दे दो तो मैं खुशी-खुशी ले जाऊँ।' संतानहीनता की पीड़ा को नयनतारा ने हंसकर हल्का कर दिया था।

‘वाह रे, मैं क्या दूकान में पड़ा गमछा या साबुन हूँ क्या ! इनकी हिम्मत तो देखो, मुझे खरीदना चाहते हैं।’ अनन्त ने मन ही मन सोचा, पर इसे प्रकट नहीं किया।

अनन्त और अन्य तीनों पुरुषों के भोजन के बाद तीनों बहनें एक-साथ खाने बैठ गईं और बहुत देर तक बोलती बतियाती खाती रहीं। इसके बाद पास के कमरे में तीनों पुरुषों के लिए बिस्तर लगा दिया गया। अनन्त को एक अन्य कमरे में सुलाने के बाद तीनों बहनें पीठा बनाने बैठ गईं।

रात बहुत हो गई थी। दिये की रोशनी तीनों बहनों के चेहरे, हाथों और कपड़ों पर पड़ रही थी। पीछे दीवाल पर उनकी बड़ी-बड़ी परछाइयाँ बनी दिख रही थीं। उनके हाव-भाव से लग रहा था आज वे रतजगा करेंगी।

‘नींद आई तो क्या करूंगी?’ छोटी बहन ने पूछा।

उदयतारा ने छड़ा कहा-

‘उदयतारा पहेलियों की राजा है

वह पहेलियाँ बुझाएगी और हम उन्हें बूझते चलेंगे

बस नींद भाग जाएगी’¹⁵⁸

उदयतारा ने एक लोई हाथ में लेते हुए हथेली से उसे मसला और कहा- एक पहेली बूझो-

‘हिजल केपेड़ पर बिजल फला,

शाम हुई तो टूट पड़ा।’¹⁵⁹

इस पहेली का अर्थ हुआ- हाट।’ आसमानतारा ने जवाब दिया।

अच्छा, एक और बूझो-

‘पानी के नीचे

बिन्दाजी पेड़ चमके,

हिल्सा मछली ठोकर दे

तो झरझरा पड़े।’¹⁶⁰

‘कोहरा’। बड़ी बहन ने कहा। यह बुझावल बड़ी देर तक चली। अनन्त को बड़ा मजा आ रहा था, लेकिन नींद से नहीं जीत पाया। सुनते-सुनते न जाने कब सो

158. उदयतारा शीलोकें राजा शीलोक देउक, आर आमरा मानती करी, घूमता होईले पलाइब।

159. हिजल गाछे बिजल धोरे संध्या होइले, भईगा पोड़े

160. पानीर तले बिन्दाजी गाछ / झिकीमिकी कोरे / इल्सा माछे ठोकर दिले/ झरझराइया पोड़े।

गया।

निस्तब्ध रात में हठात उसकी नींद टूटी, देखा कि तीनों बहनें अथक भाव से पहेली बुझाते हाथ चलाए जा रही थीं। नींद से मुंदती आँखों के बावजूद अनन्त कान लगाने की कोशिश कर रहा था।

‘गोल-गोल चक्का, दूधिया रंग,
इस लोक में तुड़ाए न तो बेकार जन्म।’¹⁶¹

एक बहन ने उल्टा तीर चलाया, कहा- ‘रुपया’।

सुबह होते-होते अंधेरा फ्रीका हो चला था, साथ ही अनन्त की नींद भी पूरी हो गई थी। दरवाजे से कोई मंजीरा बजाकर गाते हुए गुजरा-

‘जागो राधा रानी,
जागो हे गौरवशालिनी,
जागो वृन्दावन विलासिनी
जागो राधा रानी।’¹⁶²

अनन्त जाग गया था। पीठा बनाते बनाते तीनों बहनें भी न जाने कब सो गई थीं। पीठा बनाने का अधूरा काम इधर-उधर बिखरा था और तीनों बहनें एक-दूसरे से लिपटी घोर निद्रा में सो रही थीं। दिया अभी भी जल रहा था। लेकिन बत्ती को उसकाने के अभाव में वह ठीक से रोशनी नहीं दे पा रहा था। अनन्त बाहर आया। बगल के कमरे में सोए तीनों लोग वहाँ नहीं थे। मुँह अंधेरे बनमाली जाल लेकर निकल गया था। मछली पकड़ने की जानकारी हासिल करने के मकसद से दोनों अतिथि भी उसी के साथ हो लिए थे। पूरब का आकाश धीरे-धीरे खुल रहा था। स्निग्ध नीला मृदु आलोक फूट रहा था। अब भी चारों ओर झींगुरों की झनकार थी और पेड़ों पर पक्षियों का कलरव। मंजीरा-वादक इस टोले से होता हुआ दूसरे में चला गया था लेकिन उसके गीत की अंतिम लड़ी मंजीरे की टुनटुनाहट के साथ अनन्त के कानों में बजती रह गई थी-

‘तोते ने मैना से कहा,
और कितना सोओगी,
खुद जागो, बंधू को भी जगाओ,
हे मेरी राधा जागो,
मेरी प्यारी जागो,

161. आदा चाक-चाक दूधेर वर्ण/ ए सी लोकेना भांगाईले वृथा जन्म।

162. राई जागो गो/आमार धनी जागो गो/वृन्दावन विलासिनी राई जागो गो।

वृंदावन विलासिनी जागो।¹⁶³

अनन्त एक के बाद दूसरा घर पार करता गया। गाँव के युवक नदी पर गए थे। घर में केवल बच्चे, बुजुर्ग और बहू-बेटियाँ थीं। बूढ़ों ने सुबह तुलसी चौरे को सिर नवाया। हर घर में एक छोटी, ऊंची वेदी पर तुलसी का पौधा रोपा हुआ था, उसके दोनों ओर दो-चार फूलों के पौधे भी थे। ताजे खिले फूलों से मीठी-मीठी गंध आ रही थी। बहुओं ने आंगन-द्वारा बुहार दिए थे और अब उन्हें गोबर से लीपने में लग गई थीं। चलते-चलते एक मकान के सामने पहुँच अनन्त ने देखा, आगे रास्ता बन्द था। यहाँ आकर मालो टोला खत्म हो गया था। इसके बाद एक गहरी खाई थी, जिसके आगे पाट के खेत थे। कमर भर जल में खड़े हवा में सिर हिलाते पौधे खेतों में काम करते मर्दों जैसे लग रहे थे। एक के बाद एक दूर तलक खेत ही खेत। सुदूर जाकर उनकी हरीतिमा आकाश की नीलिमा से एकाकार हो गई थी। भोर के इस आलोक में सीमा से असीम का यह मिलन बेहद आकर्षक था। विस्मय से अनन्त की दोनों आँखें फैल गई थीं, प्रकृति के साथ उसकी इस नितान्त अंतरंगता पर एक व्यक्ति की नजर पड़ गई। वह तुलसी चौरे को प्रणाम कर नरोत्तमदास की प्रार्थना गुनगुना रहा था। नजदीक आकर उसने अनन्त की ओर देखा और सोचा कि असीम अनन्त संसार सागर के उस पार जिस तुलसी जी का जन्म हुआ था, प्रकृति की एक छोटी सी संतान उसी तुलसी जी को आँखों ही आँखों में अपना प्रणाम जता रही थी। उसने आगे बढ़कर अनन्त के कन्धे पर अपना हाथ रखा और स्नेहाकुल वाणी में बोला- 'निताई ओ रे, मेरे निताई! कंगाल को छोड़ इतने दिन कहाँ छिपे रहे मेरे बाप! आ मेरे पास, मेरी गोद में आजा।' उसकी बाँहों के बन्धन से खुद को अलग करते हुए अनन्त ने कहा- 'मैं अनन्त हूँ।'

'अरे बाबा, जानता हूँ! तू ही मेरा अनन्त है। नाम रखा अनन्त क्योंकि अन्त नहीं तुम्हारा! मैं नहीं जानता दान! नहीं जानता ध्यान! साधन भी नहीं जानता! भजन भी नहीं जानता- जानता हूँ तो बस तुम्हें! जब पकड़ में आ ही गए हो मेरी, तो अब नहीं छोड़ूंगा तुम्हें!'

अनन्त भौंचक्का हो गया था। बूढ़े ने एक गहरी साँस ली और उसकी ओर बढ़ा। हे हरि! ये तुम्हारी कौनसी लीला है? बार-बार चाहता हूँ, तुम्हारा मायाजाल काट फेकूँ, लेकिन क्यों नहीं काटने देते तुम! यशोदा ने तुम्हें पुत्ररूप में पाया और रोई। शचीरानी ने तुम्हें पुत्ररूप में पाया और रोई। राजा दशरथ ने तुम्हें पुत्ररूप में पाया तो रोते-रोते जान ही दे दी। फिर भी तुम्हें पुत्ररूप में पाने की चाहत में कितनी तृप्ति, कितना आनन्द छिपा है। मेरे ही घर एक बार तुम पुत्ररूप में आए थे। चले गए मुझे छोड़कर! तुम्हें पकड़कर तो नहीं रख पाया। आज फिर एक बार क्यों वही स्मृतियाँ

जगा दीं। भूलने दो हरि ! हे हरि ! भूल जाने दो। जा बेटा जा। क्या पता तू किसका बेटा है। माँ का बेटा है, माँ की गोद में लौट जा। मुझे अभी बहुत काम करने हैं। गोचारण का समय हो गया है। जाऊँ, अपने बच्चे को भेजने के लिए तैयार करूँ।

खिलौने के घर जैसा एक छोटा-सा मंदिर था, जिसमें राधा-कृष्ण की एक मूर्ति स्थापित थी। वहाँ लाल साटन के कपड़े में दो पोथियाँ बैधी रखी थीं। मंदिर में बैठ उसने भजन शुरू कर दिया था-

‘हाय रे, इस शोभा पर मैं वारी जाऊँ।

गोप-बाल बार-बार वृंदावन में बुला रहे हैं।’¹⁶⁴

थोड़ी देर बाद जब सूरज की रोशनी पूरी तरह खिल गई तो पूरा टोला साफ़ नजर आने लगा। घर-घर में कर्म-चंचलता जाग उठी। यहाँ कोई हाट-बाजार नहीं था। इस गाँव के मालो अपनी मछलियाँ बेचने दूरवर्ती हाट-बाजारों में जाया करते। सूत लपेटना, जाल बुनना, फटे जालों की मरम्मत जालों में गाव ¹⁶⁵ लगाना जैसे हजारों काम घर-घर में फैले हुए थे। किसी को दम मारने की फुरसत नहीं। घर के भीतर रहने वाली औरतें भी कहीं खाली थीं। मछलियों से तरह-तरह के व्यंजन, भुजिया, शोरबा बनाते-बनाते वे पसीने-पसीने हो जाती थीं। दोपहर हो आई थी। सारे मर्द सुबह पन्ता ¹⁶⁶ खाकर काम में डूब गए थे। अब माँएँ बच्चों को आदेश दे रही थीं कि घाट पर जाकर कह दें कि भात तैयार है, नहाकर खाने चले आएँ। संदेशा सुनकर सब मर्दों ने जल में डुबकी लगाई और घर का रुख कर लिया। गर्म भात परोसा जा चुका था, सो वे खाने बैठ गए। फिर लेटकर एकाध झपकी मारी और शाम को फिर डोरी तथा जाल कन्धे पर उठाए नावों में जा बैठे। उनके काम में कहीं कोई विराम नहीं था। अतिथि जैसे एक दिन आए थे, वैसे ही एक दिन विदा भी हो गए। बनमाली का वह घर जो कुछ दिनों से हँसी-खुशी और आमोद-प्रमोद से थोई-थोई ¹⁶⁷ कर रहा था, हठात नीरव हो गया था।

सावन का महीना था। इन दिनों रोज रात को पद्म-पुराण का सस्वर पाठ किया जा रहा था। आजकल बनमाली ने रात को मछलियाँ पकड़ने का काम छोड़ रखा था।

163. शुक बोले ओगो सारी कतो निद्रा जाओ/आपने जागिया आगे बंधूरे जगाओ/
आमार राई जागो गो/आमार धनि जागो गो/बृंदावन बिलासिनी राई जागो गो।

164. मरी हाय रे क्वा शोभा राखालगण डाकते आछे घन घन बृंदाबने।

165. एक तरह का गोंद, जिससे जाल मजबूत होता है।

166. रात को बचे हुए भात में पानी भरकर रख दिया जाता है, उसे सुबह हरी मिर्च और नमक के साथ खाते हैं।

167. ताल पर नाचना

दिन में ही अपना काम खत्म कर रात को घर-घर होते पद्म-पुराण पाठ में शामिल होकर वह खुद भी पाठ किया करता था। कभी एक घर में मजलिस जमती थी, तो कभी दूसरे घर में। पाठ शुरू करने के लिए उन्हीं साधू-बाबा को बुलाया जाता, जो रोज सुबह मंजीरा बजाकर गाँव-भर में प्रभु-नाम का कीर्तन करते घूमते थे। वही बाबाजी जिन्होंने उस दिन सुबह-सुबह अनन्त को नितार्ई का अवतार समझ लिया था। आज बनमाली प्रधान गायक बना बैठा था। उसका गला काफ़ी साफ़ और स्वर सधा हुआ था। हाथ में करताल थी। दोनों ओर दो व्यक्ति खोल ¹⁶⁸ बजाने को तैयार थे। वैसे तो मजलिस में कई गायक थे लेकिन बनमाली की बात कुछ और ही थी। इसलिए साधू ने सबसे पहले उसे ही आवाज दी।

सुर उठा !

कौनसा, 'लाचारी' या 'दिशा' ! ¹⁶⁹

एक छोटी-सी चौकी पर साटन के कपड़े में बंधी पद्म-पुराण की हस्तलिखित पोथी रखी थी। वर्तमान में साधू के अलावा इस पोथी को और कोई नहीं बाँच सकता था। सामने सरसों तेल का दिया जल रहा था। बत्ती को थोड़ा उसकाकर साधू ने देखा कि जहाँ से पाठ शुरू करना है, वहाँ त्रिपदी ताल लगेगी।

लाचारी उठा !

बनमाली ने दाहिने हाथ की हथेली गाल पर रखी और बाएँ को सामने ऊँचा करते हुए काक-स्वर में चीतान ¹⁷⁰ छोड़ा-

'माँ, तुम जो चाहो वही करो,

तुम्हें कौन दोष दे सकता है,

लेकिन माँ मैं कहाँ जाऊँ,

मेरा तो कोई आश्रय नहीं।

ओ माँ, मुझे देखकर सागर सूख जाता है। ¹⁷¹

एक-दो लोगों ने उसके सुर में सुर मिलाकर गाने की कोशिश की, लेकिन थोड़ी ही देर में रुक गए, क्योंकि वे उतने ऊँचे स्वर के साथ अपना गला नहीं मिला सके। केवल अनन्त ने कोशिश नहीं छोड़ी। बनमाली के सुर का अनुकरण करते हुए बड़े

168. एक तरह की ढोलक।

169. ये सुरों के नाम हैं।

170. एक राग का नाम

171. माँ जे मति चाए से मति कर के तोमाए दोशे/बोल माँ कोथाई जाई दाड़ाई बार स्थान नाई/आमारे देखिया सागर षोखे।

कायदे से तान में तान मिलाने में लगा रहा। जहाँ मोटे-मोटे गलों की सारी आवाजें बीच राह में ही लथपथ हो गई थीं, बेचारे बच्चे की कोमल कण्ठ-ध्वनि के पैर भी मिट्टी से उखड़ गए थे और फिर वे काँपते हुए हवा के समुद्र में डूब गए। बनमाली की तरफ़ प्रसन्न दृष्टि से देख बाबाजी ने बनमाली से कहा-

‘बड़ा पुराना सुर है, लेकिन है जबरदस्त ! आज के लोगों की तो साँस ही उखड़ जाती है। इन सब सुरों को क्या गा पाएंगे ! पक्के गाने वाले तो पहले हुआ करते थे। वे जब खुले गले से तान छोड़ते थे तो तितास के उस पार के लोगों तक की नींद टूट जाती थी। कानों में शहद घुलने लगता था। अब तो सारे सुर हल्के हैं। हरिवंश-गान, भाईटाल सुर के गान नई पीढ़ी के लोग नहीं गा पाते। कुछ गाँवों में जो दो चार पुराने गायक अभी भी बचे थे वे अगर गाने बैठ जाएँ तो उनके गले के जोर को देख बड़े-बड़े छैले जवान गश खाकर गिर पड़ें। बनमाली सीधे एक ‘लाचारी’ शुरू कर।’

बनमाली ने सहज भाव में शुरू किया-

‘सोने के रंग वाले दो शिशु

जो झिलमिल झिलमिल करते थे,

मैंने उन्हें भरत के बाजार में देखा।¹⁷²

बाबाजी ने कहा- ‘ना ना, यहाँ लाचारी नहीं चलेगी। कल प्रह्लाद के घर लखिन्दर को साँप ने काटा था, आज उसे केले की डोंगी में रखा गया है। डोंगी नदी में तैराई जाएगी। लहरों के साथ वह आगे बढ़ेगी और नदी के किनारे-किनारे हाथ में धनुष लिए बेहुला यात्रा करेगी। ‘दिशा’ उठा तो !’

‘ये ठीक है।’

‘सुमन्त्र चला जाय रे जात्राकाले रामनाम।¹⁷³

रामायण का प्रसंग था। तरणीसेन युद्ध में जा रहा है। यह अच्छा चलेगा। लखिन्दर की डोंगी नदी की धारा को ठेलती हुई लहरों की ओर बढ़ रही है, किनारे पर बेहुला हाथों में तीर-धनुष लिए खड़ी है। डोंगी पर अपशकुनी कौआ बैठ जाता है। किनारे बेहुला धनुष पर तीर चढ़ाती है। उसकी यह भंगिमा देख वह डर से उड़ जाता है। कितने गाँव, कितने नगर, कितने मुहाने, कितने प्रांतर, कितने वन-जंगल पार करती जा रही है बेहुला और नदी में साथ बहती चल रही है लखिन्दर की डोंगी। ठीक यहीं

172. सोनार बरन दुइटी शिशु/ झलमल-झलमल करे गो/ आमि देखे एलम भरतेर बाजारे।

173. सुमन्त्र जात्रा में रामनाम जपते हुए चले जा रहे हैं।

त्रिपदी खत्म कर और 'दिशा' शुरू कर।'

अब चाँद सौदागर के घर में रोने-पीटने का प्रसंग था। यहाँ से 'दिशा' उठाने के बाद बनमाली ने थोड़ा सोचा और फिर शुरू किया-

'वे माँएँ भाग्यवती हैं

जिनके पाँच-सात बेटे हैं।

मैं कितनी अभागिन हूँ जिसका एक ही नीलमणि बेटा है,

वह भी मथुरावासी हो गया और कभी घर नहीं लौटा।'¹⁷⁴

इस गीत से अनन्त का मन दर्द से छटपटा उठा था। गीत के अन्त में पोथी लपेटते हुए बाबाजी ने कहा, यह अनन्त तो हीरे जैसा अनमोल बच्चा है। कृष्ण ने उसे विवेक दिया है, बुद्धि दी है और इस संसार-सागर में भेज दिया है। स्कूल भेजा होता तो अच्छी विद्या पाता। तुम लोग अगर मुझे अनुमति दो तो बरसात बीतने पर जब खेत-मैदान सूख जाएंगे और रास्ते चालू हो जाएंगे, तब मैं इसे गोपालखालि माइनर इस्कूल में भर्ती करवा दूँगा। फीस माफ़ हो जाएगी। जब मैं दसियों घरों से भिक्षाटन करके काम चला लेता हूँ। तो कृष्ण अपने इस जीव को भी उपवास नहीं करने देंगे। यह बात वहाँ उपस्थित सभी मालो लोगों को जँच गई। मालो सम्प्रदाय के लोगों के बीच कोई बिदमान (विद्वान) कहलाने वाला था भी नहीं। चिट्ठी लिखवानी हो या जमीन के कागजात अथवा मछली-व्यापार का हिसाब-किताब करवाना हो तो गोपालनगर के हरिदास साव के पाँव पकड़ने पड़ते थे। घूस में मँहगी-मँहगी मछलियाँ खिलानी पड़ती थी। यह अगर विदमान हो जाए, तब तो हमारा गरब (गर्व) ही होगा।

'फिर इसे यहीं रख लेते हैं। उदयतारा के साथ इसे गोकनगाँव भेजने की कोई जरूरत नहीं। तीन महीने बाद ही सूखे के दिन आ जाएंगे।'

बनमाली ने हामी भर दी और घर आ गया। लेकिन यह व्यवस्था उदयतारा को नहीं भाई।

कुछ दिन पहले ही टोले में एक विवाह सम्पन्न हुआ था, अब दामाद द्विरागमन¹⁷⁵ कराने आया था। जिन युवतियों का मजाक का रिश्ता बनता था, उन सबने मिलकर दामाद को छकाने का मन बनाया था। दामाद ने बहुत से प्रथाहीन काम किए थे। खासकर यह कि वह उनके लिए पान-बताशा, पान का मसाला आदि लेकर नहीं

174. सात पाँच पुत्र जार भाग्यवती माँ/आमि अति अभागिनी एका मात्र नीलमणि/
मथुरार मोकामे गेला आर त आइला ना।

175. गौना

आया। दोपहर नहान के समय औरतें गालियाँ गाने लगी ¹⁷⁶ —

‘दामाद खाना जानता है, लेना जानता है, देना नहीं जानता।

उसे तुम लोग शरीफ़ मत कहो।

अगर वह शरीफ़ होता तो पहले बताशे की हण्डी देता।

दामाद खाना जानता है, लेना जानता है इत्यादि।’¹⁷⁷

लेकिन इतने से दामाद पर कोई फर्क नहीं पड़ा। उन लोगों ने सोचा कि अब कुछ ऐसा करना होगा जिससे वह छक जाए। पर उसे अपने वश में लाएँ कैसे? तभी किसी ने समाधान किया, ‘अरे डरने की कोई बात नहीं, दामाद-छकानी उदयतारा आई हुई है ना अपने गाँव में। बनमाली की उस बहन से बड़ी और कौन होगी दामाद-छकानी!’

सबको ऐसा लगा जैसे डूबतों को किनारा मिल गया हो।

‘अरे उसको जल्दी बुलाओ।’ सबने कहा।

पर वहाँ इकट्ठी औरतों को अचंभे में डालते हुए उदयतारा ने खबर भिजवाई कि वह नहीं आ पाएगी।

सावन का महीना बीत चुका था। पद्म-पुराण का पाठ भी समाप्त हो गया। अब घर-घर में मनसा-पूजा की तैयारियाँ शुरू हो गईं और जालाबिया ¹⁷⁸ आयोजन किया जाने लगा। सती बेहुला ने अपने मृत पति लखिन्दर को लेकर नगर से बाहर निकलते समय अपनी सास एवं देवरानियों को थोड़ा-सा उबला हुआ धान देकर कहा था- ‘मेरा पति जिस दिन पुनर्जीवन प्राप्त करेगा, उस दिन ये धान अंकुरित हो जाएँगे।’ और यथासमय उससे अंकुर निकले भी थे। यह इतिहास भले ही पुराण-रचयिताओं के लिए अनजान रहा हो, लेकिन मालोपाड़ा की औरतों के लिए वह अनजान नहीं था। वे बेहुला के सौभाग्य की यादगार-स्वरूप मनसा-पूजा के दिन एक नई रीति के विवाह का आयोजन किया करती थीं। धान के अंकुर या जाला इस आयोजन के केन्द्र थे। इसलिए इस उत्सव का नाम जालाबिया था। इसमें एक औरत दूल्हे की तरह तनकर चौकी पर खड़ी हो जाती और दूसरी दुल्हन की तरह उसके चारों ओर सात बार चक्कर लगाती। वह धूपदानी जैसे एक बर्तन में धान के अंकुर रखकर वर के चेहरे के पास ले जाकर आरती की तरह घुमाती जाती। इस तरह दो औरतों के बीच एक

176. एक मसखरी की रस्म, जिसमें लड़की के ससुराल वालों को गीत गाते हुए गालियाँ दी जाती हैं।

177. जामाई खाईते जाने, नीते जाने, दीते जाने ना/तारे तोमरा भद्र बोलो ना, जामाई यदि भद्र होइतो, बाताशार हांडी आगे दीतो/ जामाई खाईते जाने, नीते जाने इत्यादि।

178. अंकुर-विवाह

नए तरह का विवाह रचाया जाता और महिलाओं का एक झुण्ड समारोह में गीत आदि गाता रहता। पूजा के दिन एक हम उम्र औरत ने दूसरी को पकड़ा और कहा- 'दो बरस पहले तूने मुझसे ब्याह किया था, याद है! इस बरस मैं तुझसे ब्याह करूंगी। कैसा रहेगा?'

'नहीं बहिन, तू ही मुझसे ब्याह कर!'

'मेरा मन नहीं है।'

ब्याह की बात अनन्त को बहुत मनोरंजक लगी।

'जब इतना कह रही है तो कर ले ना ब्याह!'

'तू बोल रहा है, ठीक है, कर लेती हूँ।'

'वाह! खूब मजा आएगा। खुद औरत होकर उदयतारा एक औरत से ब्याह करने वाली है। दोनों के सिर पर घूँघट होगा, मजा आएगा।'

लेकिन अनन्त के लिए इससे भी अधिक मजेदार था औरतों का एक साथ मिलकर गाना। वे एक गीत गा रही थी, जिसके अनुसार अविवाहित बालिका के सिर पर लखाई ने छाता तान रखा था, लेकिन बालिका उसे एक फूटी कौड़ी भी देने के लिए तैयार नहीं थी। अरे लखाई, तू इस बालिका के सिर पर छाता तानना छोड़ दे, पैसा मैं दूंगी। गीत कुछ उस तरह था-

'उसी दूकान से बालिका

घड़ा खरीदने जाती है'¹⁷⁹

बालिका उस दूकान पर घड़ा खरीदने गई। उसी घड़े से मनसा पूजा हुई। लेकिन मनसा नदी पार कैसे करती। एक मछेरा अपनी नाव से जाल फेंक रहा था। मनसा ने उसे पुकार कर कहा- 'तेरी नाव दे दे, नदी पार करूंगी। बदले में मैं धन और पुत्र से तुझे मालामाल कर दूंगी।'

उदयतारा की एक ननद का नाम मनसा था। इसलिए वह मनसा पूजा नहीं कह पाती थी। जितना पति मान्य है, उसकी बड़ी बहन भी उतनी ही मान्य है। उसने दुलहिन बनने वाली औरत को लक्ष्य कर कहा- 'सावनाई पूजा तो हो गई बहन! अब तो नाव दौड़ प्रतियोगिता होगी। इन सब पूजा-पर्वों पर हड्डम-दुड्डम¹⁸⁰ करने में बड़ा आनन्द आता है।'

दुलहिन ने अपना घूँघट खींचा और कांसे की थाली में धान-दूब पंच-प्रदीप सजाते हुए बोली- 'इसके बाद भी तो कितनी सारी पूजाएँ होंगी। दुर्गा पूजा, लक्ष्मी पूजा, काली

179. सेई दूकाने जाय गो बाला/घट किनि बारे।

180. हो- हल्ला।

पूजा, कार्तिक पूजा और भाईफोटा ..¹⁸¹।’

लेकिन ये तो बहुत बाद में आएँगी। अभी तो सावन गया है। इसके बाद भादों, फ़िर आएगी बड़ी ठकुराइन की पूजा।

कुल दो ही महीने तो बाकी हैं। अधिक कहाँ हैं! खेत-खलिहानों का पानी पन्द्रह दिन बाद सूखने लगेगा। तितास का जल घटने और उसके किनारे-किनारे पैदल पथ बनने में और पन्द्रह दिन लग जाएंगे। तब तक बारिश खत्म हो जाएगी। नदी-नालों की ओर नजर उठाने पर सब जगह स्वच्छ जल दिखाई पड़ेगा। लेकिन घरों मकानों को देखो, कुछ साफ़ दिखाई दे रहा है? नहीं ना! अगर इन्हें साफ़ नहीं किया तो दिखेंगे कहाँ से! हर जगह वातावरण में पूजा-पूजा का भाव व्याप्त है। अभी पहले घर-द्वार की सफ़ाई में लग जाओ। लेकिन इन घरों में साफ़ क्या करोगी? टूटे-फूटे घर-द्वार हैं। मर्द इनमें कभी-कभार ही रहते हैं। बारिश में जब अनवरत जल से नदी के कगार टूटते हैं। पेड़-पौधे टूटते हैं। घनघोर तूफ़ान की चपेट में बेड़े उखड़ जाते हैं तो मर्द-लोग पाट, बाँस और बेंत जुटाकर घर-द्वार ठीक कर देते हैं, औरतें तितास के किनारे की नरम चिकनी मिट्टी लाकर उससे लीप-पोतकर घर-द्वार को आरसी-सा झकझक-तकतक कर देती हैं। पर इसमें भी पन्द्रह दिन लग जाएंगे। बाकी रहे पन्द्रह दिन। जिनमें से सात दिन ओढ़न-बिछावन, चटाई, मादुर¹⁸² आदि धोने, सुखाने में लग जाएंगे। और अन्तिम सात दिन तेल-साबुन लगा खुद को साफ़-सुथरा कर देवी ठकुराइन बनी बैठी रहेंगी। लेकिन दिन ही तो नहीं बीत रहे।

‘ऐसी बात क्यों कह रही हो कि दिन नहीं बीत रहे?’

थोड़ी देर पहले यही औरत उसके चारों ओर सात चक्कर लगा चुकी थी। पंच-प्रदीप का थाल उसके सिर से छुआने के बाद अपने सिर से छुआ चुकी थी। खोई¹⁸³ के कुछ दाने और अतसी के फूल माथे पर छिटके थे। उसने ऐसी भाव-भंगिमा दिखाई, जैसे सचमुच का विवाह हो रहा हो। जबकि सोचें तो दूसरे अनेक निरर्थक अनुष्ठानों की तरह यह भी एक खास तरह की पूजा से जुड़ा अनुष्ठान-मात्र था। जो भी हो, था यह बहुत मजेदार। सात साल पहले की बात याद हो आई थी। उस दिन उदयतारा के सामने एक अनजान नवयुवक बैठा था। बड़े सलीके से बाल और दाढ़ी कटी हुई थी। तेल चूते माथे पर मुकुट सजा था। नए वस्त्रों में वह किसी देवता जैसा दिख रहा था। सचमुच के विवाह के दिन पुरुष देखने में कितने सुन्दर लगते हैं। वह भी उस दिन बहुत

181. भैयादूज

182. अच्छी किस्म की चटाई।

183. भुने धान का लावा/चावल

सुन्दर लग रहा था। तीन-चार औरतों ने मिलकर उसके बाल बना दिए थे। तेल-सिन्दूर लगा दिया था। चन्दन-तिलक लगाने की रस्म पूरी कर दी थी। केले की कोंपल के सिरे से उसने उस आदमी का गाल सहलाया था। उस समय वह छोटी बच्ची थी और उसका कलेजा डर से धड़क रहा था। वह उसकी आँखों की ओर देख नहीं पा रही थी। जबकि चारों ओर से लोग कह रहे थे-ऊपर देख, ऊपर देख इस समय ठीक से देखना पड़ता है। विवाह से पहले शुभ-दृष्टि की रस्म। उसे पीढ़े पर बैठाकर चार लोगों ने उस पीढ़े को ऊपर उठा रखा था। उस समय उसने जरा-सी नजरें उठाई थीं फिर तुरन्त अपनी पलकें झुका ली थीं। उस दिन उससे उस आदमी की ओर ताकते नहीं बना था, लेकिन अब जितनी बार चाहो देख लो। कोई दिक्कत नहीं। पर उस दिन एक झलक देखने में जो अनुभूति हुई थी, क्या अब वैसी फिर कभी होगी? उस दिन के देखने का स्वाद अब जाने कहाँ चला गया था? यह सोचकर उदयतारा खुद ही हँस पड़ी थी। उसकी दुल्हन बनने वाली औरत ने उसके बाल संवारते-संवारते पूछा था, 'क्यों री उदी! हँसी क्यों?'

'हँसी आई, हँस पड़ी। अच्छा यह बता इस समय तो मैं तेरा दूल्हा हूँ। मेरे चेहरे की ओर देखने में तुझे शर्म नहीं आ रही!'

'लो, सुन लो बात! सचमुच के ब्याह में ही दूल्हे को देखकर नहीं लजाई तो इस जालाबिया के दूल्हे को देखकर क्या लजाऊँगी।'

असल ब्याह में भी तुझे लज्जा नहीं आई थी।

अरी मेरी माँ, क्यों नहीं लजाई थी तू!

'ये बात एक परस्ताव (किस्से) जैसी है। मेरा वर मेरे बाप के यहाँ मजदूरी करता था। उसके माँ-बाप नहीं थे। सूत पकाता¹⁸⁴ था और जाल बुनता था। मैं जब आठ साल की थी और वह बारह का। बाप ने तभी मुझे ब्याह दिया था। उसके साथ ही घूमती-फिरती थी, मछलियाँ पकड़ती थी, उन्हें काटती-सुखाती थी, मैं उससे क्यों डरती!'

'अरे ये तो मुझे मालूम ही नहीं था।'

एक और मजे की बात सुन। ब्याह के समय मैंने उसके सिर पर फूल फेंके थे। उसने भी फेंके, पर एक भी फूल मेरे सिर पर नहीं गिरा। सब दाहिने, बाएँ, कन्धे और पीठ पर गिरे, पर सिर पर एक भी नहीं लगा। मैं तो किसी को बात सुनाए बिना नहीं रहती। फिर वह तो हमारे घर का था। मुझे बहुत गुस्सा आया था। तेज दिखाते हुए

184. गाव से सूत मजबूत करना

बोली- 'ठीक से नहीं फेंक सकते। सिर पर फूल क्यों नहीं गिर रहे। दाहिने बाएँ क्यों जा रहे हैं। काजेर भाससि नाई, खावनेर गोसाईं ।'¹⁸⁵

तूने ब्याह के समय अपने वर को गाली दी। तू तो भारी बड़बोली है। मुँह से जो भी निकल जाता है, बोल देती है। तेरे वर ने तब क्या किया?

'एक मुट्ठी फूल उठाकर मेरे चेहरे और आँखों पर दे मारा।'

बड़ी हिम्मत थी उसमें, तो तूने सह लिया।

नहीं!

फिर क्या किया?

उसे मुँह चिढ़ा दिया।

एक बार मुझे चिढ़ा के दिखा।

धत्त, तू क्या मेरा सचमुच का वर है? तू तो औरत है।

तब मैं तुझे क्यों मुँह चिढ़ाऊँ।

धत्तरे की, हम क्या छोटे बच्चे हैं?

ऐसे भी बड़े नहीं हुए हम। बारह साल की उम्र में ब्याह हुआ था। उसके बाद के नौ साल। कुल मिलाकर इक्कीस साल। इतने में ही बड़े हो गए।

'बड़े हुए कि नहीं, अगर यह समझ में आ गया होता तो अब तक एक-दो बच्चे-कच्चे गोद में खेल रहे होते। जीवन में एक का भी गू-मूत नहीं धोया। तेरा जैसा कच्चा मन है, वैसा ही कच्चा शरीर। तभी लगता है बच्ची ही है। अगर संतान हुई होती तो उम्र का भी आभास होता!'

'तो यह बात कहो ना।'

चारों ओर अंधेरा घिर आया था। सफ़ेद-सफ़ेद अनेक साँपला ¹⁸⁶ फूलों से शोभित सर्पासना मनसा की मूर्ति भी अनन्त की आँखों के सामने धीरे-धीरे धुंधली हो गई थी। अन्य सभी घरों की धूमधाम एवं गीत-संगीत भी क्रमशः अस्पष्ट होते-होते एकदम शान्त हो गए थे।

सावन महीने की अंतिम तारीख को हर मालो परिवार में मनसा पूजा होती थी। अन्य पूजा-समारोहों की अपेक्षा इसमें खर्च कम और आनन्द अधिक होता था। मालो-पुत्र छोटी-छोटी नावों पर चढ़कर जल भरे नालों में उतरते और जल में आलोड़न जगाते। वहीं पाताल को खोदकर साँप की तरह लिकलिके साँपले का पौधा निकला करता था। उसमें सफ़ेद-सफ़ेद ढेर सारे फूल खिलते थे, पूरा नाला फूलों से भर जाया

185. काम का न काज का, ढाई मन अनाज का।

186. साँप जैसे आकार के जंगली सफ़ेद फूल

करता। जहाँ तक नजर जाती, ये सफ़ेद फूल ही दिखाई देते थे। उन्हें देखकर ऐसा लगता था जैसे श्वेत-रत्नों का मेला लगा हो। फूल को पकड़कर खींचें तो कहीं-कहीं पूरा पौधा ही उखड़ आता था। ऐसे अनेक उखड़े पौधों को फूल सहित कन्धे पर लाद ये लड़के घर लौटते थे। मछरे इन लड़कों को घूम-फिर साँपला फूल इकट्टा करते देखते थे। फूल इकट्टे करते-करते लड़के भी उन मछरों की ओर एक नजर डाल लेते। जल सूख जाएगा तो नाले में थोड़ा-सा जल बँधकर रह जाएगा। इस प्राणहीन जल में मछलियाँ भी थोड़े दिन में दम तोड़ देंगी। फिर भी सब जानते-सुनते मूर्ख मछलियाँ किस मोह में इस निष्कंप जल में पड़ी थीं। तितास के वेगमय जल में उतर गई होतीं तो उन्हें इतनी जल्दी पकड़ में आने का भय नहीं होता। पकड़ में आतीं भी तो मालो लोगों के बड़े जाल में, जिसमें से कूद-फाँदकर भागने की गुंजाइश रहती। लेकिन नमोशूद्रों¹⁸⁷ की पकड़ में आकर तो उनकी भागने की हजारों कोशिशें बेकार ही जाएँगी। मनसा की पुष्प-सज्जा का काम खत्म होने पर पुरोहित आया करता। मालो लोगों के पुरोहित तो गूलर के फूल की तरह होते थे। एक पुरोहित को अकेले एक दिन में दस-बारह गाँवों की मनसा-पूजा सम्पन्न करवानी होती। गले में एक चादर लटकाए, हाथ में पुरोहित-दर्पण¹⁸⁸ लिए घर में घुसते ही वे हड़बड़ी मचा देते थे। जल्दी करो, जल्दी। उसके बाद झटपट एकाध बार नमो-नमो का जप कर पूजा खत्म करवा, दक्षिणा लेकर दूसरे घर की ओर चल पड़ते थे। आधे घंटे के भीतर वे पूरे गाँव की पूजा का काम खत्म करा देते थे। इस दौरान उनकी व्यस्तता देखने लायक होती थी। वे किसी मालो को बुलाकर दूसरे गाँव पहुँचा देने की ताकीद करते हुए कहते- 'अरे बिन्दावन, अपनी नाव में मुझे चटपट भाटी-सादकपुर पहुँचा दे ना!'

सावन के अन्तिम दिन तक पद्म-पुराण का पाठ चलता था। लेकिन पोथी समाप्त नहीं की जाती थी। लखिन्दर का पुनर्मिलन एवं मनसा-वन्दना शीर्षक दो अध्याय छोड़ दिए जाते। मनसा-पूजा के दूसरे दिन सुबह उनका पाठ किया जाता। उस दिन मछरे जाल फेंकने नहीं जाते। धूमधाम से पद्म-पुराण गाते और खोल, करताल बजाते।

पाठ का अन्तिम दिन आते-आते बनमाली का गला बुरी तरह फट गया था। एक हाथ गाल पर रख दोनों आँखें फैला गले पर पूरा जोर देकर उसने 'अन्तिम दिशा' उठाई-

'हाथों में टोकरी लिए वह सबको बुलाकर कहती है-

187. बंगाल की एक बेहद निचली जाति

188. पुस्तक का नाम (पंचांग)

कौन लेगा मेरी यह अमूल्य टोकरी, लाख रुपए मूल्य में।¹⁸⁹

लेकिन उसके सुर में आज ताकत नहीं थी। फटे बाँस की बाँसुरी की तरह बेसुरा बज रहा था। उसके गीत की अन्तिम कड़ी दोहराने वालों का गला तो पहले ही फट चुका था। उनकी तो आवाज ही नहीं निकल रही थी। उन्होंने पद्म-पुराण का पाठ खत्म कर लिया था। बेहुला डोमिन का वेश धारण कर अपनी देवरानियों को बिजनी¹⁹⁰ बेचने आई थी। अन्त में उसकी विजय और चाँद सौदागर की पराजय हुई। उसने मनसा देवी की पूजा की थी। तब से घर-घर में मनसा की पूजा का प्रचलन हो गया था।

वन्दना समाप्त कर पोथियाँ बाँध दी गईं। उन्हें साल भर के लिए सँभालकर रख दिया गया। अब ये अगले सावन में खुलेंगी। एक आदमी बताशे और खोई बाँट रहा था। प्रसाद ले-लेकर सभी वहाँ से प्रस्थान कर रहे थे। बस, जिन्हें तमाखू की लत थी, वही बैठे थे। उधर पूजा-घर बेहाल था। कल की पूजा में जो धूप, दीप जलाए गए थे, वे बुझ चुके थे। कल यहीं दस-बारह तिपाइयों पर नैवेद्य सजाकर रखा गया था। मनसा की मूर्ति पर ऐसा रंग किया गया था कि वह जीवन्त होकर हँस रही थी। उसके दोनों साँप अपने फन फैलाए हुए ऐसे लग रहे थे कि अनन्त को अभी डँस लेंगे। कल तक सबकुछ चकचक-झकझक था। पर आज सारे रंग बदल गए। नौसिखए कारीगरों द्वारा सस्ते में सजाया गया सारा चाकचिक्य बदरंग हो गया था। किसी लापरवाह भक्त के कपड़ों अथवा हाथों के धक्के से एक साँप की जीभ और दूसरे की पूँछ टूट गई थी। अब उनकी ओर देखकर दया आ रही थी। मूर्ति के अगल-बगल साँपला के फूलों का ढेर लगा था। बच्चे उनके छिलके उतारकर बीज खा रहे थे और साँपला की नाल में फूँक मारकर फुला रहे थे। कुछ ने उन्हें माला की तरह गले में पहन लिया था। अनन्त काफ़ी देर से चुपचाप बैठा था। एक छोटी बच्ची ने भी ऐसी ही माला बनाई थीं और अब सोच रही थी कि उसे किसके गले में पहनाए। अनन्त से नजर मिली तो उसी के गले में माला डाल दी। अनन्त ने तुरत माला उतारी और उसे लड़की के जूड़े में लपेट दिया। यह घटना पलक झपकाते घट गई थी। लड़की के बजाय अनन्त का ध्यान बार-बार उसके जूड़े पर जा रहा था। उसकी उम्र की तुलना में जूड़ा बहुत बड़ा लग रहा था। ऐसा लगता था उसकी माँ ने सात सिरों के बाल समेटकर अकेले उसके सिर पर बाँध दिए थे।

अनन्त के इस काम से लड़की बहुत खुश हुई, वह पूछने लगी- 'तुम्हें तो इस गाँव में कभी देखा नहीं! तुम्हारा नाम क्या है?'

189. बिउनि हाथे लइया बिपुलाए बोले /केनिबि बिउनी लक्ष्य टाकार मूले

190. बीज

‘अनन्त ! मेरा नाम अनन्त है।’

‘धत्त, यह कैसा नाम है। ठीक से बताओ। तुम्हारा नाम क्या है?’

‘मैं ठीक ही बता रहा हूँ। मेरा नाम अनन्त है।’

‘अच्छा ! तुम्हारे सिर पर मेरे जैसा जूड़ा क्यों नहीं है? और मेरी तरह तुमने साड़ी क्यों नहीं बाँधी? तुम्हारे नाक-कान नहीं छिदे, क्यों? उनमें सीकें भी नहीं है, गोदना कहाँ है? चूड़ियाँ क्यों नहीं पहनी?’

‘अरे मैं तो लड़का हूँ। तू लड़की है।’

‘फिर तुम्हारा नाम अनन्त नहीं हो सकता!’

‘क्यों नहीं?’

‘मेरा नाम अनन्त है तो तुम्हारा यही नाम कैसे हो सकता है?’ लड़की ने कहा।

‘मेरा नाम नहीं हो सकता ! ओ माँ, क्यों नहीं हो सकता?’

‘तुम तो लड़के हो ! मेरा और तुम्हारा नाम क्या एक हो सकता है?’

‘अगर नहीं होता तो मैं तुम्हें यही नाम क्यों बताता? मेरी माँ ने खुद यह नाम रखा था। मौसी भी जानती थी।’

‘केवल मौसी जानती थी, और कोई नहीं!’

जिस घर में अभी रह रहा हूँ। उसके दो भाई बहनों को भी यह नाम पता है।

बस तीन लोग ! अब गिनो मेरा नाम कितने सारे लोग जानते हैं। मेरा नाम रखा गणक ठाकुर ने। इस नाम को मेरे बाबा, मेरे सात काका, मेरी पाँच काकियाँ, छह दादा, तीन दीदी, चार मौसियाँ और दो बुआ जानते हैं।

अरे बाप रे !

और भी बहुत लोग जानते हैं। सब मुझे बहुत प्यार करते हैं। मुझ पर कोई हाथ नहीं उठाता।

‘मुझ पर भी कोई हाथ नहीं उठाता। बस एक बुढ़िया मुझे मारा करती थी पर मौसी बचा लेती थी।’ अनन्त बोला था।

‘मौसी बचाती थी, माँ क्यों नहीं बचाती थी?’

‘मेरी माँ नहीं है।’

लड़की यह सुनकर विगलित हो उठी। बोली- ‘माँ नहीं है, हाय रे भाग्य ! लोग कहते हैं जिसकी माँ नहीं, वह अभागा होता है।’

अनन्त हठात अपनी नजर ही में छोटा हो गया। तुरन्त बोला- ‘मौसी तो है।’

लड़की ने भौंहेँ टट्टी कर एक लम्बी साँस छोड़ी। ‘मौसी है, चलो ! कुछ तो ठीक है। कहावत है, तीर्थेर मद्धे कासी, इस्तिरी मद्धे मासी, धाने मद्धे खामा, कुटुमेर

मद्धे मामा' 191 श्रेष्ठ होते हैं। यह कहती हुई लड़की न जाने किधर जाकर गुम हो गई।

अनन्त ने मन ही मन सोचा- अरे बाबा, ये लड़की तो बात-बात पर शिलोक (श्लोक) छोड़ती है। इसे तो एक बार उदयतारा से मिलवाना होगा।

थोड़ी देर बाद ही पूजा-मण्डप के सामने वह लड़की फिर मिली।

अच्छा मुझे अपनी मौसी के घर ले चलोगे!

कैसे ले जाऊंगा। बहुत दूर है। नाव में जाएंगे, तब भी एक दिन लगेगा।

दूरी अधिक हो तो क्या कोई किसी को अपने गाँव-देश नहीं ले जा सकता!

ले जा सकता है, लेकिन अभी नहीं। बैशाख में तितास के किनारे मेला लगता है। तब चलना। उस समय दूर-दूर के लोग वहाँ जाते हैं।

ठीक है, उसी समय मुझे ले चलना कैसा रहेगा?

मेरी तो अपनी कोई नाव है नहीं। बनमाली से पूछूँगा। उसकी नाव में जा सकोगी।

दूसरे की नाव में मेरे बाबा जाने देंगे तब ना!

नाले में पड़ी टूटी नाव में सात दिनों तक भूखे-प्यासे पड़े आदमी को जिसने बाहर निकालकर जान बचाई, उसे तुम पराया कहती हो। यह भी कोई बात हुई। लड़की की आँखें उत्सुकता से चमक उठीं। तुम नाले में पड़ी टूटी नाव के तख्ते पर रहते थे! डर नहीं लगता था! रात को अगर कोई भूत-पिशाच आ जाता तो! बताओ ना, तुम अकेले वहाँ कैसे रहते थे?

ये तो एक लम्बा परस्ताव है। कहने बैठा तो तीन दिन लग जाएंगे।

तुम अपने गाँव मुझे ले चलो ना! कौनसी नाव में ले चलोगे? चलो मुझे नाव दिखाओ।

अच्छा! ले चलूँगा।

ठीक है, अगर मैं गई, तो क्या तुम्हारी मौसी मुझे भी तुम्हारी तरह प्यार करेगी!

हाँ, तुम्हें तो कर सकती है। मुझे ही खदेड़ कर बाहर कर दिया।

क्या बोल रहे हो? एक बार खदेड़ दिया फिर वापस घर में नहीं बुलाया।

नहीं।

तब वहाँ जाने की जरूरत नहीं है, बल्कि तुम हमारे ही घर चलो। वहाँ कोई घर से नहीं निकालेगा।

अगर निकाल भी देगा, तो मैं तुम्हें फिर बुला लूँगी।

191. तीर्थों में काशी, प्रियजनों में मासी, धानों में खामा और संबंधियों में मामा

लड़की की बातें अनन्त को बड़ी अच्छी लगीं। भरे-पूरे परिवार में रहकर उसे भी आनंद आया। वहाँ दसियों लोग दस तरह की बातें करेंगे। बीसियों हाथ किस्म-किस्म के काम करेंगे। दसियों मुखों से दस तरह की कहानियाँ सुनने को मिलेंगी। पूरा घर कलरव मुखरित रहेगा। उन्हीं के बीच यह चंचल लड़की उसके साथ जाल बुनने और मछलियाँ पकड़ने का खेल खेलेगी। अनन्त ने सोचा जब तक वह सचमुच का मछेरा होकर अपनी नाव नहीं बना लेता तब तक इस खेल के जरिए ही उसे जाल फेंकने और उसे समेटने का गुण सीख लेना चाहिए।

लेकिन ठीक उसी समय उसके मन में एक करुण रागिनी भी गुनगुनाने लगी। उसकी दुनिया तो वेदना की दुनिया है, जिसमें न हास्य है, न मनोरंजन। कोई अपना कहने वाला भी नहीं। उसकी दुनिया में तो निरन्तर दुःख की छाया थी। आकाश में तारे थे तो जंगलों में फूल और बादलों में रंग। तितास की लहरों में इन्हीं रंगों की क्रीड़ा थी। इन सबकी यह रूपोन्मत्त बाहरी दुनिया उसके मन की उदासीनता के साथ घुल-मिल कर एकाकार हो गई थी। जैसे एक के बाद एक सागर की लहरें थपेड़े मार उसके मन को जल में ऊभ-चूभ कराती रहती थीं।

जब वह चारों ओर ताकता, तो न कोई कूल-किनारा दिखता, न कोई सीमा। बस जल ही जल। तितास के दोनों किनारे भले ही तटों से बंधे थे। लेकिन क्या उनमें इतनी हिम्मत थी कि वह इस जल को बाँधकर रख सके, लगता है इसका फालतू जल बाहरी दरिया का नमकीन जल था। जो इस छोटी-सी नदी के नृत्य-विलास को पीछे फेंक केवल अनवरत हाहाकार मचाता रहता था। अनन्त इन सबके पीछे छिपे कारणों का मन ही मन विश्लेषण करना चाहता। वह महसूस करता कि एक विशाल विपुल समय की महाधारा में वह एक छोटे से दुर्बल तिनके के समान बहता चला जा रहा था। कुछ दिन पहले अपनों के नाम पर वह सिर्फ अपनी माँ को जानता था। इसके बाद आई मौसी। पर अनन्त को इस बात का अहसास तो था ही कि वह असल में उसकी कोई नहीं थी। बनमाली और उदयतारा भी कुछ दिन पहले राह चलते उसके साथी बने थे। मौसी की तरह ये भी एक दिन उसे पराया कर देंगे। तब वह कहाँ जाएगा।

जाएगा कहाँ, कहीं कोई सराय तो मिल ही जाएगी। जिसे वह जब चाहे छोड़ सकता था, फिर दूसरी कोई मिल जाएगी। इस लड़की के परिवार को भी सराय की तरह मानकर अगर वह कुछ दिन उसमें रह जाय तो नुकसान ही क्या था !

अनन्त की आँखों के आगे तीन नारियाँ एक-साथ आ खड़ी हुईं। मौसी, जो नितान्त असहाय थी। बाप-माँ के तीखे-कड़वे अनात्मिय परिवेश में वह बिल्कुल निरुपाय थी। उसके अतीत से वर्तमान का जो संयोग-सूत्र था, भविष्य में वह टूटकर

विच्छिन्न भी हो सकता था। एक तुच्छ तिनके की तरह वह भी समय की महाधारा में किसी तरह बहती चल रही थी। तितास के जल में ऐसे हजारों तिनके तैरते रहते थे, जाहिर है, उन्हें किसी न किसी मालो के जाल में अटकना ही था। लेकिन मौसी का भविष्य! उसे तो कभी किसी का भरोसा मिला ही नहीं। और उदयतारा! उसके मन में भी वेदना की कितनी परतें जमी थीं, लेकिन वह ऊपर से बेहद सख्त नारी दिखती थी। हंसी-मजाक, कथा-कहानी, छड़ा-श्लोक के आवरण में अपनी सारी व्यथा ढँककर हमेशा चेहरे पर मुस्कान चिपकाए चलती। विधाता ने ऐसे दुःख का सृजन ही नहीं किया जो उदयतारा को अपने वश में कर सकता। मौसी ने भी क्यों नहीं अपने सारे दुःखों को झटका देते हुए चलने की सामर्थ्य हासिल की। अगर उसमें यह क्षमता होती तो अनन्त को भी कई दुश्चिन्ताओं से निजात मिल गई होती। और यह हंसमुख, चंचल बालिका! इसका जीवन तो अभी शुरू ही हुआ था। वह जैसे खुद चाँद की रोशनी थी, जो आकाश के अनेक ठिठके हुए सितारों को जंगली फूलों की तरह अपने स्पर्श से खिलाने, छिटकाने, हंसाने और पागल बनाने में सक्षम थी। काश यह लड़की हरदम उसके साथ रह सकती! अगर ऐसा होता तो उसके मन की उदासीनता भी धीरे-धीरे खत्म हो जाती।

लड़की एकाएक हँसते-हँसते लोट-पोट हो गई।

अनन्त यह देख कर चौंक उठा।

उसने पूछा- हँसी क्यों?

उसकी दोनों आँखें नाच उठीं। बोली- 'हाय दैया, तुम्हारे गले में मैंने जो माला पहनाई है। खबरदार, इसके बारे में किसी को कुछ मत बताना!'

अगर बता दूँ तो क्या होगा?

लोग तुम्हें मेरा वर कहकर चिढ़ाएँगे।

धुत्त! मैं क्या श्यामसुन्दर बैपारी हूँ। मेरी क्या इतनी लम्बी-लम्बी दाढ़ी है, जो लोग मुझे तुम्हारा वर कहेंगे!

चल झूठे! वर की क्या लम्बी-लम्बी दाढ़ी होती है!

मैंने खुद अपनी आँखों से देखा था। माँ मुझे अपने साथ ले गई थी। और भी बहुत से लोग गए थे। वे कह रहे थे, इतने दिनों बाद वर जैसा वर देख कर आँखें जुड़ा गई!

'ओ..समझ गई! वर बूढ़ा रहा होगा, लेकिन तुम तो बूढ़े नहीं हो!'

अनन्त यह सोच ही रहा था कि वह बूढ़ा है कि नहीं, तभी सब गड़बड़ हो गया। कोई उसे आवाज दे रहा था। 'अरी अनन्तबाला! ओ मेरी सोनपुतरिया, कहाँ है तू?' माँ बुला रही थी। बड़ी दुलारी बेटा जो थी। माँ अक्सर उसे दो सम्बोधनों से

बुलाती थी। खाने का समय हो गया, उससे पहले नहाना था। माँ शायद इसीलिए उसे पुकार रही थी। वहीं खड़ी एक और लड़की साँपले की नली फुला रही थी। फूल जाने पर उसने उसमें गाँठ लगा दी थी। उसने बिना ऊपर देखे छड़ा काटा-

‘अनन्तबाला, सोने की माला,
जब भी पहनो, लगे भला!’¹⁹²

देखा! कितने लोग मेरा नाम जानते हैं। मेरे नाम को लेकर शिलोक बनाया है; माँ बुला रही है। मैं जा रही हूँ। मैंने तुम्हें जो समझाया, समझे न, किसी से कुछ मत बताना! ठीक है तो!

ठीक है।

लेकिन मैं बता दूँगी।

क्या?

तुमने मेरे जूड़े में माला बांधी थी- यही बात।

किससे कहोगी?

माँ से।

अनन्त विचलित हो गया।

अरे परेशान हो रहे हो! माँ तुम्हें डाँटेंगी नहीं। स्नेह करेंगी। तुम भी चलो ना हमारे घर!

अनन्त ने मना कर दिया। मौसी के लिए उस समय उसका मन एक अबोली पीड़ा से छटपटा उठा था।

तभी तितास की धारा पर बाजे बजने की आवाज आई। लड़कों का दल पूजा-बाड़ी छोड़ नदी की ओर दौड़ पड़ा। सबके मुँह से एक ही आवाज आ रही थी- नौका-दौड़! नौका-दौड़!

इस शब्द ने अनन्त के मन में कौतूहल जगा दिया। उसने तो बहुत सारी नावें देखी थीं। ऐसी नाव पहले कभी नहीं देखी। सो वह भी भागकर घाट पर जा पहुँचा। उसने पाया, सचमुच यह तो देखने की वस्तु थी, अद्भुत..अपूर्व!

रंगीन नाव!

अभी चारों ओर बारिश का जल फैला था। इधर-उधर कई गाँव नाले के पानी में स्नान कर स्तब्ध खड़े दीख रहे थे। पर तितास का हृदय स्वच्छ था। उसके किनारे की सीमा के बाहर साँपले-सालुक के देश, अनेक दूर के धान-खेत, पाट-खेत भी जल में तैरते दीख रहे थे। नाव ने तितास पारकर दूरवर्ती एक गाँव की ओर रुख किया।

192. अनन्तबाला सोनारमाला/जखनई पोरी तखनी भाला।

नाव की गलुई¹⁹³ जल के समानांतर थी। पतला लम्बा पिछला हिस्सा पेट के ऊपर से ऊँचा होता हुआ जैसे आकाश छू लेना चाहता था। ऐसा लगता था बीच में एक टेढ़ा बाँस आकाश में छेद करने के मकसद से ही रखा गया था। एक आदमी उसे पकड़कर नाच रहा था और नाव के पटरों पर पैरों से आघात कर रहा था। दूर से देखने पर वह किसी पक्षी की तरह छोटा-सा लग रहा था। नाव में खड़ा लोगों का एक दल खोल, करताल बजाकर सारी¹⁹⁴ गा रहा था और गीत की ताल पर दोनों ओर सैकड़ों हाथ उठ-गिर रहे थे। जल उछाल रहे थे। फव्वारे की तरह उछलते जल से वातावरण में धुंध छा गई थी।

लेकिन बहुत देर तक यह दृश्य आँखों के सामने नहीं रहा। वह नाव गाँव के घरों, पेड़-पौधों की ओट लेती हुई ओझल हो गई थी। अनन्त की आतुरता देख घाट पर खड़े अन्य लड़कों ने उसे सांत्वना दी। 'जब नाव इस तरफ़ आएगी तो तुम्हें थोड़ी देर में यही दृश्य फिर दिखेगा, अभी तो गाँव के कारण वह ढँक गई है।' लेकिन नाव लौटकर उस ओर नहीं आई।

अनन्त ने उन्हीं लड़कों से फिर पूछा- नाव इधर क्यों नहीं आई? उन्होंने उत्तर दिया- शायद इस नाव के लोग इसी गाँव के रहने वाले थे। नावें सजाकर उन्हें रंग-बिरंगी बनाकर कुछ लोगों को नौका-दौड़ की तालीम दिलाने लाए थे। पाँच दिन बाद ही तो बड़ी नौका-दौड़ होने वाली थी। नाव ठीक-ठाक चल रही है या नहीं, शायद यह जानने के लिए उन्होंने केवल एक चक्कर लगवाया था। अभी अपने-अपने घाटों पर नावें बांध सभी खाना खाने चले गए होंगे।

यह भी हो सकता है कि वे इधर से होते हुए सीधे किसी और गाँव जा निकलें हों।

अनन्त को दूसरी बात ज्यादा जँची। नाव जैसे साँप की तरह हिस्स हिस्स करती चल रही थी, इस गाँव में उसके रुकने के आसार नहीं दिख रहे थे। नाव की रंग-बिरंगी देह पर लता-पत्र, साँप-मयूर आदि के चित्र आँके हुए थे। हजारों-हजार बच्चों के मनो को पागल करने के लिए, वे एक के बाद दूसरे गाँव में नावें दौड़ाते चल रहे थे। सारा दिन चलने के बाद रंगीन नावों की रात कहाँ हुई होगी, कौन जाने !

193. नाव के सामने का नुकीला हिस्सा

194. एक लोकगीत

रंगीन नाव

चैत के सूखे से तपकर खेत-मैदान परेशान थे। अब तक तितास का जल विरामपुर गाँव के किनारे से काफ़ी दूर निकल गया था। गाँव के हृदय को चीरते हुए जो रास्ते तितास से आ मिले थे, वे सभी एक दौड़ के रास्ते हुआ करते थे। कादिर का बेटा छादिर अपने पाँच साल के बच्चे रमू की तेल मालिश कर रोज दोपहर इसी रास्ते नदी से नहाकर लौटता था। छादिर अपने तेल-पुते बच्चे को गोद में लेकर जाता था। बच्चा अपनी देह का सारा तेल अपने बाप के पेट और कन्धों पर पोत देता था। बायाँ हाथ बाप के कन्धे पर रख दाहिने हाथ से वह तेल अपने पिता के शरीर पर मलता चलता था और बीच-बीच में जिद करता था- 'बापजान तू मुझे नीचे उतार दे।' किन्तु बाप उसे उतारता नहीं था, बल्कि उसके नरम तुलतुले बदन को अपने सख्त मांसपेशियों वाले शरीर से रगड़ता रहता था और कहता, 'वाह ! कितना अच्छा लग रहा है।'

घाट पर पहुँच एक चुटकी बालू उठाकर पहले अपने दाँत माँजता, फिर बेटे के गमछे से रगड़कर खुद भी नहाता, बच्चे को भी नहलाता और दोनों मजे से नदी में डुबकी लगाते। कभी-कभी वह रमू को खुद से अलग करते हुए कहता- 'छोड़ दूँ !'

रमू उसे पहले कसकर पकड़ लेता, फिर कहता- 'अब छोड़ दे !'

स्वच्छ जल फट-फट करता बहता था। इस समय धारा की गति मंद रहती। कटारी मछलियाँ डूबने-उतराने के खेल में मग्न थीं। बाप-बेटे के शरीरों पर पुता तेल पानी पर तैरने लगता था। ठीक उसके नीचे छोटी-छोटी मछलियाँ बुलबुले छोड़ती रहतीं। रमू हाथ बढ़ाकर उन्हें पकड़ना चाहता, लेकिन वे हाथ नहीं आतीं। धरती का पूरा शरीर इस समय भयंकर गर्म हो गया था। अगर कहीं ठण्डक बची थी तो बस तितास के तल में। धरती के उत्पाप को धकेल तितास ने इन दो बाप-बेटों के लिए ही अपने भीतर वह शीतलता छिपा रखी थी जिसमें ये डूब सकें बड़ी देर तक जल में

उछल-कूद के बाद भी उन्हें तृप्ति नहीं मिलती। जैसे ही वे नाव में आते, फिर वैसी ही गर्मी लगने लगती। अन्त में छादिर ने बेटे को कहा- 'तू मेरे कन्धे पर बैठ, चल हम लोग पाताल लोक में चलें।'

रमू ने पाताल लोक के नाग-नागिन की कहानी सुन रखी थी- 'ना ना बा जान, पाताल जाने की हमें कोई जरूरत नहीं है। साँप डँस लेगा तो क्या करेंगे?'

बच्चों के मन का डर निकाल देना चाहिए, इसलिए छादिर ने डाँट कर कहा- 'साँपों का तो मैं पूरा खानदान खत्म कर दूँगा। तू मेरे कन्धे पर बैठ तो सही।'

रमू ने बाप के दोनों हाथों की उंगलियों को सख्ती से पकड़कर उसके कन्धों पर पाँव रख लिए और डगमगाते हुए खड़ा हो गया, इसके बाद बाप के सिर को मजबूती से पकड़ लिया। खुशी के मारे उसके मुँह से किलकारियाँ निकलने लगी। उसने सिर से हाथ हटाकर ताली बजाई, बोला- 'अब्बा जान मैं तैयार हूँ, अब मुझे ले चलो पातालपुरी।'

बच्चे की खुशी में बाप की खुशी भी घुल गई थी। उसने भी अपने दोनों हाथ जल के ऊपर किए और बोला- 'दम्ब-दम्ब ताई ताई, ठाकुर को ले पूरब को जाई।'

घाट पर छोटी-बड़ी कई उम्र की औरतें नहाने-धोने आई हुई थीं। बाप-बेटे की मस्ती देख एक ने कहा- 'देखो, कैसी कुलेलें कर रहा है!'

क्यों न करे, इतनी-सी उम्र में बेटा जो हो गया। समझ में नहीं आ रहा कि उसे रखे कहाँ। पेट में, पीठ पर या फिर माथे पर।

पानी से निकलकर बच्चे की देह पोंछी और छोटी सी दो-हाथी ¹⁹⁵ लुंगी लपेटकर छादिर बोला- 'अब चल, पैदल चलते हैं।'

एक-दो कदम चलते ही गर्म धरती पर उसके पाँव जलने लगे थे। वह चिल्लाया- 'बाप, मुझे गोदी में उठा ले, मेरे पैर जल रहे हैं।' यह कह उसने करुण आँखों से छादिर की ओर देखा।

बाप की गोद में चढ़कर उसकी रोमिल छाती में अपने नर्म गाल घिसते हुए रमू टुनमुनाया- 'बाप, मुझे छोटे-छोटे खड़ाऊँ खरीद दे। एकदम छोटे-छोटे दो खड़ाऊँ।' उसने हाथों से उनका आकार बनाकर कहा- 'इत्ते छोटे-छोटे। मैं फिर उन्हें पहनकर चला करूँगा। तुमको मुझे गोद में उठाने की जरूरत नहीं पड़ेगी।'

'अरे मेरे मुंशी के बेटे, पाँव में गर्मी लग गई। इस तरह गर्मी लगी तो खेतों में काम कैसे करेगा?'

195. दो हाथ की बच्चों की लुंगी।

घर आने में थोड़ी देर थी। तितास से निकला हुआ एक छोटा-सा नाला गाँव के पास से सीधे उत्तर की ओर निकल गया था। मिट्टी की हण्डी, कलसियों से भरी हुई एक नाव ज्वार के समय इस नाले में घुस गई थी। अब भाटे के समय कीचड़ में अटक गई है। निकलने का कोई उपाय नहीं मिल रहा। चढ़ती धूप में लाल-काले बर्तन चमचमाते दिखाई पड़ रहे थे। उनकी ओर उंगली दिखाते हुए रमू बोला- 'खेत में काम नहीं करूंगा, हँडिया बेचूंगा।'

ऐसी भंगुर चीजें लेकर ये नदी-नदी नाव लिए फिरते हैं। थोड़ी-सी टक्कर से सारे बर्तन या तो दरक जाते हैं अथवा जमीन पर गिरकर फूट जाते हैं।

'तेरे जैसा मूरख बर्तनों का व्यापार क्या करेगा?'

'तब मैं आम-कटहल बेचूंगा।'

'नाव में आम-कटहल सड़ जाते हैं, किसी कोने से एकाध ने जो सड़ना शुरू किया तो पूरी नाव का सामान कुछ ही दिनों में सड़ जाता है। सारे के सारे फल नदी में फेंक देने पड़ते हैं। मुनाफे की बात तो छोड़ो, मूलधन भी डूब जाता है। तुझे तो खुद का ही होश नहीं है अभी। समझ भी नहीं पाएगा किस कोने से फलों ने सड़ना शुरू किया। बाप की पूंजी लुटाकर तू हम सबको फकीर बना देगा।'

'तब छोड़ो, व्यापार नहीं करूंगा।'

'हाँ बेटा! व्यापारी बहुत झूठ बोलते हैं। तीन-तेरह करके लोगों को ठगते हैं। खरीदते समय उनके हाथ बँधे रहते हैं और बेचते समय बिल्कुल खुल जाते हैं। इसी कारण तेरे नाना व्यापारियों को फूटी आँख नहीं देखना चाहते। बड़े होकर अगर तूने घर-द्वार छोड़ व्यापारी बनने की सोची तो तेरे नाना तुझे चोर कहकर बुलाएंगे और..'

'और क्या?'

'साला कहकर बुलाएंगे।'

रमू थोड़ा हंसा लेकिन अपनी बात को झुकते देख अपमान से आहत हो बोला- 'अब मुझे उतार दे। उसके चेहरे पर बनावटी गुस्से के गहरे निशान थे।'

खेतों में काम की धूम मच गई थी। छादिर को दम मारने की फुरसत नहीं थी। बच्चे की ओर देखने का समय ही नहीं आजकल। उसकी माँ के पास भी इतने काम थे कि हाथों की दस बंगड़ियों¹⁹⁶ में से दो टूट गई थी। बेटे की माँ बनने के बाद परिवार में उसका मान बहुत बढ़ गया था। उसके ससुर कादिर मियाँ उसे भले ही ताने नहीं देते थे पर उसके बाप को नहीं बर्खाते थे। खाने पर बैठे हुए उसकी नजर अगर पुत्रवधू की टूटी हुई बंगड़ियों पर पड़ गई तो निस्सन्देह 'साले की बेटी' कहकर गाली देने लगेंगे।

196. लाख की चूड़ियाँ।

उन्हें कोई नहीं रोक पाएगा। शाम को बंजारिन आएगी, उससे सहज ही में दो पैसे की दो बंगड़ियाँ खरीद कर बहू को पहना दी जाती। लेकिन कादिर की गाँठ से पैसा निकले तब तो ! उसे अचानक अपनी परवशता महसूस हुई। बीच-बीच में ऐसा होता था। तब वह अपने बेटे रमू की ओर देखता। उसे प्यार करता, गोद में लेता और सोचता- जब वह बड़ा होकर परिवार का बोझ संभालने लायक होगा तब क्या वह अपनी माँ की थोड़ी-सी आजादी और परिवार में उसके वर्चस्व को मानेगा ! उसकी आँखें बेचैनी से रमू को खोजने लगी थीं। पर वह कहाँ था। वह तो तब तक नाले के किनारे पहुँच चुका था। हण्डियों से भरी फ़ँसी हुई नाव हर पल उसके मन में कौतूहल जगा रही थी। शाम को फिर बाप को गैर-हाजिर और माँ को घर के काम में लगा देख वह सीधे बर्तनों से भरी नाव देखने जा पहुँचा था। नाव काफ़ी बड़ी थी। हण्डियों का पहाड़ जैसे गर्व से तनकर खड़ा था। नाव में चारों ओर खूंटियाँ गाड़कर बेड़ा बना दिया गया था और हण्डियों को एक के ऊपर एक करीने से सजा दिया गया था। सुबह इन्हीं हण्डियों को लेकर गाँव-गाँव बेचा गया था। किसी ने इन्हें खरीदकर इनमें कुछ पकाया-खाया होगा। अभी ये विश्राम में थीं। एक विराट दैत्य की तरह नाव यहाँ फ़ँसी हुई थी। नाले का जल पूरी तरह सूख चुका था लिहाजा नाव में अब हिलने-डुलने की क्षमता नहीं रह गई थी। लेकिन इनके मालिकान को इनकी कोई चिन्ता नहीं थी। उन्हें लगता है वे इस नाव के बिना भी टोकरों में भरकर हण्डियाँ बेच लेंगे। एक दिन उनके सारे बर्तन बिक जाएंगे। ज्वार भी उठ जाएगा, जिससे नाव में फिर हरकत होगी और वह सरककर नाले से तितास के जल में उतर जाएगी। बहुत दिनों के बाद एक बार विराट दैत्य अपने हाथ-पैर हिलाएगा, साँस लेगा। फिर शायद वे इस ओर आएँ भी नहीं। किसी दूसरे नए गाँव की ओर रुख करें। वहीं ठिकाना जमाएँ। शायद इसीलिए इनके मन में हमेशा उत्साह भरा रहता था। ठण्डी हवा बहने लगी थी। किसी ने बारहमासा गाना शुरू किया-

‘हाय रे चैत मास आ पहुँचा, गृहस्थों ने बीज बोने शुरू कर दिए,

मुझे एक कटोरा जहर ला दो, खाकर जान दे दूँ,

रोएंगे मेरे माँ-बाप, पर दुबारा मुझे प्रवासी के गाँव तो नहीं ब्याहेंगे।’¹⁹⁷

रमू किनारे खड़ा मुग्ध होकर सुन रहा था। नाले के उस पार एक और आदमी हाथों में कैंची लिए गीत सुनने में मगन था- वह था छादिर। कोई जरूरी काम आन पड़ा था, जिसे सुबह-सुबह निपटाकर वह घर की ओर लौट रहा था।

197. हाय हाय रे एही तो चैत्री ना मासे गिरस्ते बूने बीज/आन गो कटोरा भरि खाइया मरि बिष/बिष खाइया मोइरा जामू कानबे बाप माय/आर तो ना दिबे बियाह पवासी ठाई।

गीत चलता रहा। स्तवक के बाद स्तवक, पद के बाद पद। विरह-वेदना से आपूरित करुण स्वर के गीतों ने शाम की ठण्डी हवा को विषाद से भारी कर दिया था। एक विरहिणी नारी की मार्मिक फरियाद ने एक बर्तन-व्यापारी के कण्ठ-स्वर का सहारा लिया था। महीनों के बाद महीने, मौसम के बाद मौसम; इस नारी ने अपने प्रिय-वियोग के दुःखभार को गीतों के जरिए हल्का करने की कोशिश की थी-

‘हाय रे हाय, आसाढ़ मास आ गया।

नदियों में नया पानी चढ़ने लगा,

जो साधू पीछे गया था, वह पहले घर लौट आया।

मुझ जैसी के प्राणों के साधू को शायद निगल गया लंका का बाघ।’¹⁹⁸

अंत में पौष मास आया-

‘हाय रे हाय, पौष मास आ गया। फूलों पर अंधकार छा गया

इतना अनमोल यौवन कैसे संभालूँ, कोई छिप-छिपकर नजर डालता है,

कोई सामने आकर कनखियों से देखता है।

लोगों को दुश्मन बना कब तक अपने यौवन को बचाए रखूंगी।’¹⁹⁹

थोड़ी देर में शाम हो गई थी। ननद भावजें उस पार के उसी रास्ते घाट पर आ-जा रही थीं। गीत के बोलों ने छादिर को व्यथित कर दिया था। उसने नाविक को बुलाकर कहा। ‘ओ व्यापारी, ऐसे गीत यहाँ जी खोलकर मत गाओ। मैं मना कर रहा हूँ तुम्हें!’

गायक ने तुरन्त गाना बन्द कर दिया था। धारा-प्रवाह गीत में अवरोध पाकर गायक के मुँह पर उदासी छा गई थी। कुछ जवाब न देकर उसने बस अपना सिर झुका लिया था। छादिर को मन में बड़ा कष्ट हुआ। गायक तो केवल गा रहा था। गीत के भीतर क्या था, क्या नहीं, इसकी ओर उसका कोई ध्यान नहीं था। वह तो मस्त होकर किसी भूले-बिसरे युग की विरहिणी की कथा को साँझ की हवा के जरिए खेत-मैदानों में उड़ेल रहा था। उसका दोष क्या था? घुटने भर जल वाले नाले को पारकर छादिर उस पार पहुँच गया और बच्चे का हाथ पकड़ लौटते हुए मुड़कर पीछे देखा और कहा- ‘गाना एकदम रोक क्यों दिया, धीरे-धीरे गाओ, गुनगुनाकर गा लो।’

198. आसिलो आसाढ़ मास/हाय-हाय रे एहित आसाढ़ मासे गाँगे नया पानी/जेह साधू पाछे गेछे, सेई आइलो आगे हाम नारिर प्राणेर साधू खाइछे लंकार बाघे।

199. हाय हाय रे, एहित पौष ना मासे पुष्य अंधकारी/एमुन साधे जेइवन राखिते ना पारी/केह चाइ रे आड़े-आड़े केह चाइ रे रइया/कतकाल राखिबो जोवन लोकेर बैरी होइया।

उनका दुआर ढँलवा था। वहाँ पानी नहीं जमता था। हमेशा ठन-ठन सूखा रहता। शाम को दर्जन भर हंस, मुर्गियाँ अपनी संतानों²⁰⁰ (चूजे-चूजियों) को साथ ले दाना चुगने निकलते और सारा दरवाजा गन्दा कर देते। गोले में मनो धान रखा था। धान की पैदावार इतनी अधिक हुई थी कि साल भर खा-लुटा, खोई का मोआ और मिट्टी आदि के बर्तन खरीदने के बाद भी वह धान कम होने वाला नहीं था। ढेकीघर²⁰¹ में साँप की एक बाँबी नजर आई थी। जब तक मिट्टी को खोदकर सन्देह दूर न कर लिया जाए तब तक वहाँ जाकर धान कूटना मुश्किल था। चाँदनी रात की शाम थी। बरामदे के ही एक कोने में ननदों को साथ लेकर धान कूटना होगा। एक बड़ी-सी झाड़ू लेकर कमर झुकाए-झुकाए इतने बड़े दरवाजे को झाड़ते और कूड़ा फेंकते दिन बीत गया। नवमी की हल्की चाँदनी में दरवाजा चक-चक चमकने लगा था। उसी समय नाले के किनारे के गोपाट-पथ²⁰² से होकर एक आदमी आगे आता दीख पड़ा। उसने सीधे इसी दुआर पर अपने पाँव रखे। इस मकान में चार बड़े कमरे थे। साथ ही सबके कोनों पर भी कई छोटे-छोटे घर बने थे। दरवाजे के दक्षिण-पूर्वी कोने के दो घरों के बीच पहुँच वह ठिठक गया और दबे स्वर में आवाज दी- खुशीSSS..खुशीSSSS ..ओ पेशकार की माँ!’

हाथ की झाड़ू को नीचे किए खुशी आगे बढ़ी और विस्मय से बोली- बा जान तुम!

हाँ मैं!

भीतर आओ..आओ ना!

हाँ, आता हूँ भीतर ही..अब बाहर खड़े होने से क्या लाभ! पीठ पर गाँती बाँधकर आया हूँ। गालियाँ देंगे तो मैं भी दूँगा। मारामारी करेंगे तो मैं भी करूँगा। मैं कमर कसकर आया हूँ।

खुशी ने अपमान से सिर झुका लिया। देहेज में जिन गहनों का वादा किया था, उन्हें नहीं दे पाने के कारण उसके बाप को इस तरह छिप-छिपकर चोरों की तरह आना पड़ता था।

तेरा पेशकार कहाँ है?

उत्तर के कमरे में बाप से किच्छा (किस्सा) सुन रहा है।

और बड़ा पेशकार कहाँ है?

खुशी फ़िक्क से हंसी- ओ.. मेरे ससुर की बात कर रहे हो। बाजार गया है।

200. झी-पूतों

201. धान कूटने की जगह।

202. गायों के लौटने का रास्ता।

कादिर के बाजार से लौटने पर वे तीनों²⁰³ उनके पास जाकर तीन तरह की तीन नालिशें करेंगे। यह निश्चित कर लिया गया। पहली, खुशी माँ बनने वाली थी। विराट गृहस्थी से छुट्टी ले कुछ दिन वह बाप के घर रह आना चाहती थी। उसका बाप मुहरीर था। घर में खेती-गृहस्थी नहीं, इसलिए दिन भर काम का झमेला भी नहीं था। इस घर के हजार कामों से छुटी लेकर वह कुछ दिन वहाँ आराम करना चाहती थी। उसका बाप कादिर को यही बताने आया था। लेकिन उसमें यह बात सीधे कहने की हिम्मत नहीं। यह तो अदालत नहीं है कि डॉक्टर मुक्किल को भगा दे। यह कादिर मियाँ का परिवार था, जिस पर उसका एकछत्र अधिकार था। बाप को असहाय हालत में देख खुशी खुद विद्रोहिणी बन गई। वह खुद ससुर को अपने मुँह से कह देगी। बाप जो कहने आया था, वह नहीं कह पा रहा। चोर की तरह एक कोने में छिपा खड़ा था।

दूसरी नालिश छादिर की थी। उसे पिछली साल पाट बिक्री से मिले चार सौ रुपए अपने लिए चाहिए थे, ताकि नौका-दौड़ में भाग ले सके बचपन से बाप के साथ खटते-खटते उसने अपनी जान जलाई थी। कभी अपनी इच्छा, अपने आमोद-प्रमोद के लिए बाप से कोई शिकायत नहीं की। आज वह शिकायत करके रहेगा। अगर बाप इस पर गुस्साए तो गुस्साता रहे।

तीसरी नालिश रमू की थी। नाना उसे साला कहेगा। यह सुना-सुनाकर उसका बाप अक्सर उसका अपमान करता था। आज वह इसका हेस्त-नेस्त (निपटारा) कर के रहेगा।

कुल-मिलाकर एक छोटे-मोटे तूफान की आशंका थी।

कादिर मियाँ के घर में घुसते ही सब संत्रस्त हो उठे। तीनों नालिशकर्ता प्रायः साथ-साथ उनके सामने पहुँच गए। पहले तो किसी के मुँह से आवाज ही नहीं निकली। थोड़ी हिम्मत जुटाकर छादिर ही सबसे पहले बोला, अगर वह ऐसा न करता तो बीवी और बच्चे के सामने उसकी गर्दन नीची हो जाती।

बाजी, तुम्हारे हाथ में क्या है?

खावया-नाचुनी²⁰⁴

साफ़ पता चल रहा था कि वह गुस्से में था। छादिर चुपचाप बाहर निकल गया। खुशी घूँघट खींचकर घर के एक कोने में सरक गई। पास बैठा रमू दिये की रोशनी में नाना की चक-चक सफ़ेद दाढ़ी के भीतर से काँपते होठों को देख रहा था। पैरों में खड़ाऊँ पहन, हाथ-मुँह धो कादिर मियाँ ने हुक्का गुड़गुड़ाते हुए आवाज दी- 'ओ

203. खुशी, छादिर और रमू

204. जादू की डिबिया, जिससे कुछ खाते ही नाचने का मन करे।

छादिर, अरे ओ छादिर मियाँ..’

छादिर ने दरवाजे पर खड़ी पत्नी को धान की टोकरी पकड़ाई और दौड़कर बाप के पास पहुँचा- बाजी, मुझे पुकारा।

हाँ एक मुसीबत आन पड़ी है। उजानचर के मागन सरकार ने मुझ पर झूठा मामला ठोंक दिया है।

मामला ठोंका है!

हाँ, झूठा मामला। बाप-दादाओं के समय की जमीन-जायदाद थी। इस पर मेरा कानूनी हक था। मैं इस पर मेहनत करता हूँ। जरूरत पड़ने पर कर्ज काढ़ा हूँ, उधार लेता हूँ। पाट बिकने पर उसे चुका भी देता हूँ। किसी के बोए हुए खेत में पैर नहीं देता। न मेरे बोए खेत पर आज तक किसी ने हक जमाया। ऐसे में ये गजब!

क्या कहकर मामला किया है?

तीन साल पहले आए तूफान में जब अपना बड़ा घर गिर गया था, मैंने तब उनसे दो सौ रुपए उधार लिए थे। दूसरे ही साल बारह रुपए मन के हिसाब से पाट बेचे, हाथ में कच्ची आमदनी थी। अपने घर से गोपाट के रास्ते बेटी के घर जाते समय उसे बुलाकर सूद समेत सारा पैसा चुका दिया था। रुपए लेकर जाते-जाते उसने कहा कि चिन्ता मत कीजिएगा। घर जाते ही उधारी वाला कागज फाड़कर फेंक दूँगा। पर अब इतने दिन बाद वही कागज लगाकर मेरे नाम नालिश कर दी।

बा जान, तुम्हारे सारे काम ऐसे ही कच्चे होते हैं।

इनके नाम किसी ने कभी कोई मामला नहीं किया था। न ही इन लोगों ने कभी किसी पर नालिश की थी। इसलिए इस दुस्संवाद से सारे परिवार पर विषाद की एक छाया घिर आई थी। पूरा परिवार चिन्तित होकर कादिर मियाँ को घेरे खड़ा था। एक पक्का मुकदमेबाज अतिथि आज उनके घर के कोने में छिपा बैठा था, यह किसी को ध्यान नहीं था। खुशी भी हड़बड़ी में भूल गई थी। लेकिन मामले-मुकदमे की चर्चा हो और वह छिपा बैठा रहे, यह उसके लिए असंभव था। न जाने किस कोने से प्रकट होकर वह फट से सबके बीच आ खड़ा हुआ।

किस कोर्ट में नालिश की है? तारीख क्या है?

चौकते हुए कादिर ने पूछा- तुम कौन हो भाई?

मैं निजामत मुहरीर हूँ। तुम्हारा बेयाई! ²⁰⁵

समधी! मैंने तो समझा कोई बहुरूपिया है।

अब तुम जो भी समझो। जिन्दगी में मैंने कितने ही बहुरूपियों को नचाया है। अब आखिरी समय में खुद बहुरूपिया बनना पड़ा।

मतलब !

मतलब तो ठीक ही है। तुम तो कभी इन मामले-मुकदमों में पड़े नहीं। मुहर्रिर की क्या औकात है, कैसे समझोगे? मैं पतंग आसमान में उड़ा देता हूँ पर लटाई अपने हाथ में रखता हूँ। पतंग चाहे जहाँ उड़े, गिरना तो उसे मेरे ही हाथ में है।

जज, मजिस्ट्रेट तो डाल-पात हैं, जड़ तो मुहर्रिर के हाथ में ही होती है। क्या नाम बताया, उजानचर का मागन सरकार न! चिन्ता मत करिए। दो-चार गवाह जुगाड़िए। मैंने वादा किया मामला जिता दूँगा।

छादिर ने ससुर का समर्थन किया। बा जान, तुम जरा भी मत डरना। ससुर जी जब हिम्मत बँधा रहे हैं, तब जीत तो हमारी ही होगी बा जान !

कादिर के चेहरे की शिराएँ सख्त हो आईं।

अरे बेयाई, कह तो रहा हूँ तुम एकदम मत डरो, देखते जाओ, मैं क्या करता हूँ। उसने झूठा मामला ठोंका है, मैं भी झूठे गवाह लगाऊँगा। मामला तो खारिज करवाऊँगा ही, उसके पीछे आदमी छोड़कर पशु या खलिहान से धान-चोरी का उल्टा मामला ठोंककर छोड़ूँगा। खाली खड़े होकर तमाशा देखो।

कादिर का चेहरा और सख्त हो गया था।

‘छादिर ने अंतिम कोशिश की, बा जान !’

नहीं नहीं, उससे मैं नहीं डरता।

तुम चलो मेरे साथ, देखूँ कौन क्या कर रहा है? मामले को जड़ से ही रफ़ा-दफ़ा कर दूँगा।

कल सुबह चलते हैं।

हाँ, चलेंगे तो कल सुबह ही, लेकिन तुम्हारे साथ नहीं जाऊँगा। और तुम्हारी उस अदालत में भी नहीं जाऊँगा। पहले तो मैं मामला करने वाले से मिलूँगा।

उसके पास जाकर क्या करोगे ?

उसकी आँखों में आँख डालकर पूछूँगा। उसके ईमान से पूछूँगा। अपने घर के गोपाट से जाते हुए उसको बिना सही²⁰⁶ कराए रुपए दिए थे। वह बात आज उसे याद है कि नहीं !

अगर वह कहे, नहीं याद है तो !

वह ऐसा नहीं कर सकेगा। मुझे कोई मुहरी (मुहर्रिर) नहीं चाहिए। मैं अपनी इन

206. हस्ताक्षर

आँखों से, अल्लाह के गजब से उसको जलाकर खाक कर दूँगा। क्या औकात है उसकी ! दिन-दहाड़े ऐसी डकैती !

बेटा हताश होकर बोला, अब्बा जान, तुम सचमुच हमेशा कच्चा काम करते हो।

उससे भी अधिक हताश मोहरी था। बोला- 'देहात में रहते हो, बुद्धि भी तुम्हारी पूरी तरह देहाती है। तुम्हें खामखा उपदेश देने से कोई फायदा नहीं। तुम्हें जो कहना है, जाओ धान-खेत में जाकर बोलो। रहो मैदानों में गाय-बैलों के साथ। बुद्धि भी गाय-बैलों जैसी हो गई है।'

इस तरह सीधे बुद्धि पर व्यंग्य-बाण चलते देख पिता-पुत्र दोनों तिलमिला उठे थे।

ढेरों लोग आते हैं मेरे पास, मामलों मुकदमों में राय-मशविरा लेने, तुम साले क्या किसी दिन आए ? इतनी जमीन-जायदाद, खेत-खलिहान हैं तुम्हारे। जीवन में दो-चार मामले नहीं किए तो किस काम की तुम्हारी दौलत ! तुम्हारी जान तो पूंटी मछली जैसी है। मामले के नाम से ही काँप उठे। नहीं तो देखते, मैं मागन सरकार की खटिया कैसे खड़ी करता।

बेवजह एक झगड़ा छिड़ गया था। मोहरी उनका क्रोध और बढ़ा रहा था। मोहरी नामक उस जीव को कादिर फूटी आँख नहीं देखना चाहता था, यह बात स्पष्ट करने के इरादे से उसने जो कुछ कहा, उससे उसके आत्मसम्मान को गहरी चोट लगी और वह बोला- मैं शरीफ़ लोगों के गाँव में रहता हूँ। मेरा उठना-बैठना बाबू, जमींदारों के साथ है। किसी को कैसे बताऊँ कि मैंने तुम जैसे खेतिहरों से रिश्तेदारी की है।

बाप की तरफ़ से इस बार छादिर ने उत्तर दिया- गरीब के घर में हाथी के पाँव पड़ें, ये हम लोग नहीं चाहते।

बाप को इस तरह बैठे-बैठे अपमानित होते देख खुशी का हृदय-विदीर्ण होने लगा था। उसने दरवाजे की आड़ से सबको सुनाते हुए कह ही दिया- इस तरह अपमानित होने के लिए तुमने पैर ही क्यों रखे इस गाँव में बाजी !

मोहरी ने कहा- उससे गलती हो गई। वह अभी चला जाएगा। आज किसी के भी घर रह जाएगा। लेकिन इस खेतिहर के घर में नहीं रहेगा।

कादिर मोहरी से भी अधिक गुस्से में था, बोला- आधी रात को तुम्हें जाने की सूझी है। हिम्मत है तो जाके दिखाओ जरा !

मोहरी जाने के लिए उठ ही रहा था कि कादिर ने चटपट दो लाठियाँ निकाल लीं। यह देख मोहरी भौंक्का हो गया। कादिर ने एक लाठी खुद पकड़ी और दूसरी रमू के हाथ में पकड़ाते हुए कहा- 'ले लाठी साले, अपने नाना को मार !'

गोबेचारा²⁰⁷ रमू हाथ में लाठी लिए कभी कादिर तो कभी मोहरी के माथे की ओर देख रहा था। लाठी किसको मारनी है, यह बात उसकी समझ में ही नहीं आई। सो वह ऊहापोह में था।

उसी दिन शाम को तितास के किनारे वाले रास्ते से होते हुए मागन सरकार मामला ठोंककर ब्राह्मणबाड़िया से घर लौट रहा था। सूरज अलसा रहा था। तितास के इस पार खेतों, मैदानों के बाद बसे गाँव के चित्र धुंधलाने लगे थे। सूरज डूबने वाला था। पश्चिमी आकाश लाल होने लगा था और वह अपनी लालिमा पिचकारियों में भरकर बादलों के टुकड़ों पर छिड़क रहा था। ठण्डी हवा बह रही थी। चारों ओर एक शान्त भाव बना हुआ था। पास ही उसका घर पड़ता था। गाय-बछड़े चरागाहों से धीरे-धीरे अपनी मौज में घर लौट रहे थे, उन्हें चरवाहों के इशारों की जरूरत नहीं थी। बारीयों ओर तटरेखा थी तो दारियों ओर बेड़ा। लोगों ने अपने खेतों में फसल बोई हुई थी और उसकी सुरक्षा के लिए बेड़ा लगा रखा था। उसके गले में पड़ी रेशमी चादर हवा से उड़-उड़कर बेड़े की खपच्चियों में उलझ रही थी। पाँव के चमकीले जूतों में राह की धूल लिपट रही थी। सब-कुछ बचाते हुए पैदल चलते मागन सरकार के मन में नाना प्रकार की चिन्ताएँ आ-जा रही थीं। इस मैदान में भी उसकी काफ़ी जमीनें थीं। कुछ का हिसाब तो बहुत बार वह खुद भी नहीं रख पाता। बीच-बीच में गड़बड़ हो जाती थी। उसने काफ़ी जमीन इकट्ठी की हुई थी। लेकिन कैसे, यह बात जलती आग की तरह आज उसकी आँखों के सामने धू-धू कर स्पष्ट हो रही थी। इसी समय रास्ते में उसकी मुलाकार रशीद मोड़ल से हो गई। वह खाली पाँव, लुंगी और फतुआ²⁰⁸ पहने हुए था। उम्र मागन सरकार के बराबर ही रही होगी।

रशीद भाई !

क्या है ?

दोलगोबिन्द साव की खबर तो सुनी होगी !

इधर तो नहीं सुनी। कलिकाता से उसके भतीजे के नाम एक चिट्ठी जरूर आई है।

सुना है, हालत खराब है।

हाँ बिल्कुल ! अब गए कि तब गए जैसी हालत है।

क्या होगा दादा !

207. गाय की तरह निरीह

208. आधी बांह का कुर्ता

और क्या होगा ! मरेंगे ।

मरकर क्या होगा !

रशीद हँसा, लेकिन यह नहीं जान पाया कि मागन की एक कमजोर दीर्घ श्वास तितास की छोटी लहरों की तरह हवा में एक लहर छोड़ गई ।

दूसरे दिन सुबह कादिर मियाँ ने आकर पुकारा ।

कादिर की जलती आँखें देख मागन सचमुच घबरा गया था । उसकी दोनों आँखें जवा फूल की तरह सुर्ख थीं । शायद उसे रातभर नींद नहीं आई थी । केवल यह सोचता रहा होगा- या अल्लाह, इन्सान इतना बेईमान क्यों होता है? क्यों वह एक-दूसरे पर तनिक भी विश्वास नहीं कर पाता? कहते तो हैं इन्सान खुदा की सबसे बड़ी नेमत है, फिर भी वह ऐसी ज़लील हरकतें क्यों करता है? इधर मागन भी सारी रात नहीं सोया था । रात को घर लौटते ही उसे खबर मिल गई थी कि दोलगोबिन्द साहा दुनिया छोड़ गए । भतीजे के नाम टेलीग्राम आया था । हाय दोलगोबिन्द ! तुम, मैं और रशीद भाई एक ही नाव के नाविक थे । एक ही नौकरी में घूस खाकर पैसे कमाए । एक ही तरीके से लोगों को कर्ज के जाल में फँसा कहीं उनकी जगह-जमीनें हथियाई तो कहीं कर्जदारों की जमीनें नीलाम करवाईं । आज तुम मर गए । मैं भी तो मर ही जाऊँगा । हाय दोलगोबिन्द तुम मर गए !

कादिर यह देखकर अवाक रह गया । मागन की आँखें भी संध्याकालीन आकाश की तरह लाल थीं ।

कादिर ने कहा कुछ नहीं । चुपचाप उसके सामने जा खड़ा हुआ । मागन सिहर उठा था । दोहाई तुम्हारी कादिर मियाँ ! बस एक बार केवल एक बार मुझे माफ़ कर दो ! जीवन में मैंने बहुतों का सर्वनाश किया । अब किसी और का नाश नहीं करूँगा । यह मेरा अंतिम प्रयास है । बस तुम मेरे हाथों अपना सर्वनाश हो जाने दो । रोकना मत । प्रतिवाद भी मत करना । बस सह लेना । ये मेरा अंतिम काम है । देखना, तुमको ठगने के बाद मैं एकदम अच्छा आदमी बन जाऊँगा । और किसी को कभी नहीं ठगूँगा । बस अंतिम बार मुझे तुम्हें ठग लेने दो ।

कादिर हतप्रभ रह गया था । बिना कुछ समझे बोला- ठीक है, ऐसा ही होगा मागन बाबू, मैं सह लूँगा तुमको डरने की कोई जरूरत नहीं । तुम निर्भय होकर मामला चलाओ । मैं न कोई गवाह खड़ा करूँगा, न सबूत दिखाऊँगा । चुपचाप सब मान लूँगा । और तुम्हारी डिग्री होने पर अगर मेरे पास नकद रुपए नहीं रहे तो जमीन बेचकर तुम्हारा कर्ज चुकाऊँगा, लेकिन इसके बाद तुम नेक इन्सान जरूर बन जाना ।

दूसरे दिन खबर मिली कि मागन सरकार मर गया । बड़ी वीभत्स थी उसकी

मृत्यु। नारियल के पेड़ पर चढ़कर उसने छलांग लगा दी थी। इस खबर ने कादिर के मन को एक अजीब सी उदासी से भर दिया था।

इसलिए जब छादिर उसके सामने एक प्रस्ताव लेकर हाजिर हुआ कि वह इस बार सावन में होने वाली नौका-दौड़ में भाग लेकर रहेगा। नई नाव बनाने के लिए उसे रुपए चाहिए, तो तुरत कादिर ने अपनी झाँपी²⁰⁹ खोलकर चार-सौ रुपए उसके हाथों में ठूस दिए। बोला- ले, नाव बना, घर बना, पानी में फेंक, जो मन आए सो कर !

इतनी आसानी से काम होते देख छादिर की खुशी का ठिकाना नहीं रहा। उसके काठ खरीदने के प्रसंग पर एक दिन घर में बातचीत हुई। छादिर बोला- यह तो एक परस्ताव (किस्सा) है।

किस्से का आभास पाकर रमू उसकी गोद में चढ़ बैठा और विस्मय भरी अदम्य जिज्ञासा से पिता के मुँह की ओर ताकने लगा।

दो मालो थे। कहते हैं उनके शरीर में हाथी-सा बल था। नाम भी उनके वैसे ही जबरदस्त थे। एक था इच्छाराम मालो और दूसरा था- ईश्वर मालो। वे नवीनागर गाँव के रहने वाले थे।

उन्होंने क्या किया, जानते हो। पहाड़ से जल की जो धारा बहती आ रही थी, उसके साथ-साथ कमर में काछी²¹⁰ बाँधकर उन्होंने दो मोटे-मोटे पेड़ों की जड़ें खींचकर नीचे उतारीं। उनके तनों की चीरकर तख्ते बनाए। अब उन्हीं तख्तों से छादिर की दौड़ की नाव बनेगी। उसे वह नौका-दौड़ प्रतियोगिता में उतारेगा और सभी नावों को पीछे छोड़ विजयी होकर मैडल पाएगा। पीतल की कलसी और एक बड़ा खस्सी²¹¹ भी मिलेगा।

‘बेहूदा, एकदम बेहूदा काम ! इसी की खातिर इतना हंगामा करके नाव गढ़ोगे।’ कादिर ने रुपए गिनकर देते-देते यही सवाल किया था।

छादिर ने कहा था- चीजों को तुमने बहुत छोटा करके देखा है। यह सोचो जीतने पर केवल तुम्हें, और मुझे ही गौरव नहीं मिलेगा, यह पूरे विरामपुर गाँव के लिए गौरव की बात होगी।

‘एक दिन हुल्लड़-हंगामा होगा, तुम जीतोगे, पीतल की कलसी मिलेगी। यह सब मैंने मान लिया। फिर इस नाव का क्या होगा ? किस काम में आएगी तुम्हारी यह डेढ़ हाथ की लिकलिकी नाव !’

209. पैसे रखने का सन्दूक।

210. धोतीनुमा रस्सी

211. बकरा।

क्यों, बहुत से कामों में आएगी। बरसात के दिनों में जब कई महीने खेत-खलिहान पानी में डूबे रहते हैं, इस नाव को नाले में उतारकर अपनी गाय के लिए उधर से बोझा-भर घास काट कर ला सकेंगे।

घास काटने के लिए तो एक पतली डोंगी काफ़ी है।

चलो, घास काटने लिए पतली डोंगी काफ़ी हो सकती है लेकिन उससे नौका-दौड़ तो नहीं जीती जा सकती। इससे दोनों काम आसानी से सध जाएंगे।

नाले का पानी सूख जाने पर ये नाव भी तो अचल हो जाएगी। तब क्या होगा? कड़ी धूप में सूखकर फटती रहेगी।

फटेगी क्यों? खूटी गाड़कर उसे तितास के पानी में डुबाकर रखूंगा। उसके तल में ढेर सारे डाल-पत्ते भर दूंगा। जिससे मछलियाँ आकर इसके आस-पास इकट्ठी हो जाएँगी। तब समय-समय पर पानी में छोटा जाल फेंककर डाला भर-भर मछलियाँ घर लाऊंगा।

बेटे की बुद्धि देख कादिर अवाक हो गया था। बोला- मियाँ, बात बनाने में तो तुम्हें महारत हासिल है।

रमू ने कई रातों तक एक सपना देखा कि किस्से वाले दोनों मालो युवक कमर में काँछा बांध नदी-नाले पार करते हुए उसके बाप के लिए काठ ला रहे हैं। एक दिन तितास के किनारे जाकर देखा, दूर से एक काठ का कुन्दा तैरता चला आ रहा था। देखने में भले जैसा। उसमें एक छोटी-सी पाल थी। वे दो लोग भी दिख रहे थे, जो कुन्दे को दोनों ओर से मोटी लग्गी से धकेल रहे थे। ये थे परीकथा के इच्छाराम मालो और ईश्वर मालो। पहाड़-पर्वत लाँघ, नदी नाले पार कर दूर-दूरान्तर के देश से हृदय चीरकर जैसे वे एक बोझ कहानियाँ लेकर आ रहे थे। छोटी-सी पाल के भीतर दोनों की संक्षिप्त-सी गृहस्थी थी। दोनों की देह चिकनी काली थी। वे केवल गमछे बाँधे थे। शुशुक मछली की तरह जल से निकल वे काठ के कुन्दे को अपनी लग्गी से ठेल रहे थे। इस कुन्दे को बेचकर फिर वे शुशुक की तरह डुबकी लगाएंगे और नदी के तल में जाएंगे। उनके जाने के बाद आने का कोई चिह्न बाहरी दुनिया के लोग नहीं देख पाएंगे।

छादिर के साथ कुछ सामान्य बातें कर थोड़ी ही देर में उन्होंने उस बड़े कुन्दे को उसके सुपुर्द कर दिया और आगे बढ़ गए। छादिर कह रहा था, मालो के बेटे आज दोपहर यहीं आराम करो, रहो, खाओ, कल सुबह-सुबह उठकर और कुन्दे लाना। फिर उन्हें ठेलना।

उन्होंने केवल एक बात कही- नहीं नहीं शेख-साहब, हम यहाँ नहीं रुकेंगे। चटपट गोकनघाट पहुंच जाएंगे। वहीं खाना-पकाना करेंगे। यह कहकर उन्होंने लग्गी

ठेलनी शुरू कर दी। उनके चेहरे पर जितनी व्यस्तता थी, चाल में उतना ही धीरज। किस आदिम युग का है यह यान, जिसका आज के किसी द्रुतगामी वाहन से कोई परिचय ही नहीं। इतना धीरे चल रहा है पर रुककर समय बरबाद नहीं करना चाहता। रमू सोच रहा था अगर हिम्मत करके एक बार इनके पास जाया जा सकता तो इनसे अनेक बातों की जानकारी मिल जाती। लेकिन वे धीरे-धीरे चले जा रहे थे। इतने धीरे कि पैदल चलने वाला व्यक्ति भी इन्हें पीछे छोड़ आगे निकल जाता। धीरे सही पर उनकी चाल गम्भीर थी। द्रुत चाल में वह गाम्भीर्य कहाँ।

रमू ने यह कहकर अपने मन को समझाया, जो दूर-दूरान्तर तक खबरें पहुंचाते फिरते हैं, वे एक जगह देर तक नहीं रुकते। वे ऐसे ही धीर हैं, दृढ़ गति से पीछे न देख बिना किसी माया-मोह के चलते जाते हैं। दूसरे दिन सुबह एक बहुत बड़ा करात²¹² कन्धे पर रखे हुए चार कराती आए। तितास के किनारे की बिना जुती जमीन पर करात को रखकर टोले के कई लोगों की मदद से विशाल पेड़ के तने को रखा गया। दो करातियों ने चानचुन-चानचुन करते हुए आरे से कुन्दे को चीरना शुरू किया। दो दिन में काठ चीरने का काम खत्म हुआ। छोटे-छोटे तख्ते एक के ऊपर एक सजाकर करातियों ने मेहनताना लिया और विदा हुए। इसके बाद रमू की उम्र के बहुत-से बच्चे काठ के टुकड़ों पर उछलते-कूदते खेल में मस्त हो गए। बाप ने एक अद्भुत मजेदार काम शुरू किया था। इस गाँव में जो काम कभी किसी ने नहीं किया। वैसे ही एक काम में हाथ डाला है। रमू मन ही मन यह सब सोच रहा था।

फिर एक दिन देखा गया तितास के किनारे एक अस्थाई घर बन गया था। कुछ दिन बाद उसमें रहने वाले छोटे-छोटे काठ के बक्से सिर पर उठाए हाजिर हो गए। ये संख्या में चार बढ़ई थे। इनका काम नाव गढ़ना था। इनके साथ नाव बनाने के तरह तरह के औजार थे। उन औजारों के साथ उन्होंने उस अस्थाई घर में रहना शुरू किया। आगे-पीछे की पालें ठीक कर जिस दिन उन्हें नाव में टांगा गया, उस दिन रमू के आश्चर्य की सीमा न रही। अभी तो केवल नाव का आधार रखा गया था और वह आकाश जितनी ऊँची दिखने लगी थी। रमू की बाल-दृष्टि उसे मापने में असमर्थ थी, लेकिन दोनों बढ़ई ऊँचाई पर चढ़कर हथौड़ी से एक के बाद एक कीलें ठोकते जा रहे थे। नाप-जोखकर आधार ठीक करने में कई दिन लगे। फिर पूरे दम से काम शुरू हुआ। तख्ते पर गाव लगा, उसे आग में सेंक और काटकर जोड़ा गया तथा कब्जे लगा-लगाकर हथौड़े से ठोका गया। डुम-डुम टाकुर-टाकुर डुम आवाज होती रही। देखते-

212. लकड़ी चीरने का आरा

देखते नाव में अस्थि-मांस भी नजर आने लगा। पर अभी नौका निर्माण चल रहा था। छादिर ने कहा- 'रमू बेटा, एक काम करो, मैं खेत पर जा रहा हूँ, तुम बढई दादा के लिए तमाखू सुलगा देना, ठीक है।'

काम मिलते ही रमू उसमें पूरी तरह डूब गया, उसने घर आना बन्द कर दिया। बस दोपहर में जब मिस्त्री लोग काम रोककर खाना-पकाना शुरू करते थे, तब उसे भी भूख-सी महसूस होती थी और वह घर आता था, लेकिन उसका मन तो कारीगरों की उन्मुक्त छोटी दुनिया में बसा रहता। एक हथौड़ी और कुछ कीलों की करामात से कैसी सुन्दर दुबली-पतली नाव बनती जा रही थी। तभी एक दिन रमू के भविष्य को लेकर बाप बेटे में बहस हो गई। छादिर ने कहा, किताब दिलाकर उसे मकतब भेजूंगा।

कादिर ने हंसते हुए कहा- नहीं, छड़ी लेकर गाँव चराने मैदानों में भेजूंगा। छादिर ने कहा, गाय चराने भेजा तो वह भी मेरी तरह मूर्ख किसान ही रह जाएगा। दुनिया की हाल-हकीकत से परिचित न हो जाएगा, वह कभी बड़ा नहीं हो जाएगा। बच्चा ही बना रहेगा।

और 'इस्कूल' भेजने पर तेरे ससुर की तरह मोहरी बनेगा। सास के बिछौने पर बहू और बहू के बिछौने पर सास को सुलवा, दूर सरककर घूस के पैसे गिनेगा। नहीं जरूरत है मुझे ऐसी पढ़ाई-लिखाई सिखाने की।

रमू की माँ को गुस्सा आ गया। बोली- 'सारा दोष मेरे बाप का है। मेरा बाप घूस खाता है, मेरा बाप चोरी करता है, मेरा बाप फलना करता है, मेरा बाप ढिमका करता है, और क्या-क्या करता है मेरा बाप..और क्या क्या!'

छादिर ने उसे डाँटकर बीच में ही रोकना चाहा, पर वह रुकी नहीं। बोली- मेरे बाप के अगर इतने ही दोष हैं, तो जान-बूझकर ऐसे चोर की बेटि को अपने घर क्यों लाए। और अगर ले ही आए, तो खदेड़ क्यों नहीं दिया?

खदेड़ दिया होता तो और कहीं जाकर ऐसे सुख से रह पाती!

आहा रे! कितना सुख मिल रहा है मुझे! मैं ही जानती हूँ।

विषमुखी तू रुकेगी, या भोंपू बजाती ही रहेगी।

क्यों रुकूँ मैं विषमुखी! मेरा बाप चोर! मैं अब चुप नहीं रहूँगी।

गुस्से के मारे छादिर ने उसे मारने के लिए हाथ उठाया पर कादिर ने उसे खींचकर बैठा दिया।

खुशी में पहली बार एक विद्रोह की मूर्ति दिखाई पड़ी थी। कादिर के मन में एक खोंच-सी लगी। मोहरी की बेटि ऊँची आवाज में बोलती रही। चोर हो या साव हो, जो भी हो वह, मैं उसकी बेटि हूँ। बाप होकर भी उसने मुझे माँ की तरह पाला। नहलाया-धुलाया, खिलाया-पिलाया। हजार दोष हों, है तो मेरा बाप! चोर हो तो भी वह मेरा ही

बाप कहलाएगा, किसी और का नहीं। मैं मरूँ तो इसी बाप का दिल टूटेगा, और किसी बाप का नहीं !

‘चुप रह ! एक चोर की बेटी के मुँह से इतनी बड़ी-बड़ी बातें ! किसी और का दिल क्या नहीं टूटेगा !’ कहते हुए कादिर की आँखें छलछला आई थीं। जमीला को यादकर उसका हृदय वेदना से टन-टन करने लगा। मन ही मन बोला- मोहरी में जितने भी दोष क्यों न हों, उससे तो अधिक दोषी हम लोग हैं, जो इस असहाय औरत को एक साथ चोट पहुँचा रहे हैं।

हम चाहे जितने दोष करने वाले हों, उनसे अधिक दोष का आरोप कर यदि हमारी जमीला को उसके घरवाले चोट पहुँचाएँ तो जमीला क्या प्राणहीन पत्थर की तरह चुप लगाए सुनती रहेगी और आंसू बहाती रहेगी। वह क्या थोड़ा भी प्रतिवाद नहीं करेगी। अगर प्रतिवाद करती तो वह बच जाती। उसका मन हल्का हो जाता। बिना प्रतिवाद किए वह निरुपाय बनी सब-कुछ सहती जाएगी और तिल-तिल मरती रहेगी। उस समय उसे सांत्वना के दो बोल कौन सुनाएगा भला ? जमीला, वह भी तो माँ पर गई है। जैसे खुशी मोहरी का संचित धन है, जमीला भी वैसे ही कादिर मियाँ का संचित कोष है। बाप के रूप में मोहरी और कादिर में क्या फर्क है। बस इतना ही कि मोहरी ने फ़िर से शादी कर ली और कादिर ने अपने बेटे की ओर देखते हुए ऐसा नहीं किया। दूसरी शादी के बाद भी जब मोहरी अपनी बेटी को नहीं भुला पाया, तब कादिर जमीला को कैसे भुला पाएगा, जिसने बेटे और बेटी पर अपनी सारी ममता लुटा दी और उनके लिए दूसरा ब्याह नहीं किया। लेकिन जमीला को वह कितना याद रख पाता है। पिछले अगहन में केवल दो दिन के लिए आई थी। अब कितने दिन बीत चुके हैं। अगर भुला नहीं दिया होता तो इस बीच वह कम से कम दो बार बुलाई गई होती। पर कादिर अपनी इतनी दुलारी जमीला को भूल कर कैसे रह सकता था, कैसे ? क्या उसके प्रेम में साझीदार बनी खुशी के कारण ! जिसने आते ही कादिर के दिल की उस जगह पर कब्जा कर लिया जो उसके मन में जमीला के लिए थी। यदि खुशी ने अधिकार नहीं जमा लिया होता तो बूढ़ा कादिर क्या पराई लड़की को अपनी मानकर जिन्दा रह पाता !

रमू की माँ खुशी अब भी गजर-गजर किए जा रही थी। लोग ठीक ही कहते थे-ससुराल तो पराया घर ही है। जिस घर में बाप को चोर कहा जाता है और बेटी को विषमुखी, वह क्या अपना घर हो सकता है। क्या उसे पराया घर नहीं कहना चाहिए।

हाँ हाँ, पराया घर ! देख तो मोहरी की बेटी क्या बोल रही है ? रात रहते ही उठकर बीस पशुओं का अस्तबल साफ़ करती है। खली-भूसी देती है। झाड़ू उठाकर इतना बड़ा घर-द्वार साफ़ करती है। कलश पर कलश पानी भरती है। खाना पकाती है,

धान उबालती है, कौए उड़ाती है। आँगन भर धान धूप में डाल उसे उलट-पलट कर सुखाती है। पशुओं का चारा सूखने को रखती है। सोला²¹³ आदि सुखाती है। पाट के गड्ढर चूहे काट देते हैं, उनकी देखभाल करती है। ढेर सारा धान कूटती है। फिर खाना बनाती है। इस तरह के हजारों काम उसके जिम्मे हैं। पराए घर में क्या कोई कभी इतना काम कर सकता है। अपनी देह की चिन्ता त्याग जिस घर के लिए इतना कुछ कर रही है, उसे ये पराया घर बता रही है। बोलना था बोल दिया। बोलने का तो कोई भाड़ा-किराया नहीं लगता।

अब खुशी की आँखों में आँसुओं का वेग दुगुना हो गया था। वह फफककर रो पड़ी। बड़ी देर रोने के बाद उसे लगा, इस तरह के रुदन में भी बड़ा सुख है।

अन्त में कादिर बोला- भेज, अपने बेटे को मकतब भेज। लेकिन एक बात ध्यान रखना, यदि इसने झूठ बोलना सीखा, जालसाजी, जुआ-चोरी सीखी, यदि दूसरों को ठगना सीखा, तब इस बच्चे से तो मैं कुछ नहीं कहूँगा। लेकिन एक बात कान खोलकर सुन लो छादिर मियाँ, मैं तुम्हारा माथा फोड़कर रहूँगा।

दूसरे दिन रमू ने नई लुंगी और कुर्ता पहना, नई टोपी लगाई और मकतब में गया। पढ़कर लौटने के बाद माँ के हाथ से खाते-खाते उसे हठात कुछ याद आ गया। उन चार लोगों को तो मैंने अपनी नई लुंगी, गंजी और टोपी दिखाई ही नहीं। मकतब के साथियों ने देखा और वे चारों नहीं देखेंगे!

नई पोशाक में सजे-धजे रमू को जब उन लोगों ने अपने लिए तमाखू सजाते देखा तो उनमें से एक को बड़ा मोह आया। बोला- तू रहने दे मुंशी के बेटे! तुझे टिकिया की कालिख से हाथ काले करने की जरूरत नहीं।

शाम उतर रही थी। घाट का रास्ता अभी दूर था। लाल-काली डोरिया साड़ी पहने गृहस्थ बहू-बेटियाँ इसी रास्ते से होकर तितास के घाट पर जा रही थीं। किसी के हाथ में चावल की डलिया थी तो किसी के कन्धे पर कलसी। किसी किसी के पावों में चाँदी की पायल थी, उन्हें देखकर कुछ बढ़ई गाने लगे-

‘सुबह-शाम खाते हैं गरीब लोग,
 देर रात भोजन करते हैं ऊँचे,
 अमीर लोग, दीवान कटू मियाँ की माँ रोती है,
 हाय रे कटू मियाँ की माँ।’²¹⁴

213. थर्मोकॉल

214. छोटी लोकेर खाना-पीना रे/बिहाने बैकाले बड़ो लोकेखाना-पीना/रात्र निशा काले रे/हाय कांदे कांदे रे देवान कटू मियार माय।

बढ़इयों में जो उम्र में सबसे बड़े थे, उन्होंने गायक को रोका- 'अरे भागमान, इनको सुनाकर इस तरह गाया तो धड़ पर सिर लेकर घर नहीं लौट पाओगे।'

ठीक है, सिर यहीं रखकर चले जाएंगे। रमू मन ही मन सोच रहा था, कोई कहीं और अपना सिर रखकर कैसे जा सकता है! उसे कुछ समझ में नहीं आया था। लेकिन गाने का स्वर उसे बहुत अच्छा लग रहा था।

रुक क्यों गए, गाओ न अपना गाना! बड़े बढ़ई ने उसकी ओर प्रसन्न नजर से देखा और कहा- दोपहर में आओगे तो मैं गाना सुना सकूंगा। सुबह-शाम आए तो नहीं सुना सकूंगा।

दोपहर में मैं पढ़ने जाता हूँ।

तब गीत सुनने की जरूरत नहीं।

जरूरत नहीं क्यों?

अगर पढ़ना हो तो गीत सुनने की जरूरत नहीं। और अगर गीत सुनना हो तो पढ़ने की जरूरत नहीं। ऐसा क्यों? तब तो पढ़ना ही अच्छा! गाना सुनने की जरूरत नहीं। लेकिन शुक्रवार को मकतब की छुट्टी रहती है।

दोपहर में रमू ने जल्दी-जल्दी लुंगी बांधी, टोपी लगाई और दौड़कर मिस्त्रियों के पास हाजिर हो गया। जल्दी में वह गंजी पहनना भूल ही गया था। पर बड़े मिस्त्री ने उसे निराश करते हुए बताया कि आज वे बहुत व्यस्त हैं गाने की फुरसत नहीं। यह भी बोला कि घर जाकर कह दो, आजकल हम दूध गर्म करने का झमेला नहीं संभाल पाते। क्योंकि समय की कमी है। घर से ही दूध गर्म कर चिवड़ा और गुड़ के साथ भिजवा दिया जाए।

रमू की माँ ने दूध उबालने की कढ़ाई को झामा रगड़कर दो-तीन बार माँजा और दूध उबाला। फिर एक बड़े लोटे की गर्दन में फन्दा लगाकर उसमें दूध भरा और रमू के हाथों भिजवा दिया। माथे पर चिवड़े और गुड़ का बोझ, हाथ में दूध का लोटा, इस वेश में रमू को देख मिस्त्री लोग अपनी हँसी नहीं रोक पाए।

फिर एक दिन देखते ही देखते पूरी नाव बनकर तैयार हो गई। अब केवल उसके तले की तरफ पॉलिश करना बाकी था। इस काम को तीनों छोटे मिस्त्रियों पर छोड़ बड़े मिस्त्री ने हाथ में हुक्का उठाया और आहिस्ता-आहिस्ता एक गीत गाना शुरू किया-

'हाथ में लाठी

और कन्धे पर छाता लेकर

बुरुज दीर्घ प्रवास पर चल पड़ा।' 215

गीत के अनुसार बुरुज ने यात्रा शुरू की थी पर राह पर चलते-चलते थक गया। चैत या बैशाख की तपती धूप में उसे भयंकर प्यास लग गई। वह पानी की तलाश में इधर-उधर देखने लगा। शायद कोई नदी या तालाब नजर आ जाए। सहसा उसे एक घर दिखा। लिपा-पुता, द्वार पर चंदन के छींटे; जरूर किसी ब्राह्मण का होगा। खुद ब्राह्मण होने के नाते एक ब्राह्मण का घर पहचानने में बुरुज को देर नहीं लगी। इतना परिष्कार-परिच्छन्न (साफ़-सुथरा) घर निस्संदेह ब्राह्मण का ही होगा। बुरुज ने कदम आगे बढ़ाकर आवाज दी- 'अरे भाई, गृहिणी घर में हो तो पानी ले आओ, बहुत प्यास लगी है। प्रवासी प्यास से मरा जा रहा है' 216 उसकी पुकार बेकार नहीं गई।

'दाहिने हाथ में जल की कलसी,
बायें में पान का बीड़ा,
कन्या चली पानी पिलाने।' 217

प्यास से व्याकुल बुरुज पानी पीकर तृप्त हो गया था। उसने कन्या से पूछा-
तुम्हारी जाति क्या है?

हम लोग गन्ध भूईं माली (एक तथाकथित नीची जाति के माली) हैं।' 218

बुरुज की जात चली गई। हाय हाय, ब्राह्मण बुरुज की जाति चली गई! पहले परिचय बिना पूछे जिसके हाथों से उसने पानी पिया, वह तो ब्राह्मण की बेटी नहीं। वह तो नीच जाति की औरत निकली! बुरुज पछाड़ खा-खा रोता है, छँछाड़ खा खा के रोता है। भूईंमाली के घर पी लिया पानी, मेरी जाति चली गई! बुरुज की जाति चली गई। अब वह क्या करेगा? न देश गया न परदेश, जहाँ जाति-भ्रष्ट हुआ, वहीं रह गया और संगी साथियों से खबर भिजवा दी-

'हे साथी संगियो,
माँ बाप तक मेरी खबर पहुँचा देना।
भूईंमालियों के घर मेरी जाति चली गई।' 219

अनजाने में एक व्यक्ति की जाति चले जाने की कथा ने रमू को बड़ा दुःख

215. हस्तेते लइया लाठी/कांधे ते फेलिया छाती/जाय बुरुज दीधल परवासे।

216. घरे आछे घरनिया भाई! जल नी आछे, खाइते चाई, परवासी तियासे लेगे मरि!

217. दान हस्ते जलेर झारी/बाम हस्ते पानेर खाड़ी/जाए कन्या जलपान कराते।

218. तुमि कौन जातेर माइया/गन्धे अमरा गन्ध भूईं माली।

219. संगेर जत संगिया भाई/कइयो खबर माँ बापेर ठाँई/जाति गेलो भूईं मालियार घरे।

पहुँचाया। उसने तो जीवन में अब तक किसी ब्राह्मण को देखा नहीं था। लेकिन उसके बारे में सुनकर उसे लगता था कि उनका सिर आम लोगों की तुलना में जरूर ऊँचा होता होगा। लोग कहते हैं कि वे मन्त्र पढ़ते हैं। अनेक मोटी-मोटी किताबें पढ़ डालते हैं और माली तो, जैसा उसने सुना है, हिन्दुओं के घरों में विवाह के अवसरों पर कोला-गाछ (केले का छोटा पौधा) लगाया करते हैं। ये इनका कैसा काम है? बताइये, इनके घर पानी पीकर एक पण्डित विद्वान की जात चली गई। ब्राह्मणत्व खोकर वह माली बन गया और उन्हीं के घर बस गया। विवाह-बाड़ी जाकर वह मन्त्र-पाठ करेगा या मोटी-मोटी किताबें कंठस्थ करेगा- नहीं! अब तो वह विवाह-बाड़ियों में जाएगा और कोला-गाछ लगाएगा। इस तुच्छ काम के दौरान शायद अब कोई उस पर नजर भी न डाले। पर जब उसकी जाति इतनी बड़ी थी तो एक छोटी-सी बात पर भ्रष्ट क्यों हो गई। यह तो सांघातिक बात हो गई। रमू ने सोचा और पूछ बैठा-

‘प्यास लगी, एक गिलास पानी पी लिया और जाति चली गई?’

‘हाँ, चली गई।’

‘लेकिन क्यों, कैसे?’

क्यों और कैसे तो नहीं जानता। बस चली गई।

अच्छा, जाति चली गई, इस बात को बुरुज ने कैसे जाना?

बड़ा मिस्त्री चुप हो गया। छोटे मिस्त्रियों में से एक ने चिढ़कर कहा- यह किसान का पूत तो बड़ा तेज है भाई! फिरता है छड़ी लेकर गायों के पीछे-पीछे, और बात करता है इतनी पेंचदार!

उसकी बात पर ध्यान न दे रमू ने फिर पूछा- मेरे हाथ का पानी पीने से तुम्हारी जात चली जाएगी!

नहीं!

मेरी माँ के हाथ से पानी पीने पर!

नहीं! मिस्त्री ने कहा।

मेरे बाप के हाथ से, नाना के हाथ से पीओ तो!

बड़े टेढ़े प्रश्न थे, मिस्त्री से चटपट इनका उत्तर देते नहीं बना। बस उसने जोर से कहा- नहीं, नहीं, नहीं!

क्यों नहीं?

तुम लोगों से हमारी जान-पहचान हो गई है, इसलिए। मिस्त्री ने पीछा छुड़ाने की कोशिश की।

जान-पहचान हो जाने पर जाति नहीं जाती!

नहीं !

तब अगर बुरुज ठाकुर ने पहले माली की छेमड़ी से जान-पहचान कर ली होती, इसके बाद पानी पीते, तब तो उनकी जाति नहीं जाती ना !

बड़े मिस्त्री को कोई जवाब नहीं सूझा।

उन्हें चुप देख सहसा रमू तालियाँ बजा-बजाकर हँसने लगा।

बड़ा मिस्त्री चिढ़ गया था। बोला- हँसा क्यों ?

हँसी की एक बात याद आ गई। अगर मेरे हाथ का छुआ पानी पीने पर तुम्हारी जात चली जाती तो अच्छा होता।

बड़े मिस्त्री की आँखें फैल गईं। उसने पूछा- कैसे ?

‘तब बुरुज ठाकुर की तरह तुम लोगों को भी हमारे घर पर रह जाना पड़ता।’

बच्चे से तर्क में पराजित होकर बड़े मिस्त्री ने अधिक कुछ बोलने के बजाय काम में मन लगाना ठीक समझा।

जिस दिन नाव गढ़ने का काम पूरा हुआ, मिस्त्रियों की खुशी देखने लायक थी। उनकी इतने दिनों की मेहनत और कोशिश आज सफल जो हो गई थी। उन्होंने एक ऐसी चीज बना डाली थी जो बरसों जल के ऊपर तैरती रहेगी। कितने ही लोग उस पर चढ़ेंगे, बैठेंगे, नदी पार करेंगे और एक देश से दूसरे देश जाएंगे। युवक अनेक तरह की दौड़ों में शामिल होकर बख्शीश पाएंगे और गर्व से प्रमाण-पत्र ग्रहण करेंगे। लेकिन क्या कभी कोई जानने की कोशिश भी करेगा कि यह नाव किसने बनाई थी। किनकी बुद्धि और मेहनत के सहारे तिल-तिलकर यह चीज बनी थी। और नाव ! क्या यह भी इन चार लोगों को भूल जाएगी ? नहीं ! बिल्कुल नहीं !

जो भी हो, नाव पूरी कर उनकी खुशी सीमा-तोड़कर उमड़ पड़ी थी। गाँव के लोग इकट्ठे हो गए थे और उन चारों के साथ कदम से कदम मिलाकर नाच रहे थे, तालियाँ बजा रहे थे और गा रहे थे-

‘सुनो नगर के लोगो,

नाव गढ़ने में कितना सुख है।’²²⁰

नाव गढ़ने का काम खत्म कर मिस्त्रियों ने अपना हिसाब किया, पावना लिया। फिर एक दिन उन्होंने साजो-सामान उठाया, घुटनों तक धोतियाँ समेटी, नाला पार किया और गोपाट के रास्ते धीरे-धीरे गाँव छोड़ गए। काफ़ी देर तक वे जाते हुए दीखते रहे। फिर कौओं जैसे छोटे-छोटे काले बिन्दुओं में बदल गए और अदृश्य हो गए।

220. सुनि नगरिया लोक/नाव गाइते कत सुख।

दो-तीन दिन बाद कहीं से तीन कारीगर और आए तथा दिन-रात एक कर तूलिका घुमा-घुमाकर नाव पर रंग करने में लग गए। उन्होंने दोनों ओर लताएँ, पत्ते, साँप और मयूर के साथ पहलवानों की एक जोड़ी भी आँक दी।

आखिर वह दिन भी आ गया जब नाव को पहली बार नदी में उतरना था। छादिर ने मुहल्ले भर के लोगों को इकट्ठा कर बताशे बाँटे थे। सबने नाव को छू-छूकर देखा। एक ने पूछा- मजबूत है। सबने एक स्वर में कहा- हाँ, है। इसके बाद सब बोले- चलो मिलकर जोर लगाएँ और इसे ठेलकर नदी में उतारें ताकि मृत काठ में प्राण-प्रतिष्ठा हो जाए। धक्के के जोर से नाव झटके से पानी में उतर गई थी। सब मिलकर नाव को तब तक धकेलते रहे, जब तक उसे तितास की बीच धारा में नहीं पहुँचा दिया। छोटी-छोटी लहरों की ताल पर नाव मानो नाचने लगी थी। रमू की आँखें भी उसी तरह आनन्द से नाच रही थीं। उसने ऐसी अपूर्व वस्तु पहले कभी नहीं देखी थी। जैसा रंग वैसी ही शोभा। धनुषाकार ऐसा लगता था मानो इन्द्रधनुष ही आकाश से टूटकर तितास के जल पर उल्टा होकर गिर पड़ा हो। भादों की पहली तारीख को कादिर के घर खूब धूमधाम हुई। सुबह होते-होते सैकड़ों किसान युवक उसके घर आ पहुँचे, उन्होंने रंग-बिरंगी पतवारें उठाई और नाव में अपनी-अपनी सीटों पर जा बैठे। रमू इधर-उधर घूम रहा था। अकेले में अपने बाप को पाकर पूछ बैठा- 'बा-जान, तुम लोग नाव दौड़ाने जा रहे हो, मुझे नहीं ले जाओगे?'

'अभी नाव-दौड़ कहाँ हो रही है। अभी तो खाली तालीम दिलाने जा रहा हूँ। वह तो दोपहर के बाद होगी।'

'तब तो मुझे ले जाओगे।'

हाँ-हाँ करते हुए छादिर तूफ़ान की गति से चला गया। नदी-नाले, ग्राम-ग्रामान्तर घूम कर तालीम देने पर देखा गया, नाव जितनी अच्छी बनी थी, उसकी चाल भी वैसी ही थी। सबके एक साथ पतवार चलाने पर साँप की तरह हिस्स हिस्स करती चलती थी। किसी शिकारी के तीर की तरह साँ-साँ करती चलती थी। नदी की धारा की तरह कल-कल करती चलती थी।

दोपहर का भोजन कर फिर सब पतवार लेकर नाव में चढ़ गए। उनकी देखा-देखी रमू ने भी रंगीन लुंगी लपेट ली, गंजी पहनी और सिर पर रंगीन टोपी लगाकर नौका-दौड़ समारोह देखने नदी किनारे जा खड़ा हुआ।

नाव के दोनों ओर युवकों की दो कतारें हाथों में पतवार लिए बैठी थीं। बीच के कुछ तख्तों पर मस्तूल की तरह खड़ी एक छोटी-सी खूँटी को घेरकर कुछ बुजुर्ग लोग

खड़े थे। उन्हें सारी²²¹ गाना था। एक ढोलक और करताल के कुछ जोड़े भी नाव में रख लिए गए। सुरक्षा की दृष्टि से कुछ लाठियाँ भी पटक ली गईं। सब-कुछ व्यवस्थित कर छादिर जब खुद नाव में चढ़ने वाला था तो केंकड़े की तरह रमू ने उसे जकड़ लिया और ठुनकने लगा- 'बा-जान, मुझे ले चलो, बा-जान मुझे भी ले चलो।'

'काम के समय दिक मत कर ! अच्छा नहीं लगता।' कहते हुए छादिर ने एक झटके में खुद को छुड़ाया और नाव में चढ़कर नौका-दौड़ की प्रतीक्षा करने लगा।

'या अली' कहते हुए नाव खोल दी गई। सैकड़ों पतवारें एक-साथ उठने-गिरने लगी थीं, जिससे जल पर कोहरा-सा बनने लगा। तितास का कलेजा चीरते हुए किसी शिकारी के तीर की तरह साँ-साँ करती नाव दौड़ रही थी। छादिर नाव के अगले सिरे पर खड़े होकर निरीक्षण कर रहा था। बीच-बीच में सारी-गान की ताल सुन तख्ते पर पदाघात करते हुए वह नाच भी रहा था। बेचारा रमू तितास के सूने किनारे पर बैठा फफक-फफककर रो रहा था। नाना ने समझाया, माँ ने समझाया पर उसने किसी की नहीं सुनी। वह तो बस एक ही रट लगाए था- 'बा-जान मुझे ले चलो !'

तितास की धारा पर उस दिन अनेक पालदार नौकाएँ देखी गईं। सबकी मंजिल एक ही थी। आज दोपहर के बाद जिस जगह से नौका-दौड़ शुरू होने वाली थी, सारी छोटी-बड़ी पालदार नौकाएँ उसी दिशा में दौड़ी चली जा रही थीं। सारी नावों में मर्दों से ज्यादा औरतें आ बैठी थीं। बनमाली की नाव में पुरुषों के नाम पर वह स्वयं, बड़ोबाड़ी के दो मर्द और अनन्त थे। औरतों में बड़ोबाड़ी की सारी औरतें, उदयतारा और छोटी अनन्तबाला थीं। नौका-दौड़ की जगह पर पहुँचकर सबने एक विराट दृश्य देखा। इस जगह पर तितास का पाट कई मील चौड़ा हो गया था। जिसके दोनों किनारे हजार-हजार छोटी-बड़ी पालदार नावों ने खूंटियाँ गाड़ रखी थीं। कहीं-कहीं बड़ी-बड़ी नावें लंगर डाले हुए थीं। उनके दाएँ-बाएँ और सामने उनसे सटी दस-बीस छोटी नावें और खड़ी थीं। जहाँ तक नजर जाती थी, नावें ही नावें थीं। सबमें लोग लदे पड़े थे। नदी के बीचों-बीच नौका-दौड़ प्रतियोगिता के लिए जल-पथ बनाया गया था।

दोपहर ढलने लगी थी। बस दौड़ शुरू ही होने वाली थी। अब तक दौड़ वाली नावों के नाविक मस्ती में पतवारें चला रहे थे। सारी-गान के मधुमय स्वर लहरों के साथ गूँज रहे थे। नावों में बैठे दर्शक नाविकों की करामात देख मुग्ध हो रहे थे। वे छपाक से पतवार पानी में मार वातावरण में कोहरे की कनात तान रहे थे।

दौड़ वाली इतनी नावों को एक साथ देख अनन्त का हृदय बल्लियों उछल रहा

221. एक लोकगीत

था। तभी एक नाव छपाक से उसकी नाव के नजदीक से निकल गई। उससे आता सारी-गीत का मुखड़ा भी साफ़ सुनाई पड़ा-

‘साधारण काठ से बनी नाव,
झुनुर झुनुर करती नाव,
जीत आया रे
पर नाव की पूँछ कहाँ गई।’²²²

एक दूसरी नाव में भी सारी-गान हो रहा था। वातावरण में अद्भुत समौ बंधा हुआ था। दर्शकों की भीड़ चुप बैठी नजारे देखने में मशगूल थी। सैकड़ों पतवारों एक-साथ जल में डूब-उतरा रही थीं। नाव के दोनों छोर एक जैसे थे। पतवारों का उठना-गिरना ऐसा लग रहा था मानो एक तेज झुरी के सारे दाँत एक साथ खुल-बन्द हो रहे थे और एक ताल में अपना सिर ऊपर उठा रहे थे। बीच में खड़े लोग ‘सारी’ गा रहे थे। सभी पतवार-धारी ताल दे दे कर झूम रहे थे-

‘उसे बुलाओ,
दालान से बाहर चला गया है, ओ दीदी !
मेरे प्राणसखा को तुम बुलाओ।
मेरा सखा भात खाएगा,
खरीद लाई हूँ झाँगुर मछली, ओ दीदी,
दूध के लिए भेजा पैसा
कहाँ, रुपए कहाँ, ओ दीदी,
प्राणसखा को तुम बुलाओ।
मेरा सखा ढाका जाए, नदी पार रांधे खाए, ओ दीदी !
ज्वार में बह गई हँडिया, लुटिया, कटोरी, ओ दीदी,
प्राणसखा को तुम बुलाओ।
मेरा सखा रंग-रंगीला,
घाट पर बाँधता है नाव।
नाव का नाम रखा है उदयतारा।
कौन सा तारा, कैसा तारा, ओ दीदी !
मेरे प्राणसखा को तुम बुलाओ,
मेरा सखा आएगा जान

222. आकाठ मांदाइलर नाव/झुनुर झुनुर करे नाव/जित्या आइलाम रे नावेर गलुई पाइलाम ना।

किवाड़ में नहीं लगाई साँकल, ओ दीदी,
धन के लिए यौवन किया चूर-चूर ओ दीदी !
मेरे प्राणसखा को तुम बुलाओ।' ²²³

उदयतारा हंस पड़ी थी। अच्छा गीत जोड़ा है। बीच में मेरा नाम भी घुसा दिया।
सब हंस पड़े थे लेकिन हरेक नाव में ऐसे सुन्दर गीत नहीं हो रहे थे। एक नाव
से एकदम गद्यनुमा गीत सुनाई पड़ रहा था-

'चाँद मियाँ की बलि किसने दी,
दारोगा पूछता है,
अरे चाँद मियाँ की बलि किसने दी?' ²²⁴

दर्शकों की ओर से कोई चिल्लाया- 'अरे इस नाव को मैं पहचानता हूँ। बिजेश्वर
गाँव की नाव है। किनारे की बलुई जमीन को दखल करते समय उन्होंने ही खून-खराबा
किया था।' उसी घटना से जुड़ा था ये गीत। इसके बाद जो दो नावें सारी गाती हुई
निकलीं, उनमें से एक में यह गीत गाया जा रहा था-

'ज्येष्ठ आसाढ़ में नदी बढ़ जाती है
जमुना नदी के पास मत जाओ
बादल घिर आते हैं राह में, आँधी आ जाती है,
दिशाहारा होकर हम कृष्ण का नाम लेते हैं,
जमुना के किनारे हों या घर में,
मुश्किल ही मुश्किल है,
जहाँ-तहाँ नन्द का श्याम हमारे वस्त्र पकड़ खींचता है।' ²²⁵

223. तारे डाक दे दलाने बाइर हवा गो/ओ दीदी प्राणबंधूरे तोरा डाक दे/आमार बंधू
खाइबे भात/किन्या आनलाम झागुर माछ गो/ओ दीदी दूधेर लागी पठाई आछी/
पइसा कि सूकि कि टेका गो/ओ दीदी प्राणबंधूरे तोरा डाक दे/आमार बंधूर ढाका
जार/गाँग पारे रांधिया खाय/ओ दीदी जोआरे भासाइया निलो हाँड़ी/कि घटि कि
बाटि गो/ओ दीदी प्राणबंधूरे तोरा डाक दे/आमार बंधू रंगी-ढंगी/हावरे बंधेछे टंगी
गो/टंगीर नाम रेखेछे उदयतारा/कि तारा कि तारा गो/ओ दीदी प्राणबंधूरे तोरा
डाक दे/आमार बंधू आसबे बोलि/दुआरे ना दिलाम खिली गो/ओ दीदी धनथुइया
यैवन कर लो चुरि/कि चुरि गो/ओ दीदी प्राणबंधूरे तोरा डाक दे
224. चाँद मियाँ रे बलि दिलो के/दारोगा जिग्यासे/आर चाँद मियाँ रे बलो दिलो के
225. ज्येस्टिना आसाढ़ मासे जमुना उथले गो/जाइस ना जमुनार जले/जमुनार घाटे
जाइते देयाय करलो आँधी/पंथ हारा होइया अमरा किस्न बोले कांदी/जमुनार घाटे
जाइते बाइरे घरे ज्वाला/वसन धरिया टाने नन्देर घरेर काला।

दूसरी नाव से वियोगिनी राधा से जुड़ा गीत गाया जा रहा था-
आम के पेड़ पर आम नहीं हैं,
पत्थर क्यों मार रहे हो।

जब हमें तुम्हें मिलना नहीं है तो आँखें क्यों मिला ली?
कदम के पेड़ के नीचे हमने अपनी प्रीत बढ़ाई
दुश्मन बने पास-पड़ोसी, अफवाहें फैलाई।' 226

साथ में चलती एक पाल वाली नौका के लोगों में बतकही चल रही थी-
गोसाईपुर के पास राधानगर और किसननगर नाम के जो दो गाँव हैं, ये दोनों नावें वहीं
की हैं। गीत सुनकर बनमाली ने कहा- 'नावों में गीतों की प्रतियोगिता भी होती तो बड़ा
अच्छा रहता। किसी में राधा की उक्ति होती तो किसी में कृष्ण की।' राधा-गान वाली
नाव से उत्तर आया- 'अरे बाबा, यहाँ राधा ही राधा है, कृष्ण नहीं।

चोखा जवाब सुनकर आसपास की नावों के सवार हँस पड़े थे। उसी समय
बड़ोबाड़ी की एक औरत ने उदयतारा का ध्यान खींचा। 'अरे बहिन, सुनो तो! उधर
कितना मजेदार गाना गाया जा रहा है'-

'कल सारी रात तुम कहाँ रहे रे,
अरे तुम्हें देखा नहीं रे, कल सारी रात तुम कहाँ रहे रे,
थानों के चौकीदार टोले टोले घूमे,
किसी किसी नारी का सौभाग्य है,
मेरा सौभाग्य जल गया है।
हे मेरे भाग्य को जलाने वाले, कल सारी रात तुम कहाँ रहे रे।
हबीगंज नबीगंज के टेढ़े तिरछे रास्ते
प्राणप्रिय ने गवा दी थी हिल्सामुखी नथ।
मेरी वह नथ कहाँ खो गई रे,
कल सारी रात तुम कहाँ रहे रे।' 227

-
226. आम गाछे आम नाई ईटा केने मारो/तोमाय आमाय देखा नाई आँखि केने ठारो/तुमि
आमि करलाम पिरीत कदम तलाय रइया/सत्तुरवादी पाड़ा पड़सी तारा दिलो कोइया
227. ओ तोरे देखि नाई रे/काल सारा रात कोथाई छीली रे/थानाय थानाय चोकीदार
पाड़ाय-पाड़ाय घूरे/कोन कोन नारिर शुभ बरात आमर बरात पूड़े/बरात पुइडा
गेलो रे/काल सारा रात कोथाई छीली रे/हबीगंजे नबी गंजे कोना कोनी पथ/
प्राणबन्धु गड़ाइया दीछे इल्सा पाट्या नथ/से नथ पोइड़ा पोइड़ा गेलो रे/काल सारा
रात कोथाई छीली रे।

गीत सुनकर उदयतारा मुस्कराई। उसने कुछ देर उसी ओर कान लगाए रखे, फिर कहने लगी- ऐसे कितने ही गीत मुझे भी आते हैं। उधर सुन ना ! उस मोटे पेट वाली नाव से कौनसा गीत सुनाई पड़ रहा है-

‘सामने केले का बाग है
मेरे घर का द्वार पूर्व की ओर है
आ मिलो रात को हे मेरे प्राणप्रिय !’²²⁸

और एक गीत ने सबका ध्यान अनन्तबाला की ओर कर दिया। यह गीत एक लम्बी तीरनुमा नाव से आ रहा था। जो बड़ी मन्द गति से चल रही थी और उसमें बड़े ही सधे स्वर से कोई गा रहा था-

‘बेटी के लम्बे बाल हैं
जिन्हें यत्न से जूड़े में बांधा गया है
भँवरे इस पर मँडराते हैं। जैसे वह कोई फूल हो
वह नदी पर नहाने-धोने आती है, घर लौटती है,
बालों को सँवारती है,
बेटी क्या किसी के प्रेम में मर रही है?’²²⁹

गीत सुनते हुए उदयतारा ने अनन्तबाला की उम्र की तुलना में उससे कहीं बड़े जूड़े को पकड़कर धीरे से उमेठ दिया था पर अनन्त और अनन्तबाला की नजरें कहीं और थीं। वे उन दोनों की ओर देख रहे थे जो रंग पुते बड़े-से गमलों को पतवार से खेते हुए ला रहे थे। न उनके होठों पर गीत थे, न गमलों के तैरने में कोई लय। बाल और दाढ़ी नए फैशन से कटे थे। उनके सिर तेल से चक-चक कर रहे थे। उन्होंने धवल धोती और श्वेत गंजी पहन रखी थी। चेहरे पर मन्द-मन्द मुस्कान थी। पतवार खेते हुए वे बड़े बेढंगे तरीके से चले आ रहे थे। जल्दी ही वे अनन्त की नाव के एकदम पास आ गए। अगर थोड़ी सी चूक हो जाती तो उनकी नाव के धक्के से गमले फूट जाते। अनन्त ने हाथ बढ़ाकर गमलों को छूना चाहा तो उन दोनों ने पतवार दिखाई। बनमाली औरतों का ध्यान खींचते हुए बोला- ‘सब नाव दौड़ाते हैं, ये गमला दौड़ा रहे हैं।’

अनन्त ने भी कहा- ‘तुम लोग दौड़ में भाग क्यों नहीं लेते ! देखा जाए कौन जीतता है।’

228. सामने कोलार-बाग/पूबदुयारी घर/राइते जाइयो बन्धूप्राणेर नागर

229. झियारीर माथाय लम्बा केश खोंपा बांधी नानान वेश/खोंपा ऊपर गुंजरे भोमरा गांगे
आइले आंजन/जनबाड़ी ते गेले केशेर जतन/झियारी जानि कोन पिरीतेर मरा

लेकिन उन्होंने किसी की बात पर कान नहीं दिया। वे तो इतने में ही खुश ही थे कि दूर-दूर के गाँवों से आई औरतों का ध्यान वे अपनी ओर खींच पाए थे।

‘मुझे पता होता तो मैं भी एक गमला ले आता। अकेले बैठकर डाँड़ चलाता और नाव को दौड़ाता।’ अनन्त बोला था।

‘मैं पूछती हूँ तुमसे अकेले हो पाता। तुम उन दोनों की तरह न चालाक हो न चतुर! हाथ में पतवार लेकर दौड़ती हुई नावों के साथ होड़ लगाते! कहीं न कहीं किसी यात्री की नाव तुमको धक्का दे देती। और तुम्हारा गमला फूट जाता, तब तुम क्या करते? हाँ, अगर मुझे भी साथ ले लेते, तब कोई डर नहीं होता। तुम पतवार खेते और मैं गमला संभालती। और अगर गमला फूट जाता तो तुम मुझे संभालते, कैसा रहता?’ अनन्तबाला ने कहा।

‘बड़ा अच्छा रहता।’

वे इसी तरह की बातचीत में मशगूल थे कि हठात उदयतारा ठठाकर हँस पड़ी। वह ऐसी ही थी। उसके मन में हमेशा कुछ न कुछ चलता रहता था। सोचते-सोचते न जाने कहाँ से कहाँ चली जाती। कभी कहीं जाकर उसके विचार अटक भी जाते। उस समय वह और किसी की ओर न देख सबकी उपस्थिति से अनजान ठहाका मारकर हँस पड़ती।

तभी औरतों में बैठी अनन्तबाला की काकी ने मुड़कर कहा- ‘हँस क्यों रही हो दीदी?’

‘कोई बात याद आ गई। सो हँस पड़ी।’

‘कौन सी बात।’

‘मेंढक के सिर पर सींग वाली!’

‘बोलो ना, मैं भी सुनूँ।’

उदयतारा ने मन ही मन सोचा- हर बात तो कही नहीं जा सकती। फिर प्रकट कहा, ‘जिस बात को यादकर मैं खुद-ब-खुद हँसती हूँ। कब से मन में दबा रखा है। क्या तुम्हें बताऊँ!’

अनन्तबाला की युवा काकी की आँखों से कौतूहल स्पष्ट झलक रहा था। वह सहज ही किसी को छोड़ने वालों में नहीं थी। फिर बोल पड़ी- ‘कहो न दीदी, क्या बात है।’

‘क्या बताऊँ बहन?’

‘हँसी क्यों थी?’

‘हँसी आई तो हँस पड़ी।’

‘मैं तो तुम पर जान देती हूँ, नहीं बताओगी तो मत बताओ।’

‘ठीक है, तब सुनो। मैं यह याद कर हँसी कि नदी के ऊपर से तो कितनी ही नावें गुजरती हैं, उनमें तरह-तरह के गीत गाए जाते हैं। अच्छे गीत, बुरे गीत, प्रेम के गीत, घृणा के गीत। गाए जाते हैं ना!’

‘हाँ गाए जाते हैं।’

‘थोड़ी देर पहले ही तुमने एक बेढंगा गीत सुना और एक अच्छा।’

‘हाँ सुना।’

‘अच्छा, ये भले-बुरे गीत नदी भी तो सुनती चलती है, मैं सोच रही थी, क्या वह अपनी धारा पर उनका कोई चिह्न संभाल कर रखती होगी!’

‘ठीक कहती हो।’

‘इसीलिए हँसी थी।’

‘अब मैं समझी।’

‘जब समझ गई तो असली बात सुनो। अनन्त और अनन्तबाला के नाम तो मिलते ही थे। लगता है, अब मन भी मिल गए हैं। असली बात यही है।’

तभी एक नाव पास आकर लगी, उसमें बैठी औरतों में से एक अपने साथ वाली को भी सांत्वना देते हुए यही कह रही थी- ‘चिन्ता में देह जलाने से क्या फायदा दीदी! जो गया सो गया। नदी पर से कितने ही लोग कितनी ही तरह के गीत गाते गुजर जाते हैं, नदी की धारा पर क्या उसका कोई चिह्न बचा रह जाता है।’

तभी अनन्त उस नाव की ओर इशारा करते हुए अनन्तबाला के कान में फुसफुसाया- ‘मौसी।’

अनन्तबाला की आँखें उत्सुकता से फैल गई थीं। अनन्त के इशारे का अनुगमन करते हुए उसने उसकी ऐतिहासिक मौसी के दर्शन किए। सामने एक विधवा स्त्री थी। कभी रूपवती होगी, पर आज शरीर का लावण्य बुझ चुका था। गोरे चेहरे पर मलिनता की आभा थी। उसे देखकर मन में टीस जाग रही थी।

‘इसी मौसी ने तुम्हें भगा दिया था ना!’

‘हाँ!’

‘मौसी’ सम्बोधन ने सुबला बऊ का ध्यान खींचा और उसने गर्दन घुमाकर देखा। फिर सहसा उत्तेजित होकर चिल्लाने लगी- ‘अनन्त, मेरा अनन्त! वो रहा...’

दोनों नावें एक-दूसरी से सटी चल रही थीं। वह छलांग लगाकर इस नाव में आ गई और अपनी दोनों बाँहें अनन्त की ओर बढ़ा दीं। मौसी, मौसी कहते हुए अनन्त ने भी अपनी दोनों बाँहें फैला दी थीं। उसने देखा, मौसी की आँखों से आँसुओं की बाढ़

उमड़ रही थी। उसकी आँखें भी भर आईं। तभी अवाक निष्कंप पत्थर प्रतिमा-सी खड़ी उदयतारा आगे बढ़ी। उसे नजरंदाज करते हुए मौसी ने अनन्त को कसकर अपने सीने से लगा लिया और उसकी पीठ सहलाते-सहलाते रुंधे गले से बोली- 'इतने दिन कहाँ था रे !'

आँखें मूंदे वह कहे जा रही थी, 'इतने दिन कहाँ था रे ! कौन खिलाता था तुझे ? जब नींद आती थी तो किससे सुनाकर कौन सुलाता था ? बोल ना रे !'

'सुन लो बात ! जिसने टूटे सूप की तरह घर से निकाल फेंका था, आज वह पूछ रही है तुझे सुलाता कौन था !' उदयतारा का सुर सीधे सप्तम पर पहुँचा हुआ था। इस समय उसमें दया थी, न ममता। वह बेलाग बोले जा रही थी।

यह सुनकर अनन्त को बीती बातें याद हो आईं। उसके चेहरे की शिराएँ और कलाइयाँ हठात सख्त हो उठी थीं। वह मौसी के आलिंगन से छिटककर बाहर आया और सिर झुकाए-झुकाए बोला- 'मौसी तू मुझसे दूर रह !'

'अनन्त क्या तू भी अब मेरे लिए पराया हो गया !'

'मैं तुम्हारा था ही कब !'

'तुम माँ की सखी थी, जितने दिन माँ जिन्दा थी, तुम्हारे मन में मेरे लिए ममता थी। स्नेह था। माँ मर गई, उजड़ी हाट की तरह वह स्नेह भी उजड़ गया।'

'उजड़ गया ! तुझे ये कैसे पता चला, बता तो ?'

'जाओ जाओ, मैं सब समझता हूँ। जिस दिन माँ गई, उसी दिन बाकी सब भी चला गया। उसी दिन मैंने मान लिया, मैं परदेशी हूँ, वनवासी हूँ। जो भी मुझे बुलाकर अपने घर में रख लेता है, वह घर और उसके घरवाले मेरे हो जाते हैं। जो नफ़रत से मुझे भगा देते हैं, उनके घर मेरे लिए पराए हो जाते हैं।'

अरे बेईमान कौए ! ये सारी बातें तुझे किसने सिखाई, किस जादूगरनी ने यह पाठ पढ़ाया तुझे ?

उदयतारा यह सुनकर फट पड़ी थी। 'ये रही जादूगरनी, तेरे आगे खड़ी है। मुँह संभाल कर बात कर और दिल संभाल कर घर जा। बात मत बढ़ा। मेरा मुँह और मत खुलवा।'

सुबला बऊ से अब नहीं सहा गया। वह उत्तेजित होकर आगे बढ़ी और अनन्त का एक हाथ पकड़ लिया। उसने झटका देकर हाथ छोड़ाया और उदयतारा की शरण में छिपते हुए बोला- 'मौसी, तू ये झूठा प्यार और मत बरसा।'

मौसी के धैर्य का बाँध टूट गया था। अपमान के मारे उसका सिर फटने लगा था। उदयतारा जी खोल के गालियाँ दिए जा रही थी। यह सब अनन्त के लिए हो रहा

था। गुस्से से वह सिर से पैर तक जल रही थी। बोली- 'प्यार तो मैं तुझ पर बरसाऊँगी ही। लेकिन मुँह से नहीं, हाथ से।' यह कहते हुए उसने झपटकर अनन्त के बाल पकड़ लिए और पीठ पर धमाधम घूँसे बरसाने लगी। डर से काँपते अनन्त ने मौसी की जलती आँखें देखकर अपना सिर झुका लिया और खुद को उसके गुस्से की आग में जलने के लिए छोड़ दिया। मार खाते-खाते वह नाव के पटरे के नीचे गिर गया था। सब भौंचक होकर नजारा देख रहे थे। तभी उदयतारा एकदम गरज उठी और बाघिन के चंगुल से हरिण शावक की तरह अनन्त को उसके कब्जे से छुड़ा लिया। वह बलि के कबूतर की तरह काँप रहा था। इसके बाद जो अध्याय सामने आया वह बताने लायक नहीं। उदयतारा सहित नाव की बाकी सभी महिलाओं ने मिलकर सुबला बरु को पटक दिया और एक साथ उस पर टूट पड़ीं। लात-घूँसों से उसे अधमरा कर छोड़ा। बड़ी मुश्किल से सुबला बरु उठ पाई। अपने अस्त-व्यस्त कपड़े ठीक किए और किसी तरह अपनी नाव में जाकर पड़ गई। आसपास की नावों में बैठे हजारों लोग उसे ही देख रहे थे। अपमान और लज्जा से वह सिर नहीं उठा पा रही थी। उसकी साथिनों ने किसी तरह उसे पकड़कर बैठाया पर वह फिर नाव के तख्ते पर लुढ़क गई और बुक्का फाड़कर रोने लगी।

उदयतारा का दल विजय-गर्व से फूल गया था। अनन्त अब भी काँप रहा था। मर्दों ने पतवार फेंककर नावों को अलग किया। अनन्त ने डरते-डरते मौसी की नाव की ओर देखा। वह घुटनों के बल बैठी फफक रही थी। अब शायद कभी उनकी मुलाकात न हो पाए। दोनों नावों के पुरुष हतप्रभ थे। उन्होंने कहा, चलो हम लौट चलते हैं। अब नाव-दौड़ देखने की हिम्मत नहीं। सब वापिस चल पड़े। मंजिल दूर थी। पर किसी को जल्दी नहीं थी। नौका-दौड़ के इलाके के बाहर खुली जगह में पहुँचकर उन्होंने चैन की साँस ली थी। तभी देखा कि देर होने के बावजूद एक नाव दौड़ के इलाके की ओर ही भागी जा रही थी। कोई उसमें बैठा सारी गा रहा था-

'सबके सब हैं मेरा तो कोई नहीं रे
मेरे अन्तर में गरज रहीं समुद्र की लहरें
नदी के किनारे गई पार होने की आशा में
नाव है खेवैया नहीं

बिना खेवैये के नाव डोंगी-सी डगमगा रही है।'²³⁰

230. सकलेर सकलि आछे आमार नाई गो के ऊ/आमार अंतरे गरजि उठे समुदरेर ढेरु/नदीर किनारे गेलाम पार हईबार आशे/नाउ आछे काण्डारी नाई शुधू डिंगा भासे।

खंड-चार

दुरंगी तितली

सुबला बऊ के जीवन से होकर एक भयंकर तूफान गुजर गया था। बचपन में माँ-बाप उसे बेहद प्यार करते थे। कभी किसी ने हाथ नहीं उठाया था। मालो टोले की लड़कियाँ आपस में लड़तीं-झगड़तीं, गाली-गलौज करतीं, लेकिन उसके लिए कभी किसी ने कड़वे बोल नहीं बोले थे। टोलेभर में उसका एक सम्मान था। एक गर्व था। आज जैसे सब भरभराकर ढह गया था।

वह देह और मन दोनों से टूट गई थी। सारे शरीर में भयानक दर्द था। यहाँ-वहाँ गूमड़ उभर आए थे। नाव से उतरकर वह किसी तरह घर पहुँची। किसी को बिना कुछ बताए चुपचाप एक चटाई बिछाकर सो रही। उसकी नाव में जो अन्य औरतें थीं, उन्हीं से पड़ोसियों को सारी घटना विस्तार से पता चली। उसकी माँ को जब यह बात मालूम पड़ी तो उसने एक कटोरी में पिसी हल्दी गर्म की और उसके पास जाकर बोली- 'बसन्ती, कपड़े हटा तो जरा, देखूँ कहाँ-कहाँ दर्द हो रहा है? अरे तेरी देह तो भट्टे की तरह तप रही है।'

माँ का स्नेह देख उसकी आँखों से आँसू बहने लगे थे।

माँ ने उसकी आँखें पोंछते हुए कहा- 'अरी निपूती, उसके लिए तूने अपनी यह हालत कर ली। न तेरी छाती का, न पेट का। उसके लिए तेरे मन में इतना 'दरद' क्यों आया री!'

सुबला बऊ ने जैसे कुछ न सुना हो।

माँ के मुँह से गाली निकली- 'उस कलेजे खाऊ के लिए तू इतना प्रेम दिखाने क्यों गई थी? दस लोगों के बीच तुझे बेइज्जत होना पड़ा!'

वह इस बार भी चुप रही।

माँ ने और बात नहीं बढ़ाई। उसके नजदीक ही लेट गई। बूढ़ा रात में जाल फेंकने गया हुआ था। बुढ़िया ने लेटे-लेटे ही तमाखू पिया और ढिबरी बुझा सारी रात बेटी

को सीने से लगाए रही। उसके दोनों स्तन सूखकर डोरी जैसे हो गए थे। बेटी उनसे ही अपने बेजान स्तनों को सटाए रही। उसे बड़ी शान्ति मिल रही थी। माँ ने अपने पिचके हुए गाल बेटी के गोरे गालों से सटा लिए थे। उसकी आँखें नींद से बोझिल थीं। दर्द के कारण बीच-बीच में वह जाग पड़ती, लेकिन आँखें फिर झपक जातीं। चेतन और अचेतन अवस्था के बीच में उसे बार-बार बस एक ही बात याद आ रही थी- 'संसार में माँ ही सबसे बड़ा सत्य है, बाकी सब मिथ्या।'

अगले दिन सुबह तक शरीर की सूजन और दर्द कम हो गए थे। वह खुद को हल्का महसूस कर रही थी। मन की तपन को शीतल करने के लिए उसने खुद को सूत कातने और जाल बुनने में लीन कर लिया। लेकिन टोले-मोहल्ले में उसकी जो मर्यादा खो गई थी, वह वापिस नहीं लौटी।

उसके टोले के पाँच-दस लोगों के मुँह से होती हुई यह घटना अन्य जातियों के टोलों में भी फैल गई थी। इसके बाद आस-पास के लोगों, खासकर युवकों का सामना करने में उसे बहुत लाज आती थी। बामुन, कायथों के युवक तक उसके दरवाजे से गुजरते हुए घर में झाँकने लगे थे। इस तरह लांछित होकर अन्त में उसने अपना दरवाजा बन्द रखना शुरू कर दिया। दिन में भी किवाड़ नहीं खोलती थी। पर इससे उसे कोई खास रिहाई नहीं मिल पाई। एक दिन जब वह बर्तन मँजने घाट पर जा रही थी तो मंगला की बऊ ने उसे रास्ते में ही रोक लिया और कहने लगी- 'क्या बहन! मकान के बगल में मकान है। घर के पास घर! तब भी तुम बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ती। बात क्या है?'

'तबीयत ठीक नहीं रहती दीदी! बीच-बीच में बुखार भी आ जाता है। बाप का जाल पुराना हो गया है। मछलियों के आघात नहीं सह पाता। एक नए जाल की जरूरत है। न तो मेरे पाँच भाई हैं, न भौजाइयाँ! अकेले मुझे ही तो बेड़ा पार लगाना है।'

'अरे तो दरवाजा क्यों बन्द रखती हो?'

सुबला बऊ ने इसका कोई जवाब नहीं दिया।

बहन अब तू चाहे दरवाजा खुला रखे या बन्द, कहानी तो नगर-बाजार में सब जान ही गए हैं।

सुबला बऊ आग की तरह सुलग उठी, बोली- 'कौन सी कहानी! क्या रे महन की माँ, कौन सी कहानी?'

बहिन मेरा इसमें कोई दोष नहीं, बाजार के वे लोग जो तामसी के बाप के घर तबला बजाने जाया करते हैं, वे ही अफवाहें फैला रहे हैं। उनमें बामुन हैं, कायथ हैं।

वे पढ़े-लिखे लोग हैं। मालो लोगों की अपेक्षा वे ज्यादा समझदार हैं। उनकी दूकानों से मालो जरूरत की चीजें खरीदा करते हैं। मछलियाँ पकड़ने जाते समय वे कुछ चीजें गिरवी रखकर उनसे रुपए भी उधार लिया करते हैं। ब्याह-शादी में भी उनसे मदद मिलती है। गाँव के अधिकांश मालो उन्हीं के वश में हैं। मालो उनका कहा टाल नहीं सकते। मालो लोगों के लिए उनका कथन ब्रह्मा का लेखा है। वे कहते हैं, 'विधवा औरत दरवाजा बन्द किए बैठी रहती है। शर्म से किसी को मुँह नहीं दिखाती। क्या हुआ है उसे? क्या हमें नहीं मालूम।'

सुबला बऊ को जैसे काठ मार गया था। पैरों के नीचे से जमीन खिसक गई थी। पर उसने हिम्मत नहीं हारी। बिड़बिड़ाती हुई वह घर लौट आई।

इसके बाद फिर किसी ने उसकी ओर देखने की हिम्मत नहीं की। यदि कोई देखता भी तो वह अपनी लाल जलती नजरों से उसे ऐसे घूरती कि वह सिर पर पैर रखकर भागता। एक दिन वह तामसी के बाप के घर के आगे जा खड़ी हुई और गाना-बजाना करने वालों को लक्ष्य कर गन्दी-गन्दी गालियाँ बकनी शुरू कीं। घण्टे भर तक रुकी ही नहीं। यह देख टोले की औरतों में चेहमे-गोइयाँ शुरू हो गई- 'बाप रे बाप! देखो तो इस राँड़ को! बड़ों से सीधे राड़ ठान बैठी है।'

सुबला बऊ ने एक बार मालोपाड़ा से अपना डेरा-डण्डा उठाने की सोची, पर अन्य कोई राह नहीं सूझी। पहले के पंचों की अब उतनी नहीं चलती। वे रहते तो कोई न कोई समाधान निकाल ही देते। यात्रा-बाड़ी के रामप्रसाद ने मालो समाज में विधवा विवाह प्रथा शुरू करने का प्रयास किया था, लेकिन लोगों ने उन्हें दबा दिया। वहाँ के चक्रवर्ती, ठाकुर पुरोहितों ने पुरोहित-दर्पण (पंचांग) खोलकर मालो लोगों को समझाया- 'विधवा विवाह करवाने पर नरक में जाना होगा।' ब्राह्मण, पंडितों की कथा शिरोधार्य कर टोले वालों ने रामप्रसाद को ही त्याग दिया था। अब मालो समाज पर उनका वह प्रभाव नहीं रह गया था। दयालचौद पहले उचित बातें कहा करते थे, पहले जात्रा-दल में वे ऋषि-मुनि का स्वांग धरा करते पर अब शहर-शहर जात्रा गाते फिरते थे। बड़े लोगों के दरबार में अपनी कला के बदले सोने-चाँदी के मैडल लिया करते थे। अब उनका झुकाव धनीमानियों की ओर हो गया था। अब वे उचित-उचित नहीं विचारते। पर सुबला बऊ के भीतर तो एक क्रान्तिकारी औरत बसती थी, जिसने दबना नहीं सीखा था।

'महन की माँ, मैं इसी गाँव की बेटी हूँ, इसी की बहू। मैं किसी बाहरी आदमी से नहीं डरती।'

मंगला बऊ बोली- 'तू औरत की जात, बहिन, भला तू क्या कर सकेगी?'

‘मैं कुछ भी कर सकती हूँ। और कुछ नहीं, पूरे गाँव को जलाकर राख तो कर ही सकती हूँ।’

‘गाँव के एक घर में आग लगी तो हजारों घर जल जाएंगे। जैसे ही बाजारी टोला जलेगा, मालो पाड़ा भी जलने लगेगा। तुम्हारा, मेरा सबका घर जलेगा। जैसे वे मरेंगे, हम भी तो मर जाएंगे।’

‘अपमान के जीवन से सम्मान की मृत्यु कहीं अच्छी होगी दीदी !’

सुबला बऊ की यह बात मालो युवकों को भी प्रभावित कर गई थी। उसी रात जब तीन लोग तबला बजाकर अपने घर लौट रहे थे; मालो युवकों ने उन्हें रास्ते में दबोच लिया और खूब पीटा। मार खाने वालों ने लोगों को बुलाकर मशविरा किया कि अब क्या करना चाहिए। काफ़ी बहस के बाद यह तय हुआ कि वे खुला-खुली कोई प्रतिशोध नहीं लेंगे। मालो लोगों की रोटी-रोजी तो प्रायः उन्हीं के हाथों में है। सो उन्हें हाथ से नहीं, किसी अन्य उपाय से मारा जाएगा।

मालो टोले के आकाश पर टुकड़े-टुकड़े काले बादल उमड़ने लगे थे। किसी को आभास भी नहीं हुआ कि वे कालक्रम से कितनी बड़ी मुसीबत बनकर टूटने वाले थे।

उस दिन कादिर का बेटा जिस नाव को लेकर नदी में उतरा था, वह फिर कभी नहीं लौटी। हर साल ऐसा होता था। किसी एक गाँव की नाव दूसरे गाँव की नाव से टकरा ही जाया करती थी। अगर किसी का किसी से कोई पुराना झगड़ा हो तो ऐसा होना तय था। मौका पाते ही एक दुश्मन दूसरे की नाव के बीचों-बीच अपनी नाव घुसा देता था। नौका जहाँ की तहाँ ढेर हो जाती। मारपीट के साधन नाव में ही होते थे। मारामारी शुरू होने में देर नहीं लगती थी। कितने ही लोगों के सिर, कमर और हाथ-पैर टूट जाते थे। कितने ही निरीह लोग नदी की बलि चढ़ जाते थे। हर साल ऐसा एकाध काण्ड होता ही था। इस बार छादिर की नाव निशाना बनी।

जिस नाव ने छादिर की नाव को खण्ड-विखण्ड किया था, उसके मालिक का कोई अता-पता नहीं था। दरअसल यह घटना पलक झपकाते ही घट गई थी। क्षण-भर पहले जो नाव मोर की तरह अपनी पतवारों के पंख फैलाए सर्पिल गति से बढ़ी जा रही थी, उसे अचानक चकनाचूर होकर जल में बिखरते देखा गया।

पूरा परिवार निस्तब्ध था। किसी के मुँह से आवाज नहीं निकल रही थी। सब साँस रोके सुन रहे थे। इस घर का सौभाग्य था कि इतने बड़े तूफानी हमले के बावजूद सब-कुछ खत्म नहीं हुआ था। ढिबरी की टिमटिमाती रोशनी से कमरे में बैठे लोग

एक-दूसरे को देख पा रहे थे। सबके चेहरों पर अंधेरा जमा हुआ था। लोग निःशब्द थे, पर उनके कान खुले थे। सबसे आगे बैठा रमू अपने बाप के हर शब्द को घूँट-घूँट निगल रहा था। वह अपने बाप को एक असाधारण रूप में देख रहा था। जो आदमी इतनी बड़ी विपत्ति से खुद को सुरक्षित निकाल लाए, वह असाधारण ही हो सकता था। एक लम्बी साँस लेकर कादिर मियाँ बोले, 'अल्लाह-ताला की बहुत मेहरबानी, तू बच गया। पता नहीं और लोगों की क्या गति हुई होगी?'

पता नहीं बाप ! मैं कैसे बच गया ! नदी में गिरते हुए मैंने देखा था, मेरे आस-पास जैसे सैकड़ों नावें उड़ रही थीं। कोई मेरे सिर पर से गुजरी, कोई दाहिने से तो कोई बाएँ से। किसी की पतवार मुझे छूती हुई निकल गई तो किसी नाव के कारण उछलता पानी मेरे ऊपर वज्र-सा गिरा। मेरी आँखों के आगे तो अंधेरा छा गया था। पर तभी किसी ने मेरी ओर हाथ बढ़ाए। मैंने उसे पहचान लिया था। वह छपाक से पानी में कूदा और तैरते हुए मेरी ओर आया। उसने मुझे सहारा देकर अपनी नाव में चढ़ा लिया। आलुओं से भरी जिस नाव को एक बार मैंने डूबने से बचाया था, ये वही जल्ला भाई हैं। बनमाली की ओर इशारा करते हुए छादिर ने कहा था।

सब बनमाली के प्रति कृतज्ञ थे। रमू का मन भी उनके प्रति असीम श्रद्धा से भर उठा था।

मोहल्ले में एक सामूहिक रुदन गूँज रहा था। सभी नौजवान बड़े उत्साह से छादिर की नाव में बैठे थे। पर इस विपत्ति-कथा ने सबको आतंकित कर दिया था। दो-चार के परिवार वाले तो असलियत जानने के लिए कादिर के घर चले आए थे। उन्हें देख कादिर मियाँ बोले- 'अभी इतना घबराओ मत, थोड़ी देर इन्तजार करो। खुदा की मेहरबानी से सब सही-सलामत लौट आएँगे। कादिर की बात ठीक निकली। इधर आती नावों में बैठ टोले के प्रायः सभी लोग लौट आए थे। नाव ही नष्ट हुई थी। युवक सुरक्षित थे।'

रमू ने सोचा- सभी लौट आए, बेचारी नाव भी लौट आई होती तो कितना अच्छा हुआ होता। थोड़ी देर बाद भावावेश में छादिर के मुँह से निकला- 'बा-जान तुम्हारे पाँच सौ रुपए तितास में बहा आया।'

पर कादिर ने ढाढ़स बंधाया, इससे छादिर के मन का बोझ हल्का हो गया। भावावेश में छादिर ने बनमाली का हाथ पकड़ लिया और बोला- 'तुम्हीं भाई हो और तुम्हीं बन्धु ! बिना जल-चिवड़ा खाए तुम्हें नहीं जाने दूँगा।'

कादिर को बेटे की सोच सही लगी। इनकी खातिर तो होनी ही चाहिए। बनमाली

को बाप-बेटे के अनुरोध का मान रखना ही था।

रमू का ननिहाल हिन्दू टोले के पास ही था, इसलिए उसकी माँ हिन्दुओं के खान-पान से परिचित थी। उसने लम्बे-चौड़े ग्वाल-घर²³¹ को लीप-पोतकर स्वच्छ किया, फिर कलसी से चिवड़ा निकालकर जल्दी-जल्दी सूप से फटककर साफ़ करने लगी। छादिर ने बिना विलम्ब गाय दूही और दूध पत्नी के हवाले किया। कादिर मियाँ दौड़कर कुम्हार टोले से एक नई हँडिया ले आए। उदयतारा ने मिट्टी के तीन ढेलों पर हण्डी रखी और लकड़ी जलाकर दूध उबालने लगी। आग बीच में कभी तेज होती थी तो कभी कम। जब उसकी लपटें तेज होतीं तो उदयतारा का चेहरा एकदम लाल दिखाई पड़ता। जब आग बुझने वाली होती तो वह झुककर फूंक मार उसे जलाने की कोशिश करती, जिसमें उसका चेहरा फिर से लाल होकर चमकने लगता। दूर खड़ी जमीला बड़ी देर से यह दृश्य देख रही थी। वह कादिर की इकलौती बेटि थी। उसने उदयतारा को अच्छे से पहचान लिया था। रमू की माँ को बरामदे में खींचती हुई वह बोली- 'अरे भाभी! यह तो वही औरत है जिससे मैंने कई बार बातें की हैं। जब मैं पहली बार अपने पति के साथ आ रही थी तो इसी से मिली थी। यह घाट पर खड़ी बड़ी नफ़ासत से अपनी कलसी डुबो-डुबोकर भर रही थी। इसके बारे में मैंने एकबार तुम्हें बताया भी था।'

सभी दिन भर की थकान, झगड़ा-झंझट और भूख से परेशान थे। ग्वाल-घर में बैठ केले के पत्ते पर चिवड़ा और दूध-बताशा खाकर सबको बड़ी तृप्ति मिली। खाने के बाद जमीला उदयतारा को पकड़कर घर के भीतर ले गई। कहने लगी, 'ब्याह के बाद मैं पहली बार आ रही थी। मैं नाव के पर्दे में बेठी थी। एक साड़ी बाँधकर कर पर्दा लगाया था, उसके दोनों किनारे दबाए हुए थे। हवा से उस साड़ी का एक किनारा खुल गया था। तुम उस समय घाट पर कलसी से लहरों को छेड़कर पानी भर रही थी। मैंने तुम्हें देखा था। मुझे लगा तुम्हें मैं बरसों से जानती हूँ। न जान न पहचान, लेकिन न जाने क्यों, किसी को पहली नजर में कोई भाने लगता है। तुम मुझे भा गई थीं। मैंने बार-बार तुम्हारी ओर देखा पर तुम मुझे नहीं देख पाई थी। जब मैं दोबारा मायके आई तो अपने बाप से कहा, मैं उसे अपनी सखी बनाऊँगी।' बाप ने कहा था, तुम्हें उसका न नाम पता है, न ठिकाना। उसको कहाँ से खोजूँ। इसके बाद मैं जब-जब भी उस घाट से गुजरी, मेरी नजरें तुम्हें तलाशती रहीं। मेरा ब्याह हुए तब तक काफ़ी दिन बीच चुके थे। मैं खुली नाव में आने-जाने लगी थी। तुमको कई बार खोजने की कोशिश की पर तुम तो

231. गोशाला।

फिर कभी दिग्वाई ही नहीं पड़ी। और आज देखो कैसा करिश्मा हुआ, जिसे इतने दिन से खोज रही थी, वह तो खुद-ब-खुद मेरे घर आ गई। 'अब जब तुम आ ही गई हो, तो कुछ दिन यहाँ घूमो फ़िरो। तुम भी मुझे दो-चार दिन के लिए अपने घर बुलाना।'

जमीला की बातें सुनकर उदयतारा ने एक ठण्डी साँस ली। उसे जमीला नाम पसन्द आया था। लेकिन वह दुनियादारी के बारे में इतनी अनजान थी, यह जानकर उसे बहुत तकलीफ़ हुई। जब काले बादलों का घूँघट सरकाकर चाँद निकलता है तो कितना खूबसूरत लगता है। इसी तरह बड़ी विपत्तियों को दरकिनार कर जब मन में सुख का उदय होता है तो उसकी अनुभूति कितनी मधुर होती है। उस समय कादिर के परिवार की खुशी को जिसने अपनी आँखों नहीं देखा, उसे इसका अहसास कराना बड़ा ही मुश्किल था। नाव में जो मारपीट, झगड़ा, लड़ाई आदि हुई थी, उसे प्रत्यक्ष देखने वालों के मन में जो आतंक छाया हुआ था, कादिर के परिवार के आतिथ्य से वे उसे पूरी तरह भूल गए थे। फिर मन में प्रेम-प्रीति की एक अनुपम छाप लिए वे अपनी नाव में जा बैठे थे। उस समय आकाश में पूरा चाँद था। चाँदनी में तितास की छोटी-छोटी लहरें झिलमिला रही थीं। नाव उनसे टकराती हुई आगे बढ़ रही थी। गृहस्वामी के अनुरोध पर बनमाली और अनन्त वहीं रुक गए थे।

दूसरे दिन सुबह नींद से उठते ही अनन्त घर के बाहर आया। ग्वाल-घर में कई गाय-बछड़े रंभा रहे थे। बछड़ों को खोल दिया गया था, इसलिए वे कूदाफाँदी कर रहे थे। थोड़ी ही दूर पर बारिश का जल थोड़ा थोड़ा कर रहा था। नाना जातियों के छोटे-छोटे पौधे कमर तक जल में डूबे हुए थे। क्रम से कई किशियाँ बंधी हुई थीं। एक खुली जगह पर लम्बा-सा बाँस बाँधकर अरगनी बनाई गई थी, जिस पर सूखने के लिए पाट फैलाया हुआ था। दूर से देखने से ऐसा लग रहा था जैसे हरे पाट की एक बड़ी-सी दीवाल खड़ी थी। भीगे हुए पाट की गन्ध पूरे वातावरण में व्याप्त थी। जिससे आकर्षित होकर पतंगों के झुण्ड आ-आकर उस पर बैठ रहे थे। अनन्त कौतूहल से उन्हें देख रहा था। हठात उसे रमू खड़ा दिखा। उसके चेहरे और आँखों में भी वैसा ही कौतूहल भरा हुआ था। एक नए साथी को देख रमू का मन उससे बातें करने के लिए छटपटाने लगा। उनके कुछ दिन रुक जाने की बात सुनकर वह मन ही मन बड़ा खुश हुआ था। दोस्ती की गरज से उसने अनन्त से बातचीत शुरू की, तुम फर्तिंगे नहीं पकड़ते? रमू ने कहा

अनन्त बोला- नहीं।

रमू ने फिर कहा- बाँस के बेड़े के उस पार जो मकान है, उसमें गफ़ूर रहता है। वह मेरा चचेरा भाई है। उसे पतंगे पकड़ने में बहुत मजा आता है। वह उन्हें पकड़ता

है सीक चुभोकर छोड़ देता है। वे छटपटा कर मर जाते हैं। उन्हें मरते देख मुझे बहुत तकलीफ़ होती है। तुम उन्हें नहीं पकड़ते। तुम कितने अच्छे हो ?

उसी समय गोशाले से एक टोकरा गोबर लेकर रमू की माँ उसे घूरे पर फेंकने निकली। दो बच्चों को इतने अपनापे से बतियाते देख उसका मातृ-हृदय उच्छ्वसित हो उठा। उसने चटपट लता से एक खीरा तोड़ा और अनन्त को देते हुए बोली- 'लो बाजी, खाओ !'

खीरे को हाथ में लिए-लिए अनन्त विस्मित आँखों से उसकी ओर देखने लगा। रमू ने बताया- 'ये मेरी माँ है।'

'माँ !..' यह शब्द सुनते ही अनन्त ने चटपट झुककर उसके पाँव छू लिए।

गाँव लौटकर अनन्त ने पढ़ने-लिखने में मन रमाया। गोसाईं बाबाजी ने जिस दिन उसका पहले 'काले अक्षर' से परिचय कराया, उसके हृदय की खुशी मानो बाँध तोड़कर उमड़ पड़ी थी। उसके सामने एक नई दुनिया ही खुल गई थी। अक्षरों के बाद उसने उन्हें मिलाकर शब्द बनाने सीखे। उसने पहली बार जाना कि जो कुछ हम मुँह से बोलते हैं, उसे लिखकर भी बताया जा सकता है। केले के पत्ते पर तीन कोने-चार कोने, गोल और भी अनेक आकारों के अक्षरों के रेखांकन में उसका मन पूरी तरह डूब जाता था। रात को सपने में वे अक्षर मानव रूप धारण कर उसकी आँखों के आगे आ खड़े होते थे। वे मानो उससे बातें करते थे। देखते-देखते शिशु शिक्षा का पर्व खत्म हो गया था। बनमाली का मन उसे लेकर गर्व से फूल उठा था। वह किताब उठाकर कहीं एक जगह उंगली रख देता और अनन्त से कहता- यहाँ से पढ़कर दिखा तो !

अनन्त पढ़ता चला जाता। वह कहीं नहीं रुकता। बीच-बीच में बनमाली गहरी साँस लेकर कहता- 'काले अक्षर का जादू समय रहते नहीं पहचान पाया। आज मुझे समझ में आ रहा है।'

शिशु-शिक्षा समाप्त कर अनन्त ने बाल्य-शिक्षा में कदम रखा और पूरे-पूरे वाक्यों का आनंद लेना शुरू किया। घोड़ा चोड़िलो, 'आबार पोड़िलो'²³² पढ़ते हुए उसने महसूस किया कि सारे अक्षर तो पहले ही उसके परिचित थे, लेकिन अब उनके जरिए उसने पूरी एक बात समझी, पूरा एक वाक्य सीखा। सारे अक्षर तो उसने शिशु-शिक्षा में सीख लिए थे। एक-एक अक्षर के साथ एक-एक चित्र लेकिन अब वाक्यों के साथ केवल बिम्ब थे, चित्र नहीं। कोई घोड़ा दौड़ा रहा था, फिर गिर गया, चित्र में न दिखाने पर भी यह बात समझ में आ गई थी। वह गिरा, फिर घोड़े पर चढ़ा, यह बात

232. घोड़े पर चढ़ा और फिर गिर पड़ा।

भी बिना चित्र देखे ही समझ में आ गई थी। इसके बाद संयुक्ताक्षरों की बारी आई। ये जितने कठिन थे, उतने ही जटिल भी। पर इस कठिनता और जटिलता में भी एक आनन्द, एक आकर्षण था। जिसने अनन्त को अपनी ओर खींचा था। इन संयुक्ताक्षरों ने नए-नए रूप लेकर उसके मानस-लोक में अपनी-अपनी जगह बनानी शुरू की। अनन्तबाला को भी उसके साथ पढ़ने भेजा गया, पर उसका मन इसमें जरा भी नहीं लगता था। वह कुछ नहीं सीख पाती थी। जब पढ़ती ही नहीं थी तो सीखती कैसे !

पढ़ते समय वह एक बार अनन्त को देखती तो अगले ही पल उस ओर जहाँ धान खेतों के उस पार आकाश धरती से मिल रहा होता। उसे लगता था क्षितिज के उस पार भी गाँव बसे होंगे। वह टकटकी लगाए उस गाँव की तलाश करती रहती थी और मौका मिलते ही बक-बक शुरू कर देती थी। उसका मन बेमतलब की बातों में अधिक लगता था। एक बार जो बोलना शुरू करती तो उसे फिर रोकना मुश्किल हो जाता। कभी कहती, आज मेरे घर तुम्हें और मुझे लेकर बहुत सारी बातें हो रही थीं। हम लोगों के नाम मिलते हैं, पर इस तरह नामों का मिलना अच्छा नहीं। इसलिए तुम्हारा नाम बदलने की बात चल रही थी। अगर ऐसा हुआ तो मैं भी अपना नाम बदलने को कहूँगी। जानते हो, तुम्हारा नाम क्या रखा जाएगा? माँ कहती है- हरनाथ लेकिन छोटी बुआ को यह नाम पसन्द नहीं। वह पीताम्बर रखना चाहती है। पर बड़ी बुआ को यह पसन्द नहीं। तुम्हारे नाम को लेकर बड़ा तर्क-वितर्क हो रहा था। आखिर में बड़ी बुआ का नाम जीत गया। अब तुम्हारा नाम रखा जाएगा- गदाधर, वैसे ये नाम मेरी मौसी को पसन्द नहीं आएगा। लेकिन नाम तो रख दिया गया, अब बदल नहीं सकेगा।

लेकिन मेरा नाम बदलने की जरूरत क्या थी ?

अरे, तुम यह भी नहीं जानते ! माँ जानती है, बाबा जानते हैं, मैं जानती हूँ और तुम नहीं जानते ! मुझे तो तुम्हें बताने की मनाही है। इसलिए नहीं बोलूँगी। तुम्हें लेकर मेरे घर में बहुत सारी बातें होती हैं। तुम्हें हमेशा के लिए हमारे घर में रहना होगा। वे तुम्हें फिर कहीं नहीं जाने देंगे। उनका कहना है, तुम्हारी जोड़ी केवल मेरे साथ जँचेगी। और किसी के साथ नहीं।

मैं अगर न रहूँ तो !

जबरदस्ती रखेंगे। बांधकर रख लेंगे।

हूँ, मुझे बाँधकर रखेंगे। मौका मिलते ही हुड़ से भाग जाऊँगा। समझी !

सचमुच अनन्त जाने के लिए तैयार हो रहा था। पाठशाला से लौटते समय रास्ते में एक नाई का घर पड़ता था। जिसमें एक अमरूद का पेड़ था। नाइन ने एक

दिन उसे एक अमरूद देकर कहा था, किसी दिन छुट्टी के समय मुझे रामायण पढ़कर सुना दिया करो। अनन्त ने वैसा ही किया था। पर रामायण सुनते-सुनते नाइन ने अनन्त के मन में एक कभी न बुझने वाली आग सुलगा दी थी।

अरे अनन्त ! तू तो बड़ा अच्छा रामायण पाठ करता है। मन मोह लेता है। मैं तुझे एक सलाह दूँ। तू यहाँ से चला जा। यहाँ तो दो 'किलास' पढ़ाकर मछरे तुझे नाव में धकेल देंगे। इससे ज्यादा तू यहाँ नहीं पढ़ नहीं सकेगा। तुझे बहुत कुछ सीखना है। 'बिद्या न' बनना होगा। वामुन, कायथ के बच्चों की तरह तुझे आई.ए., बी.ए. पास करना होगा। इस तिकोनी पृथ्वी, चाँद, सूरज, भूमण्डल सबके बारे में ज्ञान करना होगा। सात समुद्र और तेरह नदियों की कथा जाननी होगी। पहाड़-पर्वत और बन्दरगाहों की कहानी समझनी होगी। इस दुनिया में कितनी किताबें हैं। हजारों-हजार, लाखों-लाख उनमें कितना ज्ञान, कितनी किस्म की बातें हैं, तुझे सब पढ़नी होंगी। पढ़कर सब-कुछ जानना होगा।

'क्या, दुनिया में इतनी किताबें हैं?'

'हाँ हैं। यहाँ रहकर तुझे ये सब कुछ नहीं मिलेगा। यहाँ तुझे पढ़ने को भला कितनी किताबें मिलेंगी। शहर चला जा। पास के शहर नहीं। दूर-दूरान्तर के शहर जा। तू सीधे कुमिल्ला चला जा।'

'चला तो जाऊँगा। खाऊँगा क्या? पढ़ाई के लिए रुपए कौन देगा?'

'दूसरे की माँ को माँ कहना, दूसरे की बहन को बहन बनाना, भगवान तुझे भूखा नहीं रखेगा। पढ़ाई-लिखाई के प्रति तेरा लगाव देखकर कोई तुझे सफ़ीस नहीं माँगेगा। लोग अपने पैसे से तेरे लिए किताबें खरीद देंगे।'

अनन्त इन सब बातों को सुनता और रात-रात भर उन पर विचार करता। आजकल एक अनजाना रहस्य-लोक उसे रात-दिन संकेत से अपनी ओर बुलाता दिखता। एक अनास्वादित आनन्द के उन्माद से कभी-कभी उसका मन भयंकर चंचल हो उठता था और एक दिन उसने अपनी मनचाही वस्तु की तलाश में कदम बढ़ा ही दिए।

जिस दिन मालो लोगों की एकता में दरार पड़ी, उसी दिन से उनके दुःख का समय शुरू हो गया। अब तक उनकी एकता वज्र की तरह मजबूत थी। टोले में वे गहरी सामाजिकता के सुदृढ़ बन्धन में बँधे हुए थे। किसी में उन्हें कुछ कहने का साहस नहीं था। एक दिन टोले में एक जात्रा-दल घुस आया और सबसे पहले इस एकता पर आघात किया। जात्रा-दल के कर्ता-धर्ता धन और बुद्धि दोनों दृष्टियों से मालो लोगों से बहुत आगे थे। ताकतवर भी। धनबल की अपेक्षा उनका बुद्धि-बल कहीं अधिक था।

इसी के प्रयोग से उन्होंने मालो लोगों में दरार डाली। जिस दिन विरोध का सूत्रपात हुआ, उसके ठीक दूसरे दिन वे तामसी के बाप के घर जा धमके अब तक तो वे केवल तबले का प्रयोग जानते थे, अब हारमोनियम, वंशी और बेहाला²³³ भी आ जुटे। गीति-नाट्य की तीन तरह की तीन किताबें भी आ गई थीं। पहले जिस नौटंकी का कभी किसी ने नाम भी नहीं सुना था। ऐसी ही एक नई नौटंकी की तालीम का काम शुरू हुआ। तामसी का बाप पहले सेनापति बनता था, अब उसे राजा का पार्ट दे दिया गया। उन्होंने यह घोषणा की कि मालो टोले के युवकों को वे 'सखी' का पार्ट देंगे। हालांकि उनके अभिभावकों ने इस पर सख्त मनाही कर दी कि उनके युवक नौटंकी में भाग नहीं लेंगे। नौटंकी वाले बीड़ी पीते हैं, बबरी-कट बाल रखते हैं। गुरुजनों के सामने बेलिहाज बातें करते हैं। देवी-देवताओं के गीत छोड़कर खुलेआम रास-लीला के गीत गाते हैं। इससे उनके बच्चों के चाल-चलन खराब हो जाएंगे।

दूसरे टोले से सखियाँ खोजी गईं। लेकिन साज-महड़ा¹³⁴ की गई मालो टोले में। तामसी के बाप पर मालो लोगों की भयंकर नाराजगी थी। पर मालो औरतें साज-महड़ा देखकर ऐसी मुग्ध हुईं कि रोते-हँसते उन्होंने तय कर लिया कि वे अपने बच्चों को सखी की भूमिका करने देंगी।

अगली नौटंकी में मालो टोले के कुछ युवक अन्य टोले के युवकों के साथ 'सखी' बनकर नाचे। उन्होंने बाएँ हाथ को कमर पर रखकर दाहिने हाथ की उंगली टुड्डी पर टिकाए हुए गीत गाए-

'चुप चुप शर्म से चले जाएंगे,
धीरे-धीरे चलो, हे सखियो !
हमारी आँखों में धूल झोंक
सखी ने अपना प्रेम छिपा लिया
अब तो भँवरे गुंजार करने लगे
रात न हो जाए, चुप चुप चलो।' ²³⁵

उनकी माँएँ और बहनें नाच देखकर मुग्ध हो गई थीं। नाच जितना सुन्दर था, गीत उससे भी ज्यादा मधुर इन गीतों का भाव, भाषा और भंगिमा मालो लोगों के अपने गीतों

233. तार वाला एक वाद्य।

234. रिहर्सल

235. चुप चुप चुप लाजे सोरे जाबे/धीरे-धीरे चलो सजनीलो/धूला दिये सखी आमादेर चोखे गोपने प्रणय रेखेचे ढेके/एबार भूमर जाबे लो छूटे/चलो ना जेते यामिनी लो चुप चुप इत्यादि

से बिल्कुल अलग थी। इनकी लय भी किसी दूसरे राज्य की थी। इन नौटंकियों ने उन्हें ऐसा मोहा कि वे दूसरे दिन से ही जात्रा-दल के प्रति अनुरक्त हो गए।

गाँव के अन्यान्य मालो लोगों ने उनके काम में बाधा डाली। उन्हें अलग-थलग करने का डर दिखाने लगे। जिन लोगों पर जात्रा का गहरा प्रभाव पड़ रहा था, उन्हें समझाने की कोशिश की कि ये केवल 'जात्रा-गान' नहीं हैं। इनका भाव खराब है, अर्थ खराब है। यह हमारे युवकों का दिमाग खराब कर देगा। लड़कियों को बिगाड़ देगा, लेकिन उन पर कोई फर्क नहीं पड़ा। उल्टे उन्होंने कहा- जाओ, जाओ, रहने दो। मालो लोगों के गीत भी कोई गीत हैं। जो गीत हमारे हैं, वहीं इनके हैं। हम तो यही गाएंगे-

‘आज रात सपने में

श्याम के श्यामल सौन्दर्य ने

मेरी आँखों को छुआ,

फूल की शय्या छिन्न-भिन्न हो गई

छिन्न हो गए राधा के वस्त्र’²³⁶

क्या गीत हैं! जात्रा में गाए जाने वाले गीतों के शब्द जितने सुन्दर हैं, सुर उतने ही मीठे। सुनते ही तन-मन पर जादू छा जाता है। हम अपने लड़कों को जात्रा-दल में भाग लेने देंगे। चाहो तो तुम हमें समाज से बाहर निकाल दो।

इस तरह मालो लोग सीधे-सीधे दो दिलों में बैठ गए।

एक दिन सुबला बरु को घाट पर अकेले पाकर मंगला बरु ने कहा- ‘रास्ते में विपत्ति खड़ी है। सावधानी से आगे बढ़ना। शायद कोई तुम्हें तंग करे। महन कहीं से ये बात सुनकर आया है। उसका परिचय पूछने पर मंगला बरु ने पाटनी टोले के अश्विनी का नाम लिया। नाटे कद, घुंघराले बाल वाला अश्विनी पहले किराए पर नाव से लोगों को नदी पार कराता था। अब जात्रा-दल में राजा का भाई बनता है।

यह बात एक दिन सच साबित हुई।

सुबला बरु कलसी और कपड़े लेकर घाट पर गई थी। उसने गौर किया कि अश्विनी थोड़ी दूरी पर खड़ा होकर उसी को घूर रहा था। जैसे ही उसकी आँखें सुबला बरु से मिली, वह गाने लगा-

‘जब मेरा बन्धु एक धवल घोड़े पर सवार था

और मैं स्नान के लिए गई थी,

236. आजो राति स्वपने श्याम रूम लेगेछे आमार नयने/फूलेर शय्या छिन्न-भिन्न, छिन्न राधार बसने

एक पागल हवा का झोंका आया।

मेरा आँचल उड़ गया,

मेरे बन्धु ने मेरा सर्वांग देख लिया।’²³⁷

गीत का मर्म समझना मुश्किल नहीं था। अब उसके लिए सहना मुश्किल हो गया था। वह दोपहर में घर आकर कुछ पका रही थी कि उसे उसी गीत की बाद की कड़ियाँ सुनाई पड़ीं। वह उसके घर के सामने से धीमे-धीमे गुजरता हुआ गाता जा रहा था-

‘हे बन्धु,

जब तुम राज-दरबार जाते हो,

मैं उसी समय खाना पकाती हूँ।

कच्चे चूल्हे और भीगी लकड़ियों के धुएँ के बहाने

आँसू बहाती हूँ।’²³⁸

और एक दिन जब वह खाने बैठी ही थी कि गीत की एक और कड़ी सुनाई पड़ी-

‘जिस समय मेरा बन्धु बंसी बजाते हुए गुजरता है,

मैं उस समय खाना खा रही होती हूँ,

नहीं बोलती कुछ सास-ननद के डर से,

आँचल भीगता रहता है आँखों के जल से।’²³⁹

अब सुबला बऊ से और नहीं सहा गया। जूठे हाथों वह झमककर उठी। बाहर आई और चीखकर बोली- ‘मेरे घर में न सास है, न ननद। मैं किसी बाप के बेटे से नहीं डरती। हिम्मत है तो आगे आ। आज ही! असल बाप की औलाद है तो अभी सामने आ के दिखा! भरी दोपहरी में सबके सामने मैं तुझे अपने घर में बुला रही हूँ, आ तो सही!’

उसकी चीख सुन मंगला बऊ, दयालचाँद की विधवा बहन और कालोबरन की माँ अपने-अपने घरों से बाहर निकल आईं। कारण समझते ही महन, रामदयाल तथा गुरुदयाल लाठी लेकर अश्विनी को पकड़ने दौड़े। लेकिन तब तक वह सिर पर पैर

237. जेई ना बेला बन्धूरे धईल घोड़ा दौड़ाईया जाव/से बेला आमि नारी सिनाने जाई/कु खेने बातास आइलो बुकेर कापड़ उड़ाइलो/प्राण बन्धू देखिलो सर्वगाड

238. जेइना बेला बन्धूरे राज दरबारे जाओ/सेई बेला आमि रांधि/काचा चूल्हा आर भीजा काष्टेर बन्धू/धुआँर छलना कोईरे कादि

239. जेईना बेला बन्धूरे बाँसिटी बजाइया जाओ/सेई बेला आमि नारि खाई/सासुड़िर ननदीर डरे किछू ना बलिलाम तोरे/अंचल भिजिलो आँखिर जले।

रखकर बाजार की ओर भाग चुका था।

क्यों रे महन, क्यों रे साधु के बाप, मधू के बाप ! ये मेरे बाप का गाँव है, भाई का गाँव है। यहाँ मैं किसी के डर से कुछ नहीं कहती। यहाँ मुझे छोड़ने वाला कोई माई का लाल अभी पैदा नहीं हुआ। मेरी छोड़ो, मैं पूरे मालो टोले की बात कर रही हूँ। आखिर दिन पर दिन यहाँ होता क्या जा रहा है ?

रामदयाल और गुरुदयाल के अलावा टोले-मोहल्ले के सभी लोग इस बात से आग-बबूला हो गए थे। सबने तय किया कि अश्विनी को उचित सजा देंगे लेकिन जात्रा में आकर जब उसने ऊँचे स्वर से गाना शुरू किया-

‘हे मेरी बेटी,
अब आँसू न बहा
हरि का नाम ले,
हरि में डूब।’²⁴⁰

यह भजन सुन मालो लोगों का गुस्सा शांत हो गया। बस महन के मन में सुबला बरु की बातें जलते हुए अंगारों की तरह धधकती रहीं।

मालो लोगों की अपनी एक संस्कृति थी। गीतों, किस्सों-कहानियों, मुहावरों, लोकोक्तियों और लोक-साहित्य की विभिन्न विशेषताओं से परिपूर्ण एक अपूर्व संस्कृति। पूजा-पर्वों पर हँसी-मजाक एवं रोजमर्रा के जीवन में आत्माभिव्यक्ति की भाषा लिए उनकी संस्कृति सचमुच अत्यन्त विशिष्ट थी। मालो लोगों को छोड़कर अन्य किसी के लिए इस संस्कृति में प्रवेश कर उससे रस-ग्रहण का रास्ता इतना सुगम नहीं था। क्योंकि इनमें साहित्य का आनन्द लेने की जो प्रवृत्ति थी अन्य लोगों की अपेक्षा वह काफ़ी आजाद किस्म की थी। पीढ़ियों से चले आ रहे उनके गीतों का सुर जितना मधुर था, उनका भाव उतना ही मर्मस्पर्शी। उन गीतों का भाव, उनके सुरों का मर्म समझ पाना सबके लिए सहज नहीं। अपनी संस्कृति को मालो लोगों ने अपने प्राणों में बसा लिया था। भले ही दूसरे लोग इसे विद्रूप की नजर से देखते रहे हों। आज न जाने कैसे उनकी यही संस्कृति टूटन के कगार पर थी। उन गीतों में अब जी खोलकर प्राण भरने और उनसे मन-प्राणों को सम्मोहित करने की बात न जाने कहाँ चली गई थी ? न जाने कैसे एक वज्र जैसा मजबूत बन्धन शिथिल होकर खुल-खुल जा रहा था। गाँव में आया जात्रा-दल जैसे इस संस्कृति की जड़ पर कुठाराघात कर रहा था।

अधिकर लोगों ने हताश होकर समय की धारा में खुद को बहने के लिए छोड़

240. हरिर नामे मजे हरि बोले डाक/अविराम केनो कांदबे बेटीईईईईईई.

दिया। लेकिन महन अभी तक निराश नहीं हुआ था। उसका गला अच्छा था। गाने में उसका मन भी काफ़ी रमता था। बाप-दादों से उसने भटियाली-गान, हरिवंश-गान और नाम-गान सीखे थे। आधुनिक कहलाने वाले मालो इन सब गीतों को धीरे-धीरे भूलते जा रहे थे। नए किस्म के हल्के-फुल्के भावों वाले सस्ते गीतों ने आकर इन गम्भीरतापूर्ण, जीवन्त भावसमृद्ध गीतों की जगह पर कब्जा जमा लिया था। इस दुःख को वह बहुत दिनों से महसूस करता आ रहा था लेकिन समय की धारा को रोकने की ताकत थी किसमें। अब समय बदल चुका था। अच्छी चीजें पुरानी होती-होती विलीन हो जाएंगी और हल्की चीजें आकर दस लोगों की महफ़िल में अड्डा जमा लेंगी। एक दिन मोहन ने कुछ लोगों को बुलाया और खंजनी तथा रस-माधुरी लोकवाद्य बजाते हुए दोपहर में ही गाना शुरू कर दिया-

‘गौर रूप अपरूप है,

एक बार देख लें तो भुलाया नहीं जा सकता,

मैं गई थी सुरनदी के किनारे,

डूब गई मेरी दोनों आँखें।’²⁴¹

तो जात्रा-दल के दो युवकों ने भी इनके जवाब में सुर मिलाकर गाया-

‘हे सेनानी,

युद्ध के लिए तैयार हो जाओ।

सैनिको, युद्ध का आयोजन करो।

हे सेनानी,

युद्ध के लिए तैयार हो जाओ।’²⁴²

यह स्थिति देखकर महन के मन में बड़ा दुःख हुआ। उसके देशी लोकगीत इन गीतों के तले कहीं डूब न जाएँ। उसके दल के और लोग भी अनमने हो गए थे। महन को लगा जैसे वे भी जात्रा-दल के गीतों की ही तारीफ़ कर रहे हैं। वे यह कहते हुए बैठक से उठ गए कि आजकल दोपहरी में गीत नहीं जमते।

और लेकिन गाँव में ऐसे कुछ लोग अभी भी बाकी थे, जो इन गीतों को सुनना चाहते थे। एक दिन शाम को यह सुना गया कि आज रात कालोबरन के घर में एक नई तरह की नौटंकी खेली जाएगी।

241. गौर रूप अपरूप देखले न जाए पासरा/आमि गया छिलाम सुरधुनि/डूबलो दुई नयनतारा।

242. साज साज सैन्य गण साज समरे/तोमरा जतो सैन्य गण युद्धेर करो आयोजन/साज साज सैन्य गण साज समरे

मालो लोगों में जो अब तक अपनी संस्कृति को बचाने में तत्पर थे, उन्होंने यह सुना तो हाय-हाय करने लगे। कुछ लोगों ने कालोबरन को यह समझाने की कोशिश की। बोले- 'देखो बैपारी ! मालो टोले के मुखिया लोग जैसे दयालचाँद, किशनचंद, हरिमोहन सभी का झुकाव तो जात्रा-दल की ओर हो ही चुका है। पहले एक का हुआ फिर दूसरे का हुआ। हमारे बीच खोंचाखोंची चलती ही रहती है। पता नहीं किस दिन हम लगगी, डाँड़ उठाकर मारपीट करने लगें। अब बस यही वाकी हैं।'

जो लोग मालो टोले पर वज्र गिराने आए, तुम भी अंततः उन्हीं के साथ हो लिए। नहीं बैपारी नहीं, तुम हमारे ही दल में रहो। क्यों न हम गाँव के खास-खास लोगों को एक जगह बुलाएँ और बातचीत के जरिए अपनी पुरानी एकता को कायम कर लें। हम जात्रा किस लिए गएँ, क्या हमारे अपने गीत नहीं हैं? हमारे मय-मुरब्बियों²⁴³ ने क्या हमारे लिए कम गीत छोड़े हैं, उन गीतों के सामने आज के जात्रा-गीत तो किसी बाँदी²⁴⁴ जैसे हैं। आगे मुझे घोर दुर्दिन दिखाई पड़ रहे हैं। जात्रा के जरिए टोले में जिसकी शुरुआत हो चुकी है, उसका अन्त कितना भयानक होगा, यह सोचने की बात है। अब तुम्हीं हमारे लिए भरोसा हो। आज तुम्हारे घर में जात्रा-गान होने का मतलब है, मालो टोले की छाती पर बैठकर जात्रा का राज करना। लेकिन कालोबरन ने इन बातों को अनसुना कर दिया और चुपचाप बैठा रहा। उसे समझाने आए लोग उदास मन से लौट गए थे।

'ओ मोहन, ओ मनमोहन ! और अब किसी का भरोसा नहीं रहा। काल नाग ने अन्त में उसे भी डँस लिया।'

मनमोहन ने निस्तेज वाणी में कहा- 'हमें छोड़ सब लंका पार उतर गए। दयालचांद गया, किशनचंद गया, गौरकिशोर गया, कालोबरन भी गया ! सब चले जाएँगे।'

'नहीं नहीं महन ! सब नहीं जाएँगे।' सुबला बऊ के दृढ़ कण्ठ-स्वर ने सबको चौंका दिया था- 'दयालचांद गया, किशनचंद गया, अरे महन तू तो नहीं गया। तू है, साधू का बाप है, मधू का बाप है। छह कुड़ी²⁴⁵ घरों में से तीन कुड़ी ही तो गए हैं। तीन अभी भी बाकी हैं। इन्हें लेकर ही हम अन्त तक टिके रहेंगे। असहाय होकर हम खुद को नहीं डुबोएँगे। जितने घर बचेंगे, उन्हें लेकर ही हम अन्त तक लड़ाई लड़ेंगे।

243. श्रेष्ठ पूर्वज

244. दासी

245. एक सौ बीस, एक कुड़ी का अर्थ बीस की संख्या होता है।

मालो टोले में जिन्होंने संकट को आमंत्रित किया है और एक साबुत धागे के दो टुकड़े कर डाले हैं, हम उनके सामने किसी कीमत पर नहीं झुकेंगे। अगर आज कालोबरन बैपारी के घर में जात्रा हो तो अपने घर में भी महफ़िल जमाओ ! आज कुछ हेस्त-नेस्त हो जाए।'

सुबला बरु महन के साथ बैठी। दोनों ने मिलकर अपनी यादों के झरोखे खोले और भूले-बिसरे मालो गीतों को यादकर उन्हें मन ही मन संजोना शुरू किया। उन गीतों में से उन्होंने वे गीत अलग कर लिए जो महफ़िल में रंग जमा सकते थे। मन ही मन उनकी एक सूची बना ली गई।

'ये रहे विरह के गीत। इन्हें देह तत्त्व²⁴⁶ के बाद गाना होगा। सुबह-सुबह भटियाली, रात के अंतिम पहर में हरिवंश गाएंगे। मुँह अंधेरे भोर-गान के बाद पौ फटते ही गोष्ठ-गान और महफ़िल उठाने से पहले मिलन-गीत गाने होंगे।'

जात्रा वाले शाम ढलते ही बेहला और हारमोनियम का संदूक तथा बायाँ-तबला हाथों में लेकर कालोबरन के दरवाजे पर आ जमे थे जब उन्होंने ढोलक पर थाप दी तो महन के दल ने खंजनी और रस-माधुरी पर तान छोड़ी। दोनों दलों के बीच की दूरी ज्यादा नहीं थी। यहाँ की बात वहाँ आसानी से सुनी जा सकती थी।

इस घर में जब वीर-विक्रम की कहानी चल रही थी तब महन के दल ने देह-तत्त्व समाप्त कर वियोग गीत शुरू कर दिए थे-

'भ्रमर जाकर कहना

काले के वियोग में राधा के अंग जले जाते हैं

न अन्न ग्रहण करती है, न जल, न संवारती है सिर के केश,
श्याम के विरह में राधा ने धारण किया पगली का वेश।'²⁴⁷

पूरा मालो टोला दो भागों में बँटकर दोनों घरों में बैठ गया था। अधिकांश लोग कालोबरन के घर में थे। उनके चेहरे पर नए गीतों के स्वागत का भाव था। महन की महफ़िल में बैठे लोगों के चेहरे पर संस्कृति-रक्षा की दृढ़ता थी।

राधा की विरह-वेदना सुर में बंधकर लोगों के बीच अद्भुत प्रभाव जमा रही थी। सबके मन में वेदना का हाहाकार उमड़-घुमड़ रहा था। दल के बड़े गायक उदयचांद ने रस-माधुरी के तार कसते-कसते कहा, यहाँ वह गीत भी चल सकता था-

246. दार्शनिक गीतों के बाद

247. भोमर कड़क गया/कालियार विच्छेदे राधार अंग जाय जोलिया/ना खाय अन्न ना लए पानी/ना बाँधे माथार केश/तुई श्यामेर बिहने राधार पागलनीर वेश

‘जीवन किसकी छाया में शीतल होगा,
दयालु कृष्ण के बिना इस संसार-सागर में
और कौन बन्धु होगा।’²⁴⁸

पर कुछ लोगों को वह खास नहीं जँचा था। उन्होंने एक और गीत का सुझाव
दिया कि यह अधिक अच्छा रहेगा-

‘हे काले चाँद
तुम्हारी वंशी केवल राधा का नाम ही क्यों पुकारती है,
कृष्ण का क्यों नहीं?
हे कृष्ण, हे हरि,
तुम अपनी राधा को किसे सौंप आए
ब्रज के तो किसी घर में उसके लिए कहीं शरण नहीं।’²⁴⁹
मोहन को इस अवसर पर एक और गीत बहुत जँचा, कहा-
‘इस वृंदावन में
ब्रज की सारी गोपियों की आँखें बरस रही हैं
हाय-हाय कृष्ण कहते हुए
पशु पक्षी सब चुपचाप रो रहे हैं।’²⁵⁰

आज कृष्ण का मथुरा-गमन था। वृंदावन सूना था। सब एक साथ रो रहे थे।
पशु-पक्षी, गाय-बछड़े, द्वादश वन, यमुना का किनारा, ब्रज की चौतीस कोस की धरती
सब एक साथ रो रहे थे। गोपियों की आँखों से उमड़ी जलधारा से रास्तों पर फ़िसलन
हो गई थी। इस फ़िसलन से रथ के चक्के कितनी ही बार धँस गए थे। ब्रज की गोपियाँ
रो-रो कर कह रही थीं-

‘हे ब्रजनाथ,
मेरे प्राण भी साथ लेते जाओ
अपना रथ कालिन्दी के तट पर रोक दो।’²⁵¹

-
248. जीवन जुयाबो शेषे कार काछे/दयाल किशन विने बन्दू भवे के आछे
249. कि गो काल शशि तोमार बांसि केने/राधा बोलि कृशन बोले ना/दुखिनी राधारे
हरि सपला कार ठाई/ब्रज गोपिर घरे-घरे मिले ना ठाई मिले ना दाड़ाई बार
250. एही वृन्दाबने ब्रज गोपीगणे झुरी आछे दु नयाने/पशु पक्षी सबे कांदि छे नीरवे हाय
हाय कृष्ण बोले
251. प्राण मोरे नेव रे संगेते/ब्रजनाथ राखो रथ कालिन्दीर तटेते

लेकिन कृष्ण की जात्रा नहीं रुकती। गोपियों की इच्छाओं और उनके प्रेम को दलित-मथित करते उनके हृदय को विदीर्ण करते हुए कृष्ण का रथ चला गया। गोपियाँ आज हर दृष्टि से कंगाल थीं। लेकिन उम्मीद थी कि अब भी साथ नहीं छोड़ रही थी। गोपियाँ कह रही थीं कि-

‘अगर मरकर भी तुम्हें पा सकूँ

तो इन प्राणों को शांति मिले

और चित्त की जलन को ठण्डक मिले।’²⁵²

एक वेदना विधुर बोझिल परिवेश के बीच गीत समाप्त हुआ। उस घर से तब एक वीरत्व-गान का सुर सुनाई पड़ा-

‘देवों और दानवों में

युद्ध शुरू हुआ,

जो बड़ा भयंकर था।’²⁵³

क्षणिक विश्राम लेते हुए उदयचांद बोला- ‘जब युद्ध शुरू ही हो गया तो फिर जम कर हो। मोहन, अब कोई भटियाली गीत याद कर।’

रात बढ़ने लगी थी। कालोबरन के घर से हंसी-ठट्टों की आवाजें आ रही थी। लग रहा था कोई मजाकिया अभिनय कर रहा था। मालो के कच्चे-बच्चे, सास-बहुएँ, ननद-भौजाइयाँ सब वहीं जुटे थे। मोहन के घर की जनता धीरे-धीरे कम हो रही थी। लेकिन गायकों को इसकी चिन्ता नहीं थी।

रात गम्भीर हो चली थी। भटियाली गाने का समय हो गया था। यह ऐसा समय था जब जीवन की दरारों से जीवनातीत वस्तुएँ झाँकती दिखाई देती हैं। अभी कान लगाकर रात की धड़कनों को सुनते-सुनते अनेक गम्भीर भावों के अचीन्हे स्पर्श अनुभव किए जा सकते थे। अनेक अव्यक्त रहस्यों की विश्वातीत सत्ता इस समय खुद आकर मनुष्य के मन की निस्तब्धता से बात कर जाती थी। जो बातें भटियाली के सुरों में गूँथी जा सकती थीं, उन्हें आम बोलचाल की भाषा में बताना मुश्किल था।

मोहन के दल ने अब जो गीत पकड़ा, उसकी प्रतिध्वनि तितास के उस पार तक गूँज रही थी-

‘हे प्यारे कन्हाई,

दोपहरी ढल चुकी है

252. मोले नि गो पाबो ए प्राण जुड़ाबो/जाय-जाय चित्त ज्वले

253. लागलो विषम युद्ध एबार देवता दानवे/लागलो विषम युद्ध एबार

राधा का हृदय काँप रहा है
 मथुरा की हाट जल्दी ही उठ जाएगी
 हे कन्हाई,
 कांस नदी के उस पार तुम्हें ले जाने को केवट खड़ा है
 राधा के दधि-पात्र को तुमने ऐसा छुआ
 कि वह टूटकर गिर गया, सारा दही बिखर गया।'²⁵⁴

यह राधा वृंदावन की प्रेमाभिसारिका राधा नहीं थी। यह जन्म और मृत्यु के दो किनारों के बीच प्रवाहित मानव-आत्मा थी। कंस नदी अर्थात् यमुना नदी। यहीं जन्म-मृत्यु की सीमा रेखा थी। आत्मा अपने क्रीड़ा-घर को छोड़ रेतीली जमीन को ठेलती चल रही थी। सीमाहीन अंधकार से उसके दोनों किनारे ढँके थे। कृष्ण के वेश में परमात्मा ही आत्मा को भवसागर के पार ले जाने वाले थे। आत्मा निष्कलंक है तो क्या, उसका पार्थिव शरीर दधिपात्र की माया से लिप्त था। लेकिन नारायण उसे समस्त इहलौकिक कलंक-कालिमा से मुक्त कर अपने में लीन करने के पहले पूर्ण शुद्ध कर लेना चाहते थे। इसलिए उन्होंने दही से भरे बर्तन को छूकर उसे फ़ोड़ दिया और दही को बिखरा दिया। मालो लोगों को इस गीत का अर्थ पूरी तरह समझ में आया हो या नहीं, गीत के सुर ने परलोक की किसी जीवनातीत वाणी को उन तक पहुँचा दिया और वे उद्दीप्त हो उठे।

‘कोयल काली है,
 ब्रज के हरि काले हैं,
 खंजन पक्षी का हृदय भी काला है
 चित्त को स्थिर नहीं रख पाता
 लेटने पर नींद नहीं आती
 बैठे-बैठे आँखें झपकती हैं
 सिरहाने और पैताने के तकिए मैं कलेजे से लगाए रखता हूँ।’²⁵⁵

परम तत्त्व से मिलन का चरम-क्षण घनीभूत होता जा रहा था। धीरे-धीरे बढ़ती

-
254. कानाई रे बेला होइलो दुइरे पर/प्राणटी काँपे राधार थर-थर रे/मथुराय बिकी जाय रे बोइया रे सुन्दर कानाई रे/कानाई रे, पार होई ते कंस रे नदी/नष्ट होइलो राधार भाण्डेर दधि र ओ कानाई/ नष्ट कोरली दधिर भाण्ड छुईया रे सुन्दर कन्हाई रे
255. कालो कालो कोकिल कालो कालो ब्रजेर हरि/खंजन पक्षीर बुक कालो चित्त धोरिते ना पारि/सूतिले ना आसे निद्रा बोसिले झूरे आँखिं/(आमि) सीथान बालिश ओऐथान बालिश बुकेतुइला राखी

रात की गहनता यही सुना रही थी। चारों ओर अन्तहीन कालिमा छाई थी। इसी स्निग्ध अपरूप रूप-मधुरिमा के लिए मन प्यासा था। अनन्त की रूप-सुधा पीने के लिए यह प्यास गीतों में मुखर थी। समय जैसे रुक-सा गया था। यह एक ऐसा समय था, जब लेटने पर नींद नहीं आती और बैठे-बैठे आँखें झपकती हैं। शायद अब रात अधिक बाकी नहीं थी। हरिवंश गान का समय हो गया था। इस गान का हरिवंश नाम क्यों पड़ा, मालो यह नहीं जानते। बाप-दादों से सीखा तो बस इतना कि हरिवंश नाम का एक गीत होता था। इसमें विरहिणी आत्मा की गम्भीर प्रार्थनाएँ थीं। इसका सुर अत्यन्त हृदयस्पर्शी था। कण्ठ खोलकर गाने से इसकी ध्वनि दिग-दिगन्त में ध्वनित हो उठती थी और इसे केवल उदयचाँद ही दिल खोलकर गा सकता था-

‘मिट्टी के ऊपर पेड़ों की कतारें,
उसके ऊपर डालें,
डालों पर बगुले का निवास,
मैं जीवन को छोड़ कितने दिन बचा रहूँगा,
नदी के उस पार कृष्ण का वास है, राधा कैसे जाने।’²⁵⁶

इन वाक्यों की ओजस्विता किसी के पल्ले पड़ी हो या नहीं, स्वर-लहरी की उदात्ता ने जीवन रूपी राधिका के कर्णधार कृष्ण को सहज ही खोज निकाला और मरण-नदी पार कर ली। इधर रात अपने अंतिम पड़ाव पर थी। उधर कालोबरन के घर से तब भी जात्रा के स्वर सुनाई पड़ रहे थे-

‘रात भर माला बनाई तुम्हारा मुँह चूमा,
चीनी के पान की तरह तुम्हारा मुख,
हाय रे मैं जान दे दूँ।’²⁵⁷

लेकिन इस गीत के बजाय भटियाली का आकर्षण अधिक होने के कारण दल के दल लोग कालोबरन की महफ़िल उजाड़ मोहन की मजलिस जमाने आ बैठे थे। उत्साह में आकर उदयचाँद ने अपना सबसे प्रिय गीत शुरू किया। सब जानते थे इसे गाते हुए वह उठकर नाचने भी लगता था। उसके साथ और भी दो चार लोग ताल पर थिरकने लगते थे।

उस घर में वे अन्य लोगों के गीत केवल सुन रहे थे। गाने वाले अकेले गा रहे

256. माटिर ऊपरे वृक्षरेर बस्ती तार ऊपरे बगुलार बासा/आमि जीवन छाड़ा थाकिबो कोतो काल/नदीर एई पारे कानाइयार बस्ति राधिका केमोने जाने

257. सारा राति माला मुखे चूमूँ खाई रे/चीनी पाना मुख खाना तोर आहा मोरे जाई रे

थे। लेकिन इस घर में जो गीत गाए जा रहे थे, वे मालो लोगों के हृदयों से जुड़े गीत थे। ये जितनी भी दूर से सुने जाएँ, लेकिन इनके सुर को कानों में जाने से कोई नहीं रोक सकता था। वैसे ही ये प्राणों के भीतर अनुरणित भी हो उठते थे। एक ने शुरू किया तो पास बैठा हर मालो गाने लगता। दूर बैठा हो तो मन ही मन गुनगुनाने लगता। आज वे सभी उदयचाँद सहित स्वतःस्फूर्त आनंद विजड़ित हो गा रहे थे-

‘हे मेरे बन्धु, मैं क्या करूँ

हे श्याम, तुमने राधा को कलंकिनी कर दिया

मथुरा की हाट में खरीददारी खत्म हुई

अब न तेल है ना बाती, किससे हो रोशनी

कौन घर बनाएगा, कौन होगा उसका स्वामी

चरागाह सूखकर ठन-ठन कर रहे हैं

मैदान सूखे हैं, किनारे डूब रहे हैं

गंगा प्यास से मर रही है और शीत से मर रहे हैं ब्रह्मा’²⁵⁸

उसी समय कौआ बोल उठा। चारों ओर सफ़ेदी फैलने लगी थी। महफ़िल की रोशनी बुझा दी गई थी। कालोबरन का घर बिल्कुल नीरव और निर्जन हो गया था। लेकिन मोहन के बरामदे में तिल भर बैठने की जगह नहीं थी। विजय-गर्व से उल्लसित मोहन कह उठा- ‘अतिथि गण दो-चार नाम-गान²⁵⁹ करके जाएँ। मैं खोल, करताल लेकर आता हूँ।’

नाम-गान कुछ कठिन है, इसलिए बहुत दिनों से यह नहीं गाया जाता था। आज सालों बाद इस दरवाजे पर मालो समवेत हुए हैं। ऐसा दिन फिर कब आएगा। इसलिए आज एक बार जी-भर कर कीर्तन करेंगे। इसका सुर काफ़ी ऊंचा होता था। कीर्तन गाने के लिए गले में ताकत की जरूरत पड़ती थी। तड़ी-घड़ी में गायक चार भागों में बँट गए और टुकड़ों-टुकड़ों में कीर्तन शुरू कर दिया गया। एक कीर्तन में एक प्रहर लगता था। महन ने पूछा- ‘क्या गाना है, सहचरी या वस्त्र-वरण!’

‘सहचरी ही ठीक रहेगा।’

258. ना ओरे बन्धू बन्धू कि आरे बन्धू रे/तुई श्यामे राधारे करिली कलंकिनी/मथुरा हाटे फुराहिलो बिकीकिनी/ना ओरे बन्धू/तेल नाई सलिता नाई किसे ज्वले बाति/केवा बनाइलो घर केवा घरेर पति/ना ओरे बन्धू-उठान माटी ठन-ठन पिड़ा निलो सोते/गंगा मईल जल तिरासे ब्रह्मा मईलो सीते

259. कीर्तन

‘सहचरी ! मैं क्या करूँ’, यह कह राधा ने आक्षेप शुरू किया। मैंने अपनी तपस्या से अर्जित सारा धन खो दिया। पहले जानती तो क्या प्रेम करती सखी ! अपने कुल का सम्मान उसके हाथ बेच देती ! जो भी हो, बड़ी कोशिशों से उसे भुलाया था, लेकिन तुम लोगों ने यह क्या किया ? चित्रपट पर उसका रूप दिखा, फिर क्यों मुझे उसकी याद दिला दी। अब तुम मुझे पकड़ो, मेरे प्राण निकलने का समय आ गया।

जब गीत शेष हुआ तब धूप चढ़ आई थी। इस कच्ची धूप की तरह मालो लोगों के मन भी स्वच्छ हो गए थे। बहुत दिनों के बाद आज वे प्राण खोलकर मिले थे और जी-भर कर गीत गाए थे, उनके मन की सारी ग्लानि, सारा क्षोभ दूर हो गया था।

लेकिन दो दिन के बाद जब कालोबरन के घर में बक्से भर-भरकर सजने-संवरने का सामान आने लगा और एक से एक पोशाकें पहनकर जात्रा-दल इधर-उधर चक्कर काटने लगा, तब मालो पिछला सब-कुछ भूल जात्रा की महफ़िल को भरने में लग गए। बच्चे-बूढ़े, स्त्री-पुरुष कोई पीछे नहीं रहा। सब गए। केवल दो लोगों को छोड़कर-सुबला बऊ और मोहन। अपमान से तिलमिलाती सुबला बऊ बिस्तर पर पड़ी रही और तीखी वेदना मोहन की दोनों आँखों से आँसू बन कर बरसती रही।

भासमान²⁶⁰

इस पराजय के बाद मानो मालो लोगों ने अपना अस्तित्व ही खो दिया। उनका व्यक्तित्व, विशेषताएँ और संस्कृति धीरे-धीरे विलुप्त होने लगी थी। उनकी एक निजता थी। सामाजिक रीति-नीतियों के अपने बन्धन थे। वे सब धीरे-धीरे शिथिल होते-होते छिन्न-भिन्न हो गए थे। एक साथ कोई काम करने की न तो उनमें शक्ति थी, न उत्साह। छोटी-छोटी बातों पर वे झगड़ पड़ते थे। यहाँ तक कि घाट पर किसकी नाव पहले लगेगी, इसको लेकर मारपीट तक होने लगी थी। नदी में पहले कौन जाल फेंकेगा, इस पर भी विवाद छिड़ जाता था। इससे टोले के दोनों प्रधान दलों के बीच जब-तब सिर-फुटव्वल की नौबत आने लगी थी। इस प्रदेश में ऐसा कभी नहीं देखा गया था। मालो-पूतों ने हुक्का छोड़, सिगरेट थाम ली थी। अब पहले की तरह वे गुरुजनों को सम्मान नहीं देते थे। चाचा-ताउओं आदि के प्रति उनके मन में न आदर बचा था, न संवेदना। अपने रोजगार के प्रति भी अब उनके मन में पहले जैसा भाव नहीं रहा। पहले तितास की मछलियाँ घटने पर मालो-पूत जैसे-तैसे प्रवास पर निकल जाया करते। अब उन्होंने यह काम भी छोड़ दिया था।

अब उनके टोले पर जात्रा-दल का आधिपत्य था। जब जिसके घर जी चाहा, जा बैठते और बतकही में रस लेते। बाद में इसमें औरतें भी शामिल होने लगीं। कुछ मालो लोगों के लिए यह असह्य था पर उनमें अब प्रतिवाद करने की ताकत नहीं बची थी। औरतों की नजर में जात्रा-दलों के नकली राजा, राजकुमार और सेनापति जैसे भावमूलक चरित्र आदर्श पुरुष बन गए थे। मालो बड़े भाई की पत्नी को केवल 'बऊ' कह कर संबोधित करते थे। जात्रा वालों ने उन्हें 'बऊदी' कहना शुरू किया। इससे औरतें भी खुश हुईं। ये मालो टोले की बऊदियों के पास जाते और उन्हें अपने टोले के

260. हवा में तैरते हुए।

युवकों के बारे में अनेक अश्लील एवं रसीली बातें सुनाते। जात्रादल के युवक खुद भी बऊदियों से मेलजोल बढ़ाने बेधड़क मालो घरों में घुसने लगे। बऊदियों से बातचीत तक ही मामला सीमित नहीं रह गया था। उन्हें अकेले-दुकेले घाट पर छेड़ने का सिलसिला भी शुरू हो गया था। उन्हें देख सीटियाँ बजाने अथवा जोर-जोर से विरह-गीत गाने जैसी कुचेष्टाएँ भी होने लगी थीं। मालो परिवारों के अंतःपुर की पवित्रता पर हमला शुरू हो गया था। मालो ये सब देखते थे, वे इसकी परिणति भी समझते थे, लेकिन उनमें सचमुच प्रतिवाद का साहस नहीं बचा था। वे या तो चुप रहते या फिर मौके-बेमौके खुद भी इस चक्रवात में शामिल हो जाते। बीच-बीच में इसे लेकर झगड़े भी हुआ करते। एक घर के लोग दूसरे पर तानाकसी करते तो दूसरे घर के लोग गुस्से में चिल्लाते, 'किचकिच बन्द कर, पहले तू अपना घर संभाल फिर दूसरे की पकी हुई सब्जी में नमक डालना।' सच यह था कि अपने घर पर नियन्त्रण की कोशिश में गृहकलह और बढ़ जाया करती।

इधर औरतों की विलासिता भी अपनी सीमा लाँघ गई थी। मौका पाकर मनिहार गहनों के तरह-तरह के नमूने, तेल, गमछा, साबुन लेकर गाँवों में फेरी लगाने लगे। एक तो टोले वालों के सामने रोजगार का संकट था। अगर रोजगार मिल भी गया, तो ये उसे करते नहीं थे। दुर्दिन के लिए पैसे बचाने का इनके पास कोई उपाय नहीं था। इनके दिन उपवास में कट रहे थे। भूखे बच्चे दिन-रात चीखते-चिल्लाते रहते। औरतें उन्हें भात की जगह तरह-तरह के डर दिखा चुप करा देतीं। परिवार-पालन में अपनी अक्षमता के कारण निरुपाय पुरुष या तो चुप्पी साधे शून्य में ताका करते या जोर-जोर से हुक्का पीते रहते।

धीरे-धीरे वे मनुष्यता के धरातल से बहुत नीचे उतर आए। यहाँ तक कि दुश्मन उनकी नाक की सीध में खड़ा होकर अपनी करामात दिखा जाता पर उनकी जबान तक नहीं खुलती। क्रोध से जलती आँखों को जमीन पर टिकाकर वे या तो उनके नाम पर थूक देते या तो गालियाँ देते। धीरे-धीरे वे रसातल की ओर जा रहे थे और एक दिन ऐसा हुआ जब लोन-कम्पनी के बाबू बन्दूकधारी प्यादों के साथ कर्ज-वसूली के लिए गाँव में आ धमके और मालो लोगों पर अकथनीय अत्याचार शुरू कर दिया। अपना सब-कुछ लुट जाने पर भी उन्होंने जबान नहीं खोली। गाँव के कुछ उत्साही धनिकों ने मालो लोगों के लिए शहरी ऋण-दाता कम्पनियों की एक शाखा अपने गाँव में यह कहकर खुलवाई थी कि ये कम सूद पर अधिक कर्ज देगी। इस लोभ के नशे में मतवाले होकर मालो लोगों ने वहाँ से दिल खोलकर कर्ज लिया था। यह बहुत पहले की बात थी। वही कर्ज हर साल चक्रवृद्धि ब्याज की दर से बढ़ रहा था। जब सूद

सहित मूल चुकाना उनके लिए असम्भव हो गया, तब कम्पनी ने इस बार प्यादों के साथ एक खूंखार किस्म के बाबू को भेजा। बाबू का नाम विधूभूषण पाल था। गाँव के पालों के साथ उसकी गहरी आत्मीयता थी। विधूभूषण ने उनसे मालो लोगों की माली हालत के बारे में अच्छी तरह पता कर लिया था, इसके बाद उसने मालो टोले जाकर अपना रौद्र रूप दिखाया। बूढ़े मालो लोगों को दाढ़ी पकड़कर खींचते हुए पानी में उतारा और उनकी ओर आँखें तरेरते हुए पूछा- 'बता, कितना कर्ज बाकी है तुझ पर!' ठण्ड का मौसम था। तितास के जल में खड़े थरथराते बूढ़ों के मुँह से झूठ नहीं निकल पाता था। वे चाहते तो झूठ बोल सकते थे, लेकिन तितास के जल में खड़े होकर उनके लिए यह करना असम्भव था। कोई बताता- दो रुपए हैं, कोई एक रुपए बारह आना। कोई कहता- कुछ भी नहीं है। इतना ठोंक-बजाव के बावजूद जब कोई वसूली नहीं हो पाई, तो क्रुद्ध होकर वह उनके घरों के बर्तन, सूत की पोटली और ऐसी ही रोजमर्रा की चीजें निकाल लाया और अपनी घोड़ागाड़ी में भरकर शहर ले गया। उनके जाते ही गाँव में हाहाकार मच गया। इस गाँव के सबसे बूढ़े रामकेशव, जिसका बेटा पागल होकर मर चुका था और जिसे अपनी जीर्ण-जर्जर देह खींचते हुए हर दिन नदी से मछली पकड़ने जाना होता था, उसे भी नहीं बख्शा गया था। विधू ने रामकेशव की लम्बी दाढ़ी पकड़कर नदी में कई डुबकियाँ लगवाईं। वह बेचारा न रोया, न चिल्लाया। अपना रोना-पीटना खत्म कर जब कुछ मालो रामकेशव को सांत्वना देने पहुँचे तो इतना ही कहा, 'ऊपर वाले ने पहले ही कब्र में पटक दिया है, अब रोकर भी क्या करेंगे।'

पाल लोग बाजार में दूकान लगाते थे। मालो उनसे उधार में बहुत सारी चीजें खरीदा करते। उसकी वसूली भी जरूरी थी। दूकानदार रोते-पीटते मालो लोगों को सांत्वना देने आए, पर साथ में यह भी कह गए, विधू पाल सख्त मिजाज है, लेकिन आदमी अच्छा है। तुम्हारा सब कुछ ले गया, परन्तु नावों को उसने छुआ तक नहीं।

पर दुःख के दिन भी स्थाई नहीं रहे। तितास फिर मछलियों से भर गई थी। मालो लोगों के पास पैसे आए। उन्होंने खोए बर्तन फिर से खरीद लिए। घर-घर में सूत कातने की धूम मच गई। नए-नए जाल बुने गए। इन जालों में नाना जातियों की मछलियाँ फँसी। मालो लोगों के चेहरों पर एक बार फिर से हंसी खिल उठी थी। लेकिन साल बीतते न बीतते यह हंसी फिर बुझने लगी। इस टोले के राधाचरण मालो ने एक सपना देखा था, जिसे सभी मालो ध्यान से सुन रहे थे। स्वप्न-कथा सुनने के बाद किसी ने कहा, 'अरे मूरख, क्या कभी ऐसा हो सकता है, तो कुछ ने अपने सूखे चेहरों से जताया, हो तो नहीं सकता, पर यदि हो जाए तो क्या कहने।'

रात को देखा सपना रात को ही खत्म हो जाता है। अक्सर सपने कभी सच नहीं

होते।

कभी-कभी सच भी हो जाते हैं। यशोदा-रानी ने सपना देखा था कि कृष्ण मथुरा की ओर चले जा रहे हैं। क्या नहीं गए? सुबला की सास ने सपना देखा था, मछली पकड़ने गया सुबला नाव से कुचलकर मर जाएगा। क्या नहीं मरा? अरे ये तो सपनों की बातें हैं। लेकिन अपने इस सपने की बात तो उसने सुबला के मर जाने के बाद बताई थी। पहले ही बता देती, सावधान हो गया होता। अभी तो कुछ न कह, सपने को फलित होने दे। फ़िलहाल चुप लगाए रह।

लेकिन स्वप्नदृष्टा चुप नहीं रहा। क्योंकि उसका सपना केवल रात का सपना नहीं था। दिन में भी उस सपने के लक्षण देखते हुए उसने सब-कुछ खोलकर कहा था- इतने दिन मैंने यह सब इसलिए नहीं कहा, क्योंकि तुम लोग मानते नहीं। यात्राबाड़ी की सीमा से आगे कुड़ोइल नाले के पास की रेतीली जमीन पर एक कुण्ड है। बाप-दादों के जमाने से हम देखते आ रहे हैं यहाँ पानी का स्रोत एकदम सीधा है। उस दिन मैंने जाल डाला तो वह उलट गया। क्योंकि धारा मुड़ गई थी। अचानक यह करिश्मा! तुम लोग तो इन दिनों रात को जाल नहीं फेंकते, इसलिए खोज-खबर भी नहीं रखते। मैं तो अब भी रात को जाल फेंकता हूँ। नदी के एक-एक पुर्जे को मैं अच्छी तरह जानता हूँ। कई दिनों से गौर कर रहा हूँ, नदी की धारा अपना रुख बदल रही है। उसका स्रोत तिरछा हो गया है। मैं चिन्तित हूँ, न जाने क्या होगा? मन में शान्ति नहीं है, केवल चिन्ता ही चिन्ता है। कल रात श्मशान के पास नदी में मैंने जाल फेंका था। वहाँ मछलियाँ नहीं थीं। कुछ आगे बढ़ा, वहाँ भी मछलियाँ नहीं थी। गरीबुल्ला पेड़ के नीचे गया, वहाँ भी मछलियाँ नहीं थी। मैंने गौर किया हर जगह धारा मन्द हो गई है। मछलियाँ दूर-दूर उछलती हैं, लेकिन जाल में नहीं आती। अन्त में मैं कुड़ुलिया नाले के मुहाने पर पहुँचा, देखा कि धारा लट्टू की तरह घूम रही है। मैंने जाल समेटा और नाव के पटरे पर लेट गया। नींद आँखों से गायब थी। बस एक ही चिन्ता थी- तितास के साथ न जाने क्या होने जा रहा है! यह सोचते-सोचने न जाने कब आँखें झपक गईं और मैंने सपना देखा कि तितास एकदम सूख गई थी। क्या यह सपना झूठा हो सकता है? मैंने सपने में ही देखा था, जिस नदी में बीस हाथियों की ऊँचाई वाले बाँस को डालकर भी नदी के तल को छूना मुश्किल था, उस तल को एक छोटा बच्चा पैदल-पैदल पार कर जा रहा था। बच्चे ने जहाँ-जहाँ पाँव रखे थे, वह जगह सूखती चली गई थी। ठन-ठन कर रही थी। मेरा दिल यह देख धड़क उठा था। हाथ-पाँव काँपने लगे थे। मैं अकेला था। ऐसा डरा, कि मुँह से चीख निकल गई। अन्त में मैंने तीन बार राम का नाम लिया तब कहीं जाकर डर कम हुआ। 'ऐसा सपना देखने पर क्या कोई फिर सो

सकता है! मैं भी नहीं सो सका।' श्रोताओं ने यह सुनकर संवेदना प्रकट की- आह रे, राधाचरण ने कितना बुरा सपना देखा। सबने कहा- जा सिर पर तेल लगाकर नहा ले।

आज लोगों ने सपने को सपना कहकर उड़ा दिया था। किसी ने उसका विश्वास नहीं किया। लेकिन एक कौतूहल मिश्रित आशंका ने काली छाया की तरह सबको घेर जरूर लिया था। कुड़ोइला नाले के मुहाने से उजान मैदान तक वे जाल फेंकने जाते थे। डरते-डरते बांस नदी में डालते और धड़कते दिल से जानने की कोशिश करते कि बांस नदी के तल को छू पा रहा था कि नहीं। नदी जहाँ से अपना बहाव बदल रही थी, वे उसे खोजते रहते थे। और अन्त में उन्होंने इसे पा ही लिया। कहीं कोई गड़बड़ जरूर हुई थी। वे पीढ़ियों से इस नदी से परिचित थे। उसके दिन-रात के संगी थे। इस नदी के मन की हर गली में इनका अबाध आना-जाना रहा था। नदी के नाड़ी-नक्षत्र को अपने नख-दर्पण में देख सकते थे।²⁶¹ फलतः बहाव के हल्के से परिवर्तन को देख ये समझ गए कि रोग की जड़ कहाँ थी? वे समझ गए थे कि वहाँ जरूर कोई बालू का टीला उभर रहा था। उनके इस अंकगणित में कहीं गलती नहीं थी। उतराती हुई बालुका भूमि एक दिन मोहन के जाल की खूँटी की पकड़ में आ गई। वह भाटे का अंतिम दिन था। बड़ी नदी ने तितास का सारा जल खींच लिया था। प्रायः हर भाटे के समय ऐसा होता था। पर ज्वार के समय जल वापिस आ जाया करता। तितास जितना लेती, उससे अधिक लौटा भी देती थी। जल का गौरव कभी मलिन नहीं होता था।

लेकिन मोहन का हृदय तड़-तड़ कर फटने क्यों लगा था?

उसने बचपन में एक किस्सा सुना था, जिसमें एक साधू खड़ाऊँ पहनकर पैदल नदी पार कर लेता था। ऐसा वह केवल अपने मन्त्र-बल पर करता था। उसने पाठ करने वालों से यह भी सुना था कि अगाध जल से भरी, उमड़ती हुई यमुना नदी को एक तूफानी बरसाती भयंकर रात में वासुदेव ने पैदल चलते हुए कृष्ण को लेकर नदी पार की थी। शायद वे देवता थे, इसलिए उनके लिए सब संभव था।

पर आज दिन-दहाड़े उसकी अपनी आँखों के सामने जो घटित हुआ यानी उसने बीच धारा में जाल फेंका, पर वह मिट्टी से छू गया था। यह देख उसकी नाव और वह खुद पूरी तरह काँप उठे थे।

उसे जैसे काठ मार गया था। घर लौटकर देर तक चुपचाप बैठा रहा। टोले के लोग बात करने आए तो क्रोध से फट पड़ा, 'जाओ, मरो! मालो सन्तानो, जात्रा करो, कवि-लड़ाई करो, नाचो, मारपीट करो, एक-दूसरे को चीथ खाओ, जो मन आए करो,

261. एर नाड़ी नक्षत्र तादेरं नख दर्पणे-यानी इसका पूरा लेखा-जोगा इनको कंठस्थ है।

अब कोई चिन्ता नहीं। नदी सूख रही है।’

‘क्या कहा? अरे मोहन! फिर से तो बोल..मनमोहना, फिर से तो कह, तूने क्या कह दिया?’

‘कह दिया, खुद नदी में जाकर देख लो।’

वहाँ से आधे मील की दूरी पर यात्रा-बाड़ी की सीमा थी। अपनी नावें लेकर लोग वहाँ पहुँचे और बाँस डाला। दूर-दूर तक कहीं गहरा जल मिला ही नहीं। जो नदी में नहाने उतरे थे, उनमें से एक गहरे जल की तलाश में पाँव दबा-दबाकर आगे बढ़ा और नदी के बिल्कुल बीच में जा खड़ा हुआ। पता चला कि वहाँ भी केवल गले तक पानी था। उसके जीवन में ऐसी आ चर्यजनक घटना पहली बार घटी थी।

बड़ी-बड़ी नदियों में अक्सर तट-कटाव होते हैं। नदी के दूसरे किनारे सूखा पड़ जाता है। नदियों का यही धर्म है। लेकिन तितास का धर्म यह नहीं था। इसके किसी किनारे पर तट-कटाव नहीं होता था। इसलिए जो किनारे सूख जाते थे, वे विस्तृत होते जाते और बारिश का इन्तजार करते रहते।

बरसात में सूखे का हर कोना जलमय हो जाता था और वर्षा के खत्म होने पर जल धीरे-धीरे सूखता था। लेकिन इस बार सारा जल कहाँ गया? कहाँ गई सारी मछलियाँ! तितास के दोनों किनारों के बीच नाले की तरह पतली जलरेखा बह रही थी। जो इस बात की गवाह थी कि कभी तितास जल से लबालब भरी एक नदी हुआ करती थी।

एक दिन दोनों किनारों की ऊँचाई को लाँघते हुए दूर-दूरान्तर से कुछ किसान अपनी लाठियाँ लिए आए और इस सूखी जमीन पर कूद पड़े। दो दलों में मारपीट हुई और किस हिस्से पर किसका कब्जा होगा, यह तय हो गया। मछरे दूर खड़े तमाशा देखते रहे। जब तक यह जमीन डूबी थी तब तक मालो लोगों की थी। अब जल नहीं रहा तो यह किसानों की हो गई। अब ये यहाँ बीज बोएंगे, फसल काटेंगे और कोठार भरेंगे। उनका यह कब्जा स्थाई होने जा रहा था। अब उनसे कभी कोई जमीन नहीं छीन पाएगा। दरअसल उन्होंने जिस चीज पर कब्जा किया वह एक क्रूर वास्तविकता थी। उन्होंने भूमि की गम्भीरता में घुसपैठ की थी, जबकि मालो लोगों का कब्जा सिर्फ जल पर था। वह जल जो तरल था, अवलम्बन रहित था, सतत प्रवहमान था। उस जल का रिश्ता कभी ठोस जमीन से नहीं रहा। उसे कभी कोई मजबूत सहारा नहीं मिला। पाँव रखने की कोई ठोस जमीन नहीं मिली इसलिए मालो लोग हमेशा भासमान रहे। धरती से उनका जितना भी सम्बन्ध रहा हो, वे पेड़-पौधों, घर द्वार से जितनी ही मित्रता करें, लेकिन वे भाप की तरह भासमान थे। उन्होंने पृथ्वी के हृदय को कितना ही

जकड़कर पकड़ा हो, भूमि ने सदा उन्हें दोनों हाथों से धकेल कर दूर ही किया और कहा, यहाँ तुम्हारे लिए जगह नहीं है। कहीं नहीं है। जब तक नदी में जल रहेगा, वे उस पर तैरते रहेंगे। जल के सूख जाने पर वे उसी के साथ भाप की तरह उड़ जाएंगे।

ज्वार अब भी आता था। किनारे डूब जाते थे। तितास जल से डबडबा जाती थी। नदी की ओर देखते हुए मालो सोचने की कोशिश करते- यही तो है जल से भरी नदी! सच यही है। कुछ देर पहले जो देखा था, वह एक बुरा सपना भर था। लेकिन जब भाटे का समय होता, तब असलियत नग्न रूप में दिखने लगती। मालो लोगों के मुँह से ठण्डी साँसें निकलने लगतीं। तितास उनकी शत्रु-सी प्रतीत होती। अत्यन्त निर्मम और निष्ठुर शत्रु। जिसने उनकी ओर से मुँह मोड़ लिया था। सुख के दिनों में जिसने हर्ष से विजडित हो उन्हें गले लगाया था, आज जैसे उसी ने गहरे जल में धकेल दिया था। जैसे उसने मालो लोगों से अपने सारे रिश्ते तोड़ लिए थे और बेरुखी से कहती थी, मेरे नजदीक मत आओ, मैं अब तुम्हारी कुछ नहीं। कोई नहीं। बारिश में जब उसमें फिर जल भरता था तो दूर से तैरती हुई लहरें चली आतीं। धारा कल-कल वेग से बहती रहती। पुलकित मछलियाँ उल्लास से तैरती रहतीं। नए जल में मालो मन भर डूबते-उतराते, डुबकियाँ लगाते, तैरते थे। नदी के शीतल आलिंगन से खुद को अलग कर कहते- तब इतना सूख क्यों गई थीं? बोलते-बोलते उनकी आँखों से आँसू बरसने लगते। तितास तुम कितनी पराई हो गई थी। यदि तुममें इतनी ममता है, इतना स्नेह है, तो कभी-कभी निर्मम क्यों हो जाती हो? यह क्या तुम्हारा कोई खेल था? तुम यह खेल औरों के साथ क्यों नहीं खेलती! जहाँ मन हो, वहाँ खेलो, पर मछेरों के साथ नहीं। वे तो बेचारे थोड़े से में ही अभिभूत हो जाते हैं। तुम्हारी इस खामखयाली को न पहचान वे बेचारे दुःख का दंश सहते हैं। वे बड़े दीन हैं, तुम दयालु हो, तुम इनके साथ यह निर्मम खेल न खेलो। अपना यह रूप न दिखाओ। ये तो सदा से तुम्हारी दया-दृष्टि के अभ्यस्त रहे हैं।

विधि का विधान है, वर्षा के स्थायित्व की भी एक सीमा है। जब उसके दिन खत्म हुए तितास फिर पहले जैसी हो गई। दूर-दूर तक सूखे मैदान। इस बार तो उसका आयतन और बढ़ गया था। दूर-दूरान्तर से मालो टोले के घाट तक जमीन सूखी पड़ी थी। इस बार भी किसान लाठी लेकर आएंगे और जमीन पर कब्जा कर लेंगे।

रामप्रसाद ने पलटकर मछेरों को उत्तेजित करने की कोशिश की। वे किसान हैं, उनके पास जमीनें हैं। पर वे और जमीनें कब्जाना चाहते हैं। जब तक जल था, इस पर हमारा दखल था। अब जल सूख गया तो क्या हुआ, यह जमीन हमारी ही है। वे दूर-दूरान्तर से आकर इस पर कब्जा कर लेंगे और हम मछेरे इसके नजदीक रहकर भी

हाथ पर हाथ धरे बैठे रहेंगे !’

वर्षों से दलादली के कारण उनमें एकजुट होकर काम करने की क्षमता बिल्कुल चुक गई थी। इसलिए मारपीट का नाम सुनते ही वे कभी काटने लगे, बोले, ‘नदी सूख गई, जल गया और उसके साथ हम भी गए। अब जमीन के लिए झगड़ा-झंझट हमारे बस की बात नहीं। अगर तुम्हारी इच्छा है तो तुम अकेले ही जाकर लड़ो।’

यह जानते हुए भी कि मौत निश्चित है, अपने घर के सामने की सूखी जमीन पर कब्जा करने के लिए बूढ़े रामप्रसाद अकेले ही कूद पड़े थे। जवान भाइयों को साथ लेकर लड़ते हुए उन्होंने मौत को गले लगा लिया था। करम अली और बन्दे अली जैसे भूमिहीन किसान भी उनके साथ थे। वे भी बुरी तरह पिट कर लौटे। किसी को इंच-भर जमीन नहीं मिली। फिर जमीन मिली किसे? देखने में आया, जो पहले से ही बड़ी-बड़ी जमीनों के मालिक थे, जिनमें पेशीबल था, तितास के हृदय पर उभरी नई जमीन के मालिक भी वे ही बने।

इसमें मछेरों का न कुछ बना, न बिगड़ा। उन्होंने सोच लिया था कि जिस दिन जल गया, वे भी उसी दिन चले गए। इस तरह कई साल बीत गए। इस बार की बारिश के बाद नवीनागर ग्राम के मछेरों का भी माथा ठनका। सूखी जमीन तैरते-तैरते उनके गाँव तक पहुँच गई थी। अनन्तबाला का बाप बड़ी चिन्ता में पड़ गया था। उसने एक दिन बनमाली को बुलाकर कहा, ‘एक बार देखो ना, अगर उसकी कोई खोज-खबर मिल सके।’

इधर अनन्तबाला की उम्र बढ़ रही थी। उसकी हम-उम्र सखियाँ मायका छोड़ कब की पति का घर बसाने जा चुकी थीं। वह आज भी माघ-मंडल की पूजा करती थी। कहते हैं अनन्त उसे कह गया था, पढ़-लिख कर वह उसके पास लौट आएगा। उस दिन के बाद वह जो कहेगी, वह वही करेगा। ‘मैं क्या कहूँगी, माँ और ताई जो दिन-रात कहती रहती हैं, मैं भी वही कहूँगी।’ अनन्त बाला ने कहा था। लेकिन यह बात तो उसके अबोध बचपन की थी। अब वह बड़ी हो चुकी थी, साथ ही, उसकी चिन्ताएँ भी बढ़ गई थीं। उसकी बहुत-सी सखियों के ब्याह हो गए थे, या होने वाले थे। यह सब देखने के बावजूद अनन्तबाला मन में उम्मीद लिए बैठी थी कि एक दिन उसका वर भी आएगा। वह कोई और नहीं, अनन्त ही होगा।

धीरे-धीरे माँ, ताई, काकी, बुआ सहित गाँवभर की नजरों में वह बड़ी होती दिखने लगी थी। उससे कम उम्र की लड़कियाँ उसे देखकर छड़ा (तुकबन्दी) काटने लगी थीं-

‘अनन्त बाला घरेर जाला तारे निया विषम जाला।’²⁶²

एक दिन उसकी माँ ने बाप को खोंचा मारते हुए कहा- ‘बेटी का ब्याह नहीं करना क्या? वह क्या काठ का क्वाड़ है कि उसे दरवाजे पर सजाकर रखोगे।’

‘तुम्हें रेल का भाड़ा-किराया देता हूँ। तुम कुमिल्ला शहर जाओ। देखो, शायद उसका कोई पता-ठिकाना मिल जाए।’ एक दिन उसके बाप ने बनमाली से कहा था।

बनमाली गया भी। दो दिन होटल में ठहर गली-गली खोज की। कोई सुराग नहीं मिला। आखिर वह लौट आया।

आखिर सुराग मिला सात साल बाद! अनन्तबाला ने उम्र के सोलह साल पूरे कर सत्रहवें में कदम रखा था। मालो घरों में इतनी बड़ी बेटियाँ कु आँरी नहीं रहा करतीं। इस कारण सभी इनके परिवार को लेकर छी-छी थू-थू करते थे। अनन्त की आशा में इन लोगों ने इतने दिन तक कई अच्छे लड़कों को ठुकरा दिया था। अब अनन्त की आशा गई, पर जो वर मिलते थे वे तीसरी या चौथी शादी वाले थे। ऊपर से मूर्ख, दिखने में कुत्सित। लेकिन दूसरा उपाय ही क्या था। इन्हीं में से किसी को अनन्तबाला के लिए चुनना था। दुःख और अपमान से आहत वह मर जाना चाहती थी, लेकिन रो-गाकर उसने किसी तरह घर की औरतों को और इन्तजार करने के लिए मना लिया था। तभी बनमाली एक खबर लाया।

गाड़ी जब कुमिल्ला स्टेशन पर लगी तब शाम हो गई थी। इधर से ‘चेकर’ चढ़ रहा था, यह देख मैं उधर से उतर गया। कन्धे पर पोना मछलियों की बहंगी थी, भाग नहीं सकता था। दोनों हण्डियाँ गिर जातीं तो सर्वनाश हो जाता। इस्टेशन के पं चम में मैदान था। सूरज डूबने वाला था। मैं छिपने की कोशिश में था कि तभी अनन्त दिखाई पड़ा। वह और तीन लोगों के साथ घास पर बैठकर बहस कर रहा था। उसने साफ़ धोती और उजला कुर्ता पहना था। पाँव के जूते तक पालिश किए हुए थे। अपने इस विपन्न वेश में उसके सामने खड़े होने में मुझे बहुत शर्म आ रही थी। फिर भी मैं उसके आगे जा खड़ा हुआ। उसने मुझे नहीं पहचाना। अन्त में मछलियों की हण्डी की ओर देखते हुए मैंने खुद से ही कहना शुरू किया- न जाने हमारा अनन्त कहाँ होगा? क्या उसे नहीं पता, तितास सूख चुकी है। मालो जल से निकली मछली हो गए हैं। खाने को अन्न नहीं। दिमाग भी ठीक नहीं रहता। अनन्त पढ़-लिख गया है। वह क्यों नहीं गाँव आकर गवरमेन्ट के पास चिट्ठी लिखकर मालो लोगों के लिए कोई इन्तजाम करवा देता! हाय रे अनन्त! यदि तुम एक बार आते तो देखते तितास के किनारे बसे मालो लोगों की

262. अनन्त बाला घर की मुसीबत, उसे लेकर सारे कष्ट हैं।

क्या दशा है? मैंने देखा दवा ने काम किया, वह उठकर तेजी से मेरे नजदीक आया- थोड़ी देर मेरे चेहरे की ओर देखता रहा, फिर मुझे पहचानकर दोनों बाँहों में जकड़ लिया। बनमाली दा, तुम्हारी यह क्या दशा है? मैंने कहा- अकेले मेरी नहीं, सारे मालो लोगों की दशा ऐसी ही है। हाँ, मैं जिन्दा हूँ बस! पोना मछलियों की बहंगी कन्धे पर लिए इधर-उधर घूमता हूँ। कितने ही मालो मर गए। कितने ही भुखमरी के शिकार हो अपनी बल-बुद्धि खो घरों में पड़े मरने के इन्तजार में हैं। मैंने देखा, वह क्षण भर के लिए सोच में डूब गया। फिर बोला, बनमाली तुम इन दिनों क्या करते हो? मैंने बताया, नदी के सूखने के साथ मालो लोगों की मछली पकड़ने वाली जीविका तो उजड़ चुकी है, इसलिए व्यवसाय छोड़ अब वे दल के दल मजदूरी करने लगे हैं। मैं भी मजदूरी करता हूँ। एक दिन एक महाजन चटगाँव से मालो टोले में आया। उसका नाम था- कमल सरकार बोला, मैं तुम लोगों को पोना मछलियाँ थोक में दूँगा। यहाँ दलाल आकर रहेगा। नाना गाँवों के तालाबों में वह पोना मछलियों के बीज डालेगा। तुम लोग तो अब कभी मछलियाँ पकड़ नहीं सकोगे। मेरे मजदूर बन जाओ। हण्डी में जल रखकर उसमें पोना मछलियाँ डाल देता है, गमछे में चिवड़ा बांध देता है। एक टिकट भी कटा देता है। मैं गाँव जाकर उन्हें दलाल के सुपुर्द कर देता हूँ। हर खेप के बदले एक रुपया मिलता है। अभी देह में थोड़ी जान है, सो किसी तरह लगा हूँ। दूसरे मालो क्या मेरी तरह कर पाएंगे। इस बार तो उसने मेरा टिकट भी नहीं कटवाया। कहा-मैला, कुचैला गमछा कन्धे पर और चेहरे पर लम्बी दाढ़ी है, तू तो बिल्कुल भिखारी दिखता है, तुझे चेकर बाबू कुछ नहीं कहेंगे। तू बिना टिकट ही जा। एक रुपए की जगह सवा रुपया दूँगा। इतनी दूर आ गया लेकिन यहाँ तक पहुँचते-पहुँचते इतना डर गया कि बीच में ही उतर गया। अनन्त बहुत देर तक मेरे शरीर, कपड़ों, दाढ़ी और बालों को देखता रहा। बनमाली दा, तुम्हारे पास एक अच्छा गमछा भी नहीं है। मैंने कहा- है भाई है, एक धोती भी है, संभाल के रखे हैं, लेकिन दूर देश में यही पोशाक अच्छी है। अनन्त ने मुझे होटल में ले जाकर भरपेट खिलाया। दूकान से मुझे दो साड़ियाँ खरीद कर दीं। गोकनघाट की अपनी मौसी सुबला बरु और उदयतारा के लिए। उसने अपने ही बिस्तर पर अपने निकट मुझे सुलाया। दूसरे दिन सुबह टिकट कटाकर गाड़ी में चढ़ा दिया। कहा- बी.ए. की परीक्षा में अभी छह महीने बाकी हैं। खत्म होते ही हमें देखने आएगा।

अनन्तबाला ने चुपचाप आगे बढ़कर कहा- 'अरे बनमाली दा, तुम्हें एक कपड़ा दिया, मौसी को एक दिया, उदी को एक दिया, मुझे भी तो एक दे सकते थे!'

'बिल्कुल दे सकते थे, मैंने ही तुम्हारे बारे में कुछ नहीं कहा।'

‘नहीं कहा ! क्यों नहीं कहा?’

‘तुम्हें नहीं पहचानता !’

‘मुझे ही इतनी मुश्किल से पहचाना।’

‘क्यों नहीं पहचान पाते। मेरे चेहरे पर क्या तुम्हारी तरह दाढ़ी उग आई है, या कि मैं बूढ़ी दिखती हूँ।’

बनमाली की बहन उदयतारा की उम्र हो गई थी। देह का लावण्य खोने लगा था लेकिन मन के रंग अभी धूमिल नहीं पड़े थे। नई बारिश ने तितास में नया जल ढाल दिया था। सपनों की तरह सीमाहीन जल कितना स्वच्छ ! इसमें झाँककर देखो तो जमीन नजर आती थी। यह जमीन ही असली सच्चाई थी। पहले यह जमीन दुःस्वप्न जैसी लगती थी। अब वह स्वाभाविक लगने लगी थी। जल के आगमन ने इसे सपनों की तरह मादक, मनोहर बना दिया था। इसी जल के चले जाने पर यह जमीन भयंकर मरुभूमि में बदल जाएगी। जिसके किसी कण में खोज मरने पर भी कोई मछली नहीं मिलने वाली। लेकिन इस समय इसी जल में डुबकी लगाकर उदयतारा की खुशी का कोई ठिकाना नहीं था। घाट के उसी जल में अनन्तबाला भी खड़ी थी। छोटी-छोटी लहरें उसके बालों से खेल रही थी। यह देख उदयतारा बोल उठी-

‘जलेबी के हर मोड़ में रस भरा है

जल के बिना कोई और चीज क्या ठण्डी लग सकती है

मेवा-मिश्री में भी जल सी शीतलता नहीं

अनन्त का तो कोई अन्त नहीं लेकिन जल का तो अन्त है।’²⁶³

‘क्यों दीदी, हम लोग क्या बाजार में बिकने वाले गमछे या साबुन हैं कि पानी में डूबकर खत्म हो बिला जाएंगे। अगर तुममें अब भी ताप बाकी हो तो लगाती रहो डुबकी।’

‘बहिन मेरे तो बाल झड़ गए, दाँत पड़ गए, यौवन दरक गया। अब मुझमें कैसा ताप !।’

इस बार का व्यंग्य अनन्तबाला की उम्र पर था। इसलिए वह पानी से निकल आई। साड़ी को दो-तीन तहकर छाती पर लपेटा और घर की ओर चल पड़ी।

मैं क्या मछली मारने आई हूँ, जो जल में पड़ी रहूँ, यह कहकर उदयतारा भी बाहर निकल आई। साड़ी गीली थी, बाल बिखरे थे। दो-चार कदम चलने के बाद ही

263. जिलैपिर पेचे पेचे रस भरा मत्ता की ठण्डा लागे जलछाड़ा/जतोई देखो मेवा मिछरी किछु ऐई जलोर मतो/ठण्डा लागे ना अनन्तर तो अन्त नई जले तबो अन्त आछे।

समीप के घाट से दो लोगों की बातें सुनाई पड़ीं। एक ने नाव किनारे से लगाई, खूँटी गाड़ी और डोरी की मदद से नाव बाँध दी। दूसरा आदमी घाट पर खड़ा होकर कह रहा था- लेने आए हो शायद ! हाँ ना देखकर दुविधा में हो। दुविधा होनी ही चाहिए। तुमने बुद्धिमानी का काम किया। नदी में जल रहते-रहते ले जाओ। जितने दिन नदी सूखी थी, तुम तो आए नहीं। जल सूखने के साथ-साथ तुम्हारा प्रेम भी सूख गया। ठीक कहा कि नहीं। मैं क्या झूठ बोल रहा हूँ। वैसे तुम सूखी नदी में आते भी कैसे ! नाव कन्धे पर उठाकर तो ला नहीं पाते। तुम चाहे जो भी कहो, बात मैं सोलह आने सच कहता हूँ-
'यदि बन्धु का मन हो तो/नदी पार करने में /कितनी देर लगती है।' ²⁶⁴

मन हो तो सूखी नदी भी कुछ नहीं कर सकती। एक गीत है ना-

'सोच/ राधा रमण कहते हैं /प्रेम की नाव /सूखे में भी चल सकती है।' ²⁶⁵
कैसी कही।

उदयतारा को उसका पति लेने आया था। आज बनमाली की तरफ़ उसने नए ढंग से देखा। उसने उसे एक नए रूप में पाया। वह जब भी बनमाली को देखता है, उसका मन व्यथित हो उठता है। वह उसे पकड़कर फफककर रोना चाहता है।

बनमाली दिनों-दिन सूखता जा रहा था। वह उम्र से पहले ही बूढ़ा दिखने लगा था। ऊपर से बाल और दाढ़ी भी बढ़ाए घूमता। एक फटा गमछा कमर में और एक कन्धे पर, उसकी वेशभूषा यही थी। नदी तो केवल उसके लिए नहीं सूखी। सभी मछरों के लिए सूखी थी। पर बनमाली ने सबकी चिन्ता का बोझ मानो अकेले उठा लिया था और उसके भार से झुका हुआ दिखने लगा था। वह तो अभी भी तो कुछ न कुछ कमा ही लेता था। पेट में अन्न के दो-चार दाने पड़ जाते थे। बाद में जब रोजगार का भट्टा बैठ जाएगा, तब क्या सबसे पहले दादा को ही मौत निगलेगी। बनमाली के प्रति उसका मन स्नेह और करुणा से भर उठा था, किन्तु वह सब-कुछ छिपा लेती थी। अपने मन में जागते अस्फुट हाहाकार को भी।

दादा, तुम एक फूल का नाम बताओ तो !

बनमाली ने फीकी मुस्कान से कहा, तुम मुझे ही दामाद समझकर मसखरी करने लगी ! पहले तुम दामादों से ही मजाक करती थी, अब तो तुम ज्योतिषी ठकुराइन बन गईं। मेरा भविष्य बाँचने लगी।

मसखरी नहीं, मैं सच में पूछ रही हूँ। तुम ऐसे सूखते क्यों जा रहे हो ? नदी में तो

264. यदि थाके बन्धुर मन गान पार होइते कतो खन।

265. भेभे राधा रमण बोले पीरीतेर ना सुकनाय चले।

अभी भी जल है।

अब तो केवल टूनी मछली का मूत बचा है। पहले साल में पाँच तरह की मछलियों के लिए पाँच तरह के जाल फेंकता था। राजा की तरह मछली पकड़ता था। वे दिन बीत गए। अब तो सपने में भी विश्वास नहीं होता कि कभी ऐसे भी दिन थे। कितना आजाद था! जाल फैलाता था, समेटता था। अब दूसरे की गुलामी करता हूँ। पोना मछलियों की बहंगी ढोते-ढोते कन्धे पर घट्टे पड़ गए हैं। कमर झुक गई है, लेकिन मुझे इसकी चिन्ता नहीं। मैं सोचता हूँ आने वाले सूखे दिनों में मालो सम्प्रदाय का क्या होगा?

अपने पति की धीरजहीन बातों को सुन उदयतारा कातर हो बनमाली के गले लगकर रोने लगी। बनमाली ने उसका हाथ छुड़ाते हुए कहा- 'पागल मत बन बहन! अब तेरी रोने की उम्र नहीं रही।'

उदयतारा ने सिसकते हुए कहा-दादा, 'तुम्हारे भाग्य में सोले का मुकुट पहनना नहीं लिखा था।'

'पहनूंगा ना! सोले का मुकुट। चिता पर चढ़ने के पहले पहन लूंगा। तू रो मत।'
यह बनमाली से उदयतारा की अंतिम मुलाकात थी।

जब नाव नदी में चल पड़ी तो उदयतारा पाल के भीतर चुपचाप जा बैठी। एक शब्द भी नहीं बोला। लगातार डाँड़ खेते-खेते उसका पति अधीर हो उठा उसने आवाज दी, 'ओ नित्य की मामी, नित्य की मामी, जरा उठो, मुझे एक चिलम तमाखू पिलाओ।'

नदी के वक्ष पर तैरती नाव में वे बहुत दिनों बाद मिले थे लेकिन उदयतारा के मन में कोई उल्लास नहीं था। उसने निर्लिप्त रूप में चिलम पर तमाखू सजाई और मालसा में रखी आग से टिकिया सुलगाकर उस पर रख दी। जब हुक्का सुलग गया तो उसने पाल से बाहर हाथ बढ़ाकर भावहीन स्वर में कहा, 'लो थामो अपना हुक्का!'

भाई बनमाली के लिए एक अव्यक्त वेदना उसके मन में अनवरत उथल-पुथल कर रही थी। उसका पति डाँड़ चलाते हुए चारों ओर देख रहा था। दोनों ओर बसे किसानों के गाँव आज भी हरे-भरे थे, लेकिन मालो लोगों के मोहल्लों पर वेदना की सघन छाया साफ़ नजर आ रही थी। जहाँ पेड़-पौधे और घर हुआ करते थे, वहाँ अब खण्डहर थे, कुछ दिन पहले जहाँ नावों की चहल-पहल होती थी, वहाँ अब एकाध जगह नाव अचल बंधी दिखाई पड़ रही थी। जहाँ कभी वे जाल सुखाया करते, अब वहाँ पशु चर रहे थे। गाँव उजड़ गए थे। घर कहाँ गए। हर तरफ़ बाँस की खूंटियों के गड्ढे, भग्न चूल्हों के अवशेष, सिल-लोढ़े रखने के पटरे, मिट्टी की कलसी रखने के अधटूटे पीढ़े, दरवाजों पर सूखे पत्तों के ढेर, तुलसी के दरकते चौरें। अब यहाँ दिया

जलाने वाला भी कोई नहीं था। कहीं-कहीं एक दो घर अभी भी बचे थे। कुछ लोगों ने अपने बड़े घर बेचकर छोटे-छोटे घर बना लिए थे।

राधानगर, कृष्णनगर, मनतला, गोसाईपुर हर जगह की एक ही हालत थी। कहते हुए हाथ बढ़ाकर उसने हुक्का थाम लिया।

नौका घाट से टकराई। नाव से उतरते-उतरते उदयतारा ने अपने टोले पर उड़ती नजर डाली और कहा, 'तुम्हारे गेराम की भी तो वही हालत है।'

बहुत दिनों के बाद वह पति के घर लौटी थी।

सुबला बरु उस समय उसी घाट पर नहा रही थी। लेकिन उसने एक बार जल में डुबकी लगाई तो ऊपर निकलने का नाम नहीं ले रही थी।

'क्यों री बसन्ती, जल ने क्या तुझ पर जादू कर दिया है। खींचकर निकालना पड़ेगा। तुझसे जरूरी बात करनी थी।'

सुबला बरु ने पानी से सिर निकाला और उदयतारा की ओर देखकर बोली- 'बसन्ती तो मैं बचपन में थी, जब माघ महीने में किशितयों तैराती थी। उसके बाद किसकी तो बरु बन गई। फिर राँड़ बन गई। बीच में कुछ दिन अनन्त की मौसी बन गई थी। अब फिर से हो गई बसन्ती!'

'मेरा ब्याह भी बचपन में ही हुआ था। इस गाँव में आकर तुझे पाया। पास-पास घर थे। दोनों साथ-साथ जिए-मरे। मेरे लिए तो तू पहले भी बसन्ती थी और आज भी वही बसन्ती है। अब निकल पानी से और मेरी बात सुन'

'तेरी-मेरी तो बातचीत बंद थी। याद कर, किसी बात पर मेरा-तेरा सचमुच झगड़ा हो गया था ना।'

उदयतारा का मन भीतर तक भीग आया। जिस लाड़ली बेटि को कभी किसी ने फूल की छड़ी से भी नहीं छुआ था, उसे उस दिन सबने कितनी निर्ममता से मारा था। आज वह तेजहीन निष्प्रभ थी। गर्दन सूखकर कांटा हो गई थी। दोनों गाल पिचक गए थे। सिर के घने बाल आधे से अधिक झड़ चुके थे। वह भी बनमाली की तरह यौवन रहते ही बूढ़ी हो गई थी। आज उसे देखकर दया आ रही थी। मन ही मन उदयतारा को बहुत ग्लानि हुई और उसे मारने के लिए खुद को भरपूर कोसा।

उसे पानी से बाहर न आते देख आखिर वह खुद नदी में उतर गई। बोली, 'आ, आज जी-भर कर पीट ले मुझे। मुझे अच्छा लगेगा। तू मारेगी तो मेरे कलेजे को ठण्डक मिलेगी। तुझे मारकर मेरे दिल में जो आग सुलगी, वह आज तक नहीं बुझी। झूठ नहीं कहती बसन्ती! तू पीटेगी मुझे!'

'हाँ, पीटूँगी क्यों नहीं, तुझे ही नहीं, तेरे दुश्मनों को भी पीटूँगी। निपूती! तू लौकी

का कांटा चुभने से मरे। सूखी नदी में डूबकर मरे।’

‘अब दोनों के मन हल्के हो गए थे।’

‘अनन्त के बारे में नहीं पूछेगी!’

‘अनन्त, अरे अनन्त! अब किसके साथ रहता है वह?’

‘अनन्त क्या अब बच्चा है कि किसी के साथ रहेगा। वह कितना बड़ा हो गया है। शहर जाकर आई.ए. बी.ए पास कर लिया है। पोना मछली की बहँगी लेकर जाते दादा ने उसे देखा था। उनमें बहुत-सी बातें भी हुई थी। पढ़े-लिखे लोगों के साथ रहता है। देखने में भी ‘भद्र-लोक’²⁶⁶ हो गया है।’

सुबला बरु के चेहरे पर उदासी घिर आई। ‘भद्र-लोक’ के साथ रहता है। अगर उन्होंने उसे जात्रा सिखाकर बरबाद कर दिया तो!

‘अरे नहीं नहीं, बाजार वाले भद्र-लोक नहीं। वे पढ़े लिखे शरीफ़ लोग हैं। तेरे और मेरे लिए एक-एक साड़ी खरीद दी है। अपनी साड़ी मैंने पहन रखी है और तेरी इस झोले में है। नहाने के बाद इसे ही कमर में लपेटकर घर चली जाना।’

सुबला बरु हठात अनमनी हो उठी। न जाने क्या सोच रही थी। उसके मुँह से बोल नहीं फूट रहे थे।

‘क्यों री बसन्ती! मन नहीं मान रहा। मेरा भी नहीं मान रहा था। बहिन मेरी तो हालत कृष्ण से बिछुड़ी गोपियों जैसी है। पराया बेटा; न तेरे पेट का, न मेरे पेट का।’

‘चुप निपूती! मैं क्या उसके बारे में सोच रही थी। मैं तो कुछ और सोच रही थी।’

‘पिछली बारिश में सूखी जमीन वहाँ तक थी, अब यहाँ तक आ पहुँची। अभी जहाँ मैं नहा रही थी, वहाँ तक अगले साल देखेंगे पैर धोने तक पानी नहीं होगा, शरीर डुबोने की बात तो दूर इसलिए इस बार इस जन्म के लिए डुबक-डुबक के नहा रही हूँ।’

वर्ष बीतते-बीतते मालो लोगों की जिन्दगी बिल्कुल अचल हो गई। नदी के दोनों किनारे विस्तीर्ण रेतीली जमीन में बदल गए। जल की एक रेखा मात्र बची रह गई थी। उसमें नाव नहीं चल सकती थी। औरतें नहाने जाती हैं लेकिन देह डूबने लायक जल कहाँ था! उकड़ूँ बैठ बालू खोदकर वे एक गड्ढा बनातीं, उसमें उलट-पलटकर देह भिगोतीं और वहीं से किसी तरह कलसी भर घर ले आती थीं। मछेरों की नावें सूखी जमीन पर बँधी धूप की तेजी से जहाँ-तहाँ से चिटक रही थीं। जल के अभाव में वे

266. पढ़ा-लिखा अभिजात्य

अब नदी पर नहीं उतराती। मालो लोगों ने अब तक मछली पकड़ना बन्द नहीं किया था। एक कन्धे पर डलिया और दूसरे पर ठेला-जाल लिए वे दल बाँधकर मछलियों की तलाश में भटकते रहते थे, ग्राम-ग्रामान्तर घूमते हुए कहीं कोई गड्ढा, पोगखरी या कोई ताल-तलैया मिल गई तो ये उस पर अपनी बाज-दृष्टि डाल देते। देह हड्डियों का ढाँचा, आँखें कोटरों में धँसी, वे उन गड्ढों में उतर पड़ते पर सूनी आँखें लिए बाहर निकल आते। जाल का सामने का हिस्सा जल में डुबो उसे धकेलते हुए वे आगे की ओर दौड़ते, किन्तु पकड़ में आतीं दो-चार मौरला मछलियाँ और दर्जनों मेंढक। मेंढक कूदकर जाल से बाहर निकल जाते। मछलियाँ बच जातीं, जिन्हें बेचने पर कुछ आने मिलते थे, जिनसे दो मुट्ठी चावल खरीदते। अगर किसी दिन मछलियाँ नहीं मिली तो ठन-ठन गोपाल।

मनमोहन ने आज दिन भर गड्ढों में जाल धकेला। लेकिन आज उसे सिर्फ मेंढक ही मिले, मछलियाँ नहीं। वह आज बिना चावल लिए घर लौटा था। हाथ का टोकरा उसने एक तरफ़ फेंक दिया और जाल को झोंपड़े से टिका दिया। उसकी बूढ़ी माँ सूखकर डोरी जैसी हो गई थी। कुछ साल पहले ही उसने ब्याह किया था। भुखमरी के कारण उसकी घरवाली भी सूखती जा रही थी। उसकी ओर देखते नहीं बनता था। बाप चबूतरे पर बैठा तमाखू पी रहा था। माँ और बऊ दोनों ने उसे आते देखा तो चावल की पोटली लेने तेजी से उसकी ओर बढ़ीं, लेकिन खाली हाथ देख चुपचाप भीतर चली गईं। आज किसी के पेट में अन्न नहीं पड़ेगा। कल भी कुछ मिलेगा कि नहीं, पता नहीं। लेकिन उसका बाप निश्चिन्त होकर तमाखू पीता जाता था। बाप के हाथ से हुक्का छीन मनमोहन ने खूब जोर से एक कश लगाया। उसे थोड़ा सुकून मिला था।

अनेक मालो परिवार गाँव छोड़ रहे थे। कुछ पहले ही घर-गृहस्थी समेट घर-द्वार उजाड़, नावों में जरूरत भर की चीजें ले जा चुके थे। जो बाद में गए उन्होंने घर-द्वार, साजो-सामान सब यहीं छोड़ दिया। जो बचे थे, उन्हें पता तक नहीं था कि जाने वाले गए कहाँ? कुछ दूसरों के खेतों में धान काटने चले गए तो कुछ बड़ी नदी के उस पार, जहाँ बड़े-बड़े व्यापारी मछली पकड़ने का धन्धा शुरू कर चुके थे। अब दो मुट्ठी भात के लिए मालो लोगों का काम उन बड़े लोगों के लिए मछलियाँ पकड़ना था। मनमर्जी के मालिक से वे अब दिहाड़ी-मजदूर बन गए थे।

जिन्होंने टोले में दलबाजियाँ की थीं, उनका खुद का मछली पकड़ने का धन्धा ठप्प हो चुका था। बाजार के दूकानदारों ने दया करके उन्हें शहर से माल लाने का काम दे दिया था। वे रोज शहर जाकर अपने कंधों पर बड़े-बड़े झोलों में माल लाते। मजदूरी में उन्हें एक चवत्री दी जाती। झोले ढोते-ढोते उनकी कमर टूट चली थी, उनमें

अधिकतर लोग पूरी तरह झुक गए थे और अब अशक्त होकर बस अपनी मौत का इन्तजार कर रहे थे।

उदयतारा का पति भी ऐसे ही लोगों में एक था। लाठी के सहारे बिना अब वह एक कदम भी नहीं चल पाता था। बस कोटरों में धँस चुकी आँखों से उदयतारा को निहारा करता।

सुबला बऊ इतने दिनों तक किसी तरह सूत कात-कातकर अपना तथा अपने बूढ़े और शक्तिहीन हो चुके माँ-बाप का पेट पाल रही थी, पर अब उसके भी लाले पड़ गए थे। गाँव में कोई सूत लेने वाला ही नहीं बचा था। अब उदयतारा के साथ वह पान-सुपारी और पोड़ामाटी²⁶⁷ लेकर गाँव-गाँव बेचती फिरती थी तथा शाम को एक मुट्ठी धान सहित कच्चे रास्ते से लौटती दिखाई पड़ती थी।

पर इस काम में भी दो-चार आने पूंजी की जरूरत थी। जिनके पास यह भी नहीं, वे बेचारी क्या करतीं ! किसी तरह दाँत भीचकर भीख माँगने निकल पड़तीं। जयचन्द्र की घरवाली इन्हीं में से एक थी। जयचन्द्र जवानी में ही अपनी स्त्री को छोड़कर चल बसा था। घर में जो बचा था, सब उसके क्रिया-कर्म में चला गया। दो छोटे बच्चे ऊपर से। एक सारा दिन खाऊँ खाऊँ करता रहता तो दूसरा उसके सूखे स्तनों से दूध चिचोड़ने में लगा रहता। वह बेचारी आखिर क्या करती ! अपने गाँव से दूर किसी दूसरे गाँव में निकल कर सारा-सारा दिन भीख माँगा करती। रात गए घर लौटती। हमेशा डरती-छिपती रहती, कहीं कोई पहचान न ले। एक दिन वह पकड़ में आ गई लेकिन हँसने और आलोचना करने के बजाय लोगों ने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। उसने एक नई राह दिखा दी थी। उसकी देखा-देखी और भी पाँच औरतें भिक्षाटन के लिए निकल पड़ी थीं। वह सबकी पथ-प्रदर्शिका बन गई थी।

किन्तु यह रास्ता बहुत फिसलन भरा था। चलते-चलते एक दिन वह ठोकर खाकर जो गिरी तो फिर गाँव वालों को चेहरा दिखाने के लिए नहीं लौटी। उसकी सहेलियों की भी दशा ऐसी ही हुई। मालोपाड़े से मानो उनका नामो-निशान ही मिट गया।

जो मर गए या मर गईं, उनको तो मानो मुक्ति मिली, लेकिन जो बचे हुए थे उन सबके सामने एक ही सवाल था- अब और कितना, आखिर कितनी दूर ? तितास की ओर से जैसे उत्तर मिलता, बस थोड़े दिन और !

सचमुच बारिश अब ज्यादा दूर नहीं थी। तितास में जैसे ही नया जल भरेगा,

267. पक्की लाल मिट्टी।

सबकी सूखी जलती हड्डियों में जान आ जाएगी। लेकिन जलहीन मालो परिवार छटपटा रहे थे। अब उनसे और इन्तजार नहीं होता। जीवन-रूपी नदी में भाटे का जो झटका उन्हें मिला था, उसका आखिरी कंपन तक उन्हें झकझोर रहा था। वे तिल-तिल कर मर रहे थे, मानो अब और एक दिन भी नहीं खींच पाएंगे। घर-घर में लोगों ने खाट पकड़ ली थीं। पैरों ने पूरी तरह जवाब दे दिया था, आँखें भीतर धँस गई थीं। गाल पिचक गए थे। जबड़े निकल आए थे। वे बस कंकाल-भर रह गए थे। उन्हें देख ऐसा लगता था मानो प्रेतों का कोई जुलूस हो जो घिसट-घिसट कर घाट की ओर बढ़ा जा रहा हो। उन्हें बस एक ही उम्मीद बाँधे थी, शायद दक्षिण से जल का कोई रेला फूट निकले और लहरों के साथ मछलियाँ भी उमड़ पड़े। लेकिन अगर ऐसा हो भी जाए तो क्या? उनके कमजोर हाथों में अब न तो डौंड खेने की ताकत बची थी न जाल फेंकने की। न ही किसी में नाव को नदी में उतारने की हिम्मत ही बाकी थी।

इसी तरह दिनों-दिन कमजोर होते उदयतारा का पति बुरी तरह बिस्तर पर पड़ गया था। बासंती के माँ-बाप तो पहले ही खाट पकड़ चुके थे, एक दिन मरकर उन्होंने उसे मुक्ति भी दे दी थी। मोहन के बाप ने भी उसे मुक्त कर दिया था। लेकिन मरने से पहले वह बुरी तरह पछताया था। चीख-चीखकर कहने लगा, 'मैंने सबको कितनी बार कहा, चलो गाँव छोड़ देते हैं। पर मेरी बात पर किसी ने कान नहीं दिया। जब ताकत थी, मैं नहीं गया। अब पड़ गया ना मौत के हत्ये!' यह कहते हुए वह घिसटते-घिसटते बरामदे के दरवाजे पर गिर पड़ा। उसने मोहन की ओर हाथ बढ़ाए पर उसने उन्हें नहीं पकड़ा। मरते समय उसका चेहरा कैसा विकृत हो गया था। दोनों आँखें फटी हुईं। मानो वह मरा नहीं था बल्कि मोहन की ओर विरूपता से देख रहा था।

सुबला बऊ में भी अब उठने-बैठने की शक्ति नहीं बची थी। पैर काँपते थे, सिर चकराता था। जब-तब उसकी आँखों में दुनिया का बदरंग चेहरा उभर आता था। उसने मान लिया था कि गाँव के दूसरे लोगों की जो गति हुई, उसकी भी वही होनी है। अब शोक मनाने का क्या फायदा! लेकिन घर में पानी तो चाहिए ही। कहते हैं, अगर अंतिम समय पास में पानी न रहे तो परलोक में भयंकर कष्ट होता है। जब हर किसी की एक ही दशा थी तो मरते समय कौन उसके मुँह में जल डालता। हाथों में घड़ा उठाने की शक्ति नहीं बची थी। किसी तरह लोटा उठाकर वह डगमगाते कदमों से घाट पर पहुँची। लेकिन वहाँ जाकर पता चला कि नदी में नया जल भरने लगा था। उसके किनारे की रेत में ठण्डक महसूस होने लगी थी। धान के खेतों में भी जान लौट रही थी। जलधारा खेतों के पास तक आ पहुँची थी। यहाँ तक कि कल-कल ध्वनि साफ़ सुनाई पड़ रही थी। जहाँ-जहाँ इस समय धान के पौधे उगे थे, कभी वहाँ मछलियाँ

पकड़ने के लिए अगाध जल-राशि हुआ करती थी। तभी उसकी नजर घाट पर लगती एक नाव पर पड़ी। जिससे अनन्तबाला, उसका बाप, चाचा और चाची उतर रहे थे। अनन्तबाला ने ज्यों ही सुबला बऊ को देखा, वह उसी की ओर बढ़ी और उसने बताया कि वे सभी अपना गाँव छोड़ आए थे। अब पैदल शहर पहुँचेंगे और फिर वहाँ से रेलगाड़ी पकड़कर आसाम जाएँगे।

सुबला बऊ ऐसे दुःख और कष्ट में भी अनन्त को नहीं भूल सकी थी। उसने उसके बारे में पूछ ही लिया। अनन्तबाला बताने लगी कि बचपन में उनके बीच बहुत प्यार था। जैसे उमा ने शिव के लिए तपस्या की थी, उसी तरह वह भी बहुत दिनों तक उसके लिए तपस्या करती रही। उसके आने की बात जोहती रही। उसे घर-परिवार और गाँव में कितनी-कितनी बातें सुननी पड़ी थीं कि मालो की यह लड़की इतनी उम्र तक बिन ब्याहे कैसे रह रही है।

‘अनन्त की कोई खबर नहीं मिली?’

अरे, उसकी तो खबर ही खबर है। वह बहुत दिनों बाद लौटा। पहले तो किसी ने उसे पहचाना नहीं। विरामपुर के घाट पर उसकी नाव रुकी थी। पूछ रहा था, इस गाँव के लोगों को क्या-क्या तकलीफें हैं? तो कादिर मियाँ ने जवाब दिया कि हम तो किसान हैं, खेती करते हैं। फसलें काट ली हैं। अन्न से हमारे भण्डार भरे हुए हैं। हमें कोई तकलीफ नहीं। तकलीफ तो मालो लोगों को है। तितास सूख जाने से वे बेचारे बेमौत मर रहे हैं। बात अनन्त से हो रही थी, लेकिन कोई उसे पहचान नहीं पा रहा था। हठात रमू की माँ को याद आ गया। वह दौड़कर आई और बोली, ‘बा जी! मैं तुम्हें पहचान गई। तुम अनन्त हो न! बचपन में तुम बनमाली की नाव में यहाँ आए थे। मेरे रमू के साथ खेला करते थे। चलो, भीतर चलो! फिर रमू की माँ ने उसकी खूब खातिरदारी की।’ बनमाली दादा उसी दिन मरे थे। पोना मछलियों की बहंगी मालिक के यहाँ खाली कर तितास के किनारे-किनारे घर लौटते वक्त उनके पाँव लड़खड़ाए, वे गिरे और तुरन्त मर गए। यह घटना कादिर मियाँ के घर के पास ही घटी थी। देखते ही देखते लोगों की भीड़ जमा हो गई थी। कादिर मियाँ और अनन्त ने भी देखा। कादिर मियाँ से रहा न गया, ‘अरे इसने मेरा कितना उपकार किया था।’ यह कहते हुए उन्होंने अपना धान का भण्डार खोल दिया और बोले, ‘बाबू, जितना चाहो धान निकाल लो और ले जाकर मालो टोले में बाँट दो।’ अनन्त ने कादिर मियाँ के भण्डार से अपनी नाव में धान लादा और हमारे गाँव आ गया। एक रात वह हमारे घर भी ठहरा था। उसने मेरे चाचा से ढेर सारी बातें भी की थीं।

‘ढेर सारी बातें की थीं, पर असली बात नहीं की।’

नहीं, वह बात करने का उसके पास समय ही नहीं था। अगले ही दिन वह किसी और गाँव की ओर निकल गया था। शायद जल्दी ही तुम्हारे गाँव भी आए।

सुबला बऊ को लगा जैसे वह कोई सपना देख रही थी। उसे अनन्तबाला को सशरीर देखना भी सपने जैसा ही लग रहा था। सच था तो केवल खेतों में धान के पौधों का झूमना। हजारों-लाखों पौधे मुस्कुरा रहे थे। दक्षिण में सुदूर शिवनगर से जो पहली लहर उठी थी, वह इस मालो टोले की जमीन पर आकर अपना माथा टेक रही थी। आज वही लहर जैसे हवा में रूपान्तरित होकर धान के पौधों के सिरों को सहलाती हुई बह रही थी। उस तरफ़ देखते हुए सुबला बऊ ने धीरे-धीरे अपनी आँखें मूँद ली थीं। वह नीम-बेहोशी में थी।

उसे लगा, माघ का महीना है। चारों ओर ढोलक बज रही है। कांसे बज रहे हैं। औरतें गा रही हैं। तितास में जल आ गया है। उसी जल में उन दोनों ने अपनी नाव उतारी है। जल्दी-जल्दी वे आगे बढ़ रहे हैं। वे दोनों यानी सुबल और किशोर। इसके बाद बसंत आया। प्रवास के दौरान किस्से की एक अनजानी नारी ने, जो नदी के किनारे नाच रही थी, नाव से उतरते हुए एक अनजान पुरुष को देखा और उस पर मोहित हो गई। फिर उनके बीच माला-बदल हुई। इसके बाद अनन्त का जन्म हुआ और आज एक अनन्तबाला उसी अनन्त के लिए तपस्या करते-करते सूख चुकी है।

क्या सचमुच अनन्त नहीं लौटा ?

वह लौटा तो सही पर तब तक बहुत देर हो चुकी थी। उसके साथ आई.ए., बी.ए. पढ़ रही एक कायस्थ कन्या भी उस पर मोहित हुई थी। लेकिन बात आगे नहीं बढ़ी। देखने-भालने में सुन्दर, पढ़ाई-लिखाई में पण्डित होने के बावजूद आखिर ठहरा तो वह एक मालो-जाति का पूत ही न! माँ-बाप ने अपनी कन्या को समझा दिया था और वह भी मान गई थी कि सचमुच उन दोनों का संबंध जाति की वजह से संभव नहीं हो सकता था। पर इससे अनन्त के मन को बड़ी चोट पहुँची। आहत अनन्त ने पहले तो शादी का इरादा ही छोड़ दिया था। किन्तु फिर उसे लगा कि वह किस बात में कम था। उसकी अनन्तबाला तो अब भी उसका इन्तजार कर रही थी।

इसके बाद सुबला बऊ ने देखा कि दुखाई और उसका बेटा एक ताल पर ढोल और कांसे बजा रहे हैं। हालांकि दुखाई का ढोल पुराना हो चला है और बेटा जवान हो गया है। अब दामाद की माँ को खोजा जा रहा है? उस अभागी को तो मौत ने मुक्ति दे दी थी। बच गई होती तो भूख से मरती। माँ की तलाश में मैं ही पहली अधिकारी पाई गई। मैं उसकी माँ बनकर घर की छ़ाया में बैठी हूँ, वह मेरी गोद में बैठा है। औरतें उसके मुँह में चीनी डाल रही हैं, वह उसे खाता नहीं, थू-थू कर उगल देता है।²⁶⁸

औरतें जोकार दे रही हैं और मेरी गोद से उतरकर पालकी में जा बैठा है।

वह खुश है कि उसे माँ होने का अधिकारी माना गया। वैसे उदयतारा भी तो अनन्त की माँ होने का दावा कर सकती थी। उधर रमू की माँ भी खड़ी है। उसका भी तो अधिकार बनता था, क्योंकि उसके लिए रमू और अनन्त में कोई फर्क नहीं था। मान लिया वह अपना दावा छोड़ भी दे तो उदयतारा नहीं छोड़ने वाली थी। शादी-ब्याह के घर में बेवजह एक द्वन्द्व छिड़ सकता था।

धत्त तेरे की ! क्या वह अभी भी सपना ही देख रही थी। उदयतारा तो कब की मर चुकी। मोहन भी मर चुका है। उन सबके मुँह में जल देना होगा। उसके रहते वे प्यासे कैसे मर सकते हैं ! उसने लहरों को हिलाकर लोटा भरा। सामने धान के खेत थे। वे कमर तक जल में डूबे सिर हिला रहे थे। इतने करीब। लोटे के आघात से आलोड़ित लहरें कहीं उन्हें झकझोर तो नहीं देंगी ! पर ये पौधे ही तो दुश्मन हैं। जिन्होंने गाँव-भर के मालो लोगों को मार डाला। उसकी आँखें फिर मुँदने लगी थीं।

सपना फिर आगे बढ़ा। टोले में अब कोई नहीं बचा था। बस दो लोग बाकी थे। सबके घर-द्वार उजड़ चुके थे। एक खाली जमीन पर भट्टी सुलगाकर हण्डे में भात रौंथा जा रहा था। बाबू-लोग इसे सबमें बाँट रहे थे। बूढ़ा रामकेशव हाथ में मिट्टी का बर्तन लिए किसी तरह हिलता-डुलता वहीं आ पहुँचा था। अब उसके बर्तन में भात भरा जा रहा है। सुबला बऊ भी एक मालसा लिए पहुँच गई। कोई उसे भी भात देने आ रहा है। अरे, यह तो अनन्त है। कहीं मुझे पहचान न ले। इस भय से उसने अपना मुँह फेर लिया और दम साधे वापस होने लगी। तभी टनाक की आवाज आई। उसने चौंककर आँखें खोलीं। अरे, यह तो सपना था ! जल से भरा लोटा उसके दुर्बल हाथों से छूटकर धरती पर गिर गया था।

धान की कटाई खत्म हो चुकी थी। जमीन पर एक भी पौधा नहीं बचा था। वहाँ कमर तक बारिश का पानी जम चुका था। कोई सोच भी नहीं सकता कि कुछ दिन पहले यहाँ बलुई मैदान था। पर अब जमीन जल से थोई-थोई कर रही थी। जिधर देखो जल ही जल। सुदूर दक्षिण से उठी लहर अब मालो टोले की धरती पर लोटपोट हो रही थी। लेकिन यहाँ मालो टोला कहाँ, केवल उसकी मिट्टी बची थी। वीराने में जंगली पेड़-पौधे राज कर रहे थे। हवा उन्हें छूकर सन-सन की आवाज कर रही थी। शायद ये उन्हीं मालो लोगों की निःश्वासें थीं, जिन्होंने यहाँ तड़प-तड़पकर दम तोड़ा।



268. बंगाल में सप्तपदी के पहले वर को चीनी खिलाई जाती है, जिसे वह निगलता नहीं, मुँह में लेकर थूक देता है।